भारतीय ग्रन्थमाला—संख्या १

भारतीय शासन

लेखक
देशी राज्य शासन, साम्राज्य और उनका पतन,
नागरिक शिक्षा, और भारतीय जागृति,
आदि के रचयिता
भगवानदास केला
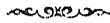
प्रकाशक
भारतीय ग्रन्थमाला, दारागंज, प्रयाग

मुद्रक
गंगा प्रेस; दारागंज, प्रयाग

ग्यारहवाँ संस्करण] सन् १९५१ ई० [मूल्य, तीन रुपए

'भारतीय शासन के संस्करण'

पहला	संस्करण	....	सन् १६१५
दूसरा	,,	...	,, १६१६
तीसरा	,,	...	,, १६२२
चौथा	,,	...	,, १६२५
पाँचवा	,,	...	,, १६२७
छठा	,,	....	,, १६२६
सातवाँ	,,	...	,, १६३६
आठवाँ	,,	...	,, १६३८
नवाँ	,,	...	,, १६४४
दसवाँ	,,	...	,, १६४६
ग्यारहवाँ	,,	...	,, १६५१

ग्यारहवें संस्करण सम्बन्धी

निवेदन

बहुत समय से हम यह सोच रहे थे कि भारत स्वतंत्र हो, और हमें इस पुस्तक में स्वतंत्र भारत की शासन-पद्धति लिखने का सुअवसर मिले। यह पुस्तक पहली बार प्रथम महायुद्ध के समय में प्रकाशित हुई थी। हमने छोटे राष्ट्रों की स्वाधीनता और स्वभाग्य-निर्णय की बहुत बात सुनीं, पर उस महायुद्ध के बाद भी हमारा इतना बड़ा राष्ट्र पराधीन ही रहा। संसार में दूसरा महायुद्ध आया तब भी हमारी स्वतंत्रता की बात स्पष्ट नहीं हुई। परन्तु हम अपने देश के भविष्य के विषय में निराशावादी नहीं हुए। आखिर, अनेक पुरुषों और महिलाओं की कुर्बानी तथा अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के कारण भारत स्वतंत्र होकर रहा।

भारत अब अंगरेजों की दासता से मुक्त हो गया है, उसे अपना विकास और उन्नति करने का अवसर मिल गया है। उसने अपना नया संविधान बना लिया है, उसके अनुसार वह पूर्ण सत्ताधारी लोकतंत्रात्मक गणराज्य है। इस पुस्तक में बताया गया है कि अंगरेजों के शासन-काल में यहाँ किस प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित रही, उसमें समय-समय पर क्या परिवर्तन हुए, और १५ अगस्त १९४७ से भारतीय स्वतंत्रता विधान के अनुसार यहाँ किस प्रकार शासन हुआ, और उसके बाद अब शासन का क्या स्वरूप है।

भारत के स्वतंत्र होने से खास परिवर्तन उन प्रदेशों की शासन-पद्धति में हुआ है, जिन्हें रियासतें या देशी राज्य कहा जाता रहा है। अब सब-रियासतें भारतीय संघ का अंग बन गईं और प्रान्तों के स्तर पर आ रही हैं; यहाँ तक कि नए संविधान में प्रान्त और रियासत का भेद

न रख कर सब को राज्य ही कहा गया है। पुस्तक में इस विषय पर यथेष्ट प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। पंचायतों और जनपद-सभाओं द्वारा गांवों के पुनरुद्धार का जो उद्योग हो रहा है, उसकी भी खुलासा चर्चा की गई है। जिन राज्यों को अभी स्वायत्त शासन प्राप्त नहीं है, अर्थात् जो संघ-सरकार द्वारा शासित हैं, उनके सम्बन्ध में हमारी चिन्ता होना स्वाभाविक है; अतः इस विषय की भी कुछ सामग्री दी गयी है।

पुस्तक बहुत बड़ी न हो, और साथ ही कोई महत्व की बात न छूट जाय, इसका हमने भरसक ध्यान रखा है। तथापि पुस्तक केवल वर्णनात्मक ही नहीं है। इसके पहले संस्करण के समय (सन् १६१५) से ही हमारा विचार यह रहा है कि पाठकों को यह भी पता होना चाहिए कि शासनपद्धति की कौनसी बातें अनुचित या हानिकारक हैं, जिनका सुधार करना आवश्यक है। जब तक भारत पराधीन रहा, शासनपद्धति में त्रुटियों का होना स्वभाविक ही था। परन्तु अब भारत के स्वतंत्र होने पर भी हमारी शासनपद्धति में कुछ विकार हैं। इसलिए पुस्तक में यथा-स्थान उनका उल्लेख किया गया है। 'उपसंहार' तो इस दृष्टि से विशेष विचारणीय है।

पिछले थोड़े से दिनों में भारतीय संविधान सम्बन्धी कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं, तथा होती जा रही हैं, खासकर इस लिए कि यह विषय शिक्षा-संस्थाओं के पाठ्य-क्रम में है। तथापि कितने ही पाठक हमारी पुस्तक को चाहते रहे हैं। उन्होंने हमें इसका नया संस्करण करने का अवसर दिया, इस के लिए हम उनके कृतज्ञ हैं। आशा है, उन्हें इसमें अपने ढंग की कुछ विशेषताएँ मिलेंगी, और वे इसे अपनाते रहेंगे।

विनीत

दारागंज, प्रयाग
१--१--१६५१

आठवें संस्करण की प्रस्तावना

'भारतीय शासन' प्रथम बार सन् १९१५ में प्रकाशित हुई थी, यह इसका आठवाँ संस्करण है, वैसे सन् १९३० के विधान की दृष्टि से यह दूसरा है। × × ×

इस अवसर पर हमने पुस्तक में आवश्यक संशोधन करने का भरसक प्रयत्न किया है। नये विधान का प्रान्तीय भाग लगभग दो वर्ष से अमल में आ रहा है, देश को इसके गुण-दोषों का प्रत्यक्ष अनुभव हो रहा है। आठ प्रान्तों में इस समय कांग्रेस ने मंत्रित्व ग्रहण कर रखा है। समय-समय पर कई समस्याएँ देश के सामने आयी हैं। कांग्रेस की संगठित शक्ति के कारण उनका हल इस प्रकार किया गया है, कि जनता का अधिक से अधिक हित साधन हो। शासन-विधान ने प्रान्तों में गवर्नर को सर्वेसर्वा बना रखा था, परन्तु कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने क्रमशः अपना उचित अधिकार प्राप्त करते हुए भारतीय राष्ट्र की अधिक से अधिक सेवा करने की चेष्टा की। इन प्रश्नों पर प्रकाश डालने के लिए, इस संस्करण में प्रान्तीय सरकार के एक की जगह दो परिच्छेद किये गये—एक, गवर्नरों के सम्बन्ध में; और दूसरा, मंत्रिमंडल के सम्बन्ध में। इसके अतिरिक्त, एक परिच्छेद में ब्रिटिश भारत के उन अभागे प्रान्तों की ओर पाठकों का ध्यान-आकर्षित किया गया है, जिन्हें वर्तमान विधान ने अपने उत्तरदायी शासन की भेंट से इस आधार पर वंचित रखा है कि वे 'चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त' हैं। × × ×

संघ शासन के विषय में भी, इस संस्करण में, अधिक प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है। अस्तु, जहां तक बन आया, पुस्तक अधिक से अधिक उपयोगी बनायी गयी है।

वृन्दावन
१-१२-३८

भगवानदास केला

पहले संस्करण की प्रस्तावना

शासन का कार्य यदि कठिन है तो इस विषय को समझाने के अभिप्राय से कोई पुस्तक लिखना भी सहज नहीं। यह विचार हमें पहले भी था, और कार्य आरम्भ करने पर तो इसकी गुरुता और भी ध्यान में आ गयी। परन्तु जिस भाषा का प्रचार आज दिन भारतवर्ष की अन्य किसी भी भाषा से अधिक है, एवं जो हमारे राष्ट्र की राष्ट्र-भाषा होने का सच्चा दम भर सकती है, उस परम हितकारणी हिन्दी भाषा में शासन जैसे महत्व के विषय की मोटी-मोटी बातों का समावेश रखने वाली पुस्तकों के न मिलने का दुःख जब असहनीय हो चला तो अल्प योग्यता और क्षुद्र शक्ति रखने पर भी हम इस पुस्तक को लिखने के लिए वाध्य हो गए। नहीं मालूम, कितने पाठक हमारी कठिनाइयों का अनुमान कर सकेंगे। × × ×

हम जानते हैं कि इस पुस्तक के कई एक विषयों पर पृथक् पृथक् स्वतंत्र ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं, परन्तु यह कार्य योग्यतर पात्रों के लिए छोड़, हमने एक ही स्थान पर सब के दिग्दर्शन मात्र से संतोष किया है।

ब्यावर
अगस्त, सन् १९१५ } **भगवानदास केला**

पहले संस्करण पर कुछ सम्मतियाँ

'सरस्वती'—इसमें समग्र शासन-प्रणाली का दिग्दर्शन है। × × बड़ी अच्छी पुस्तक है। सामयिक है। शासन से सम्बन्ध रखने वाली बातों का स्थूल ज्ञान प्राप्त करने के लिए आइने का काम देने वाली है।

'चांद'—यह पुस्तक सर्वसाधारण और विशेषकर विद्यार्थियों, पत्र-सम्पादकों और पाठकों के बड़े काम की है। इस अत्युपयोगी और अपेक्षित पुस्तक लिखने के लिए लेखक महाशय को बधाई! हम आशा करते हैं कि प्रत्येक देशभक्त हिन्दी प्रेमी इसे अपनाएगा।

विषय-सूची

(१) संयुक्त भारत का आदर्श

(२) भारत में अङ्गरेजी राज्य का विस्तार

(३) भारतीय-शासन-विकास [१]; सन् १८५८-१९१८

(४) भारतीय-शासन-विकास [२]; सन् १९१९-४६

(५) स्वतन्त्रता और विभाजन की योजना

(६) नये संविधान से पहले की शासनपद्धति

(७) संविधान-निर्माण

(८) संविधान का स्वरूप और विशेषताएँ

(९) भारतीय नागरिकता

(१०) मूल अधिकार

(११) राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

(१२) निर्वाचन

(१३) राष्ट्रपति और उप-राष्ट्रपति

(१४) मन्त्रिपरिषद्

(१५) संसद् या पार्लिमेंट

(१६) उच्चतम न्यायालय

(१७) संघ का राज्य-क्षेत्र

(१८) स्वायत्त राज्यों की कार्यपालिकाएँ

(१६) स्वायत्त राज्यों के विधान-मंडल

(२०) स्वायत्त राज्यों की न्यायपालिकाएँ

पहला अध्याय

संयुक्त भारत का आदर्श

"बहुत प्राचीन काल से ठेठ उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्द महासागर तथा लंका तक, और इसी तरह पश्चिम में काबुल-कंधार से लेकर पूर्व में आसाम-बर्मा तक के भू-खंड को हम एक देश मानते और पूजते आए हैं।"

वर्तमान भारत कई अंगों से वंचित—इस पुस्तक में भारत की शासनपद्धति का विवेचन करना है, पहले इसके आकार-प्रकार का विचार करलें। बात यह है कि हमारा वर्तमान भारत—अपने कई अङ्गों से वंचित है। यह वह महान् भारत नहीं है, जिसकी, सांस्कृतिक दृष्टि से, हम चिरकाल से कल्पना और आराधना करते रहे हैं। अङ्गरेजों ने उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में ही लङ्का को भारत से जुदा कर दिया था। सन् १९३५ में उन्होंने बर्मा को अलग कर डाला था। अन्त में उन्होंने यहाँ से जाते-जाते, साम्प्रदायिक नेताओं की दुर्भावनाओं से लाभ उठाकर, अगस्त १९४७ में कुछ अन्य प्रदेशों को भारत से अलग करके 'पाकिस्तान' नाम का राज्य बना डाला। इस प्रकार उनकी कूटनीति के फल-स्वरूप भारत अब लङ्का, बर्मा और पाकिस्तान से वंचित है, यद्यपि इनके निवासी कई बातों में भारतवासियों के बहुत ही निकट हैं और समान स्वार्थ वाले हैं।

लंका—यहाँ अङ्गरेजों का अधिकार अठारहवीं सदी में हुआ। इसका क्षेत्रफल २५,३३२ मील और जन-संख्या लगभग ६४ लाख है। इसका और भारत का बहुत प्राचीन काल से, खासकर रामायण के समय से गहरा सम्बन्ध रहा है। दोनों की संस्कृति, धर्म, रीति-रिवाज आदि में बहुत समानता है। यहाँ के अधिकांश निवासी बौद्ध धर्मानुयायी हैं। ब्रिटिश सरकार ने सन् १८०२ से ही इसे भारत से जुदा कर दिया था। फरवरी १६४८ से यह स्वतन्त्र है, इसकी अलग सरकार है। यह राज्य राष्ट्रमंडल का सदस्य है और इसका ब्रिटिश सरकार से वैसा ही सम्बन्ध है, जैसा राष्ट्रमंडल के स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों का है। यह सर्व-विदित है कि जब इस प्रदेश के विकास के लिए लङ्का में यथेष्ट श्रमी न मिले थे तो भारत के ही नर-नारियों ने वहाँ जाकर इसे उन्नत किया था। खासकर दक्षिण भारतीयों ने ही वहां चाय, रबर और नारियल आदि की पैदावार बढ़ाकर इसे इतना सुख-समृद्धि-पूर्ण बनाया। इस समय वहां आठ लाख भारतीय रहते हैं। क्या उन्हें यही पुरस्कार मिलना चाहिए कि उन्हें वहां से निकाल बाहर करने के उपाय काम में लाए जायँ उन्हें वहां की नागरिकता प्राप्त करने में अनेक बाधाएँ खड़ी की जायँ और वे आजीविका के साधनों से वंचित होकर लङ्का छोड़कर चले आवें।

भारतीयों के पुराने सम्बन्ध और सहयोग को कृतज्ञता-पूर्वक याद रखते हुए लङ्का की सरकार तथा जनता को चाहिए कि वे वहां के भारतीयों के सुख-पूर्वक रहने की व्यवस्था करें लङ्का और भारत का सहयोग दोनों के लिए हितकर है।

बर्मा—उन्नीसवीं सदी के मध्य में, भारत पर अधिकार कर लेने के बाद अङ्गरेजों ने उस सदी के अन्त तक बर्मा प्राप्त करके उसे ब्रिटिश भारत का ही एक प्रान्त बना दिया था। बर्मा को जीतने में भारत के ही

जन-धन का उपयोग हुआ था। यह प्रदेश अपनी चावल आदि पैदावार के कारण अङ्गरेजों के लिए बहुत लाभदायक रहा। मिट्टी के तेल के कारण, आधुनिक मोटर और हवाई जहाजों के युग में, इसका राजनैतिक दृष्टि से भी साम्राज्य के लिए बहुत उपयोगी होना स्वाभाविक था। इसके अतिरिक्त, सिंगापुर में जल-सेना का केन्द्र बनाने से बर्मा का महत्व और भी बढ़ गया। ब्रिटिश भारत में स्वतन्त्रता-आन्दोलन क्रमशः अधिकाधिक प्रबल होने पर अङ्गरेजों को भारत के साथ बर्मा के भी स्वतन्त्र होने की आशङ्का हुई और उन्होंने भारत का मत लिए बिना, तथा बर्मा की कौंसिल के मत के विरुद्ध, सन् १६३५ के शासन-विधान द्वारा उसे भारत से अलग कर दिया और उसके लिए पृथक् शासन-पद्धति बना दी, जिससे यदि भारत स्वतन्त्र हो जाय तो भी बर्मा उनके अधीन रहे।

अङ्गरेजों की यह सफलता दीर्घ-काल तक न रही। भारत से पृथक् होने पर भी बर्मा में स्वतन्त्रता-आन्दोलन चलता रहा, और सन् १६४७ में वह स्वाधीन हो गया; स्वाधीन होने के साथ ही वह ब्रिटिश राष्ट्र-मंडल से भी पृथक् हो गया। अस्तु, जिस बर्मा को प्राप्त करने में भारत का जन-धन लगा था, जो संस्कृति और धर्म आदि में भारत के बहुत निकट था, उसे अङ्गरेजों ने १६३५ से हमसे जुदा कर दिया। अब वहां भी भारतीयों के प्रति अच्छी नीति नहीं रखी जाती। उद्योग-व्यापार और नौकरियों में भारतीयों को 'सौतेली सन्तान' समझा जाता है। बर्मा सरकार को चाहिए कि भारत से मैत्री और सद्भावना का व्यवहार करे, इस में दोनों ही देशों का हित है।

पाकिस्तान—पाकिस्तान भारत के किसी भाग का पुराना नाम नहीं है। यह तो कुछ प्रदेशों को मिलाकर उन्हें दिया हुआ एक नया नाम है। इसके दो भाग हैं—पूर्वी और पश्चिमी। पूर्वी पाकिस्तान में पूर्वी बंगाल का प्रान्त और सिलहट का जिला है। मुख्य पाकिस्तान पश्चिम में है। इसमें पश्चिमी पंजाब, सिन्ध, बिलोचिस्तान और पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तथा

इस ओर की रियासतें हैं। कुल पाकिस्तान का क्षेत्रफल ३ लाख ६१ हजार वर्ग मील है। पाकिस्तान बनने के समय, (सन् १९४१ की गणना के अनुसार) इस राज्य की कुल आबादी लगभग सात करोड़ थी, पर पश्चिमी पाकिस्तान में हिन्दुओं (और खासकर सिक्खों) के प्रति बहुत दुर्व्यवहार हुआ और भारतीय संघ के कुछ मुसलमानों में साम्प्रदायिक भावना ने उग्र रूप धारण किया। यही बात पीछे पूर्वी पाकिस्तान के सम्बन्ध में हुई। इस से इन दोनों राज्यों के लाखों आदमी एक राज्य से दूसरे राज्य में गए। पर पाकिस्तान जाने वालों की अपेक्षा वहाँ से आने वालों की संख्या अधिक रही। फिर, जो मुसलमान यहाँ से पाकिस्तान गए थे, उनमें से कितने ही यहाँ लौट आए। इस प्रकार पाकिस्तान की आबादी लगभग साढ़े छः करोड़ होने का अनुमान है।

इस राज्य का संविधान कराची में विधान-सभा बना रही है। उसमें उपस्थित किए गए उद्देश्य-प्रस्ताव में कहा गया था कि 'पाकिस्तान एक स्वतंत्र सार्वभौम संघीय राज्य बनेगा। इसमें जन-प्रतिनिधियों की इच्छा ही अधिकार और शक्ति का निर्णय करेगी तथा इस्लाम के आधार पर जनतंत्र, स्वातंत्र्य, समानता, सहिष्णुता और सामाजिक समता पूर्ण रूप से मानी जायगी। यहाँ प्रत्येक मुसलमान व्यक्तिगत तथा सामाजिक रूप में अपने धर्म और मान्यताओं का पालन करेगा तथा यहाँ अल्पसंख्यकों को भी अपने धर्मों और मान्यताओं को निभाने का अवसर दिया जायगा।' इससे स्पष्ट है कि यह राज्य इस्लाम पर आधारित होगा।

इस समय (अक्तूबर १९५०) पाकिस्तान के प्रधान मंत्री श्री लियाकत-अली खाँ मुस्लिम लीग के सभापति भी हैं। आपका कथन है कि मुस्लिम लीग ही पाकिस्तान है। लीग की साम्प्रदायिकता प्रसिद्ध है, उसकी सदस्यता गैर-मुस्लिमों के लिए खुली नहीं है, इससे अल्पसंख्यकों के मन में पाकिस्तान के शासन के सम्बन्ध में भय और आशंका होना स्वाभाविक है। इसका असर भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध पर पड़ता है, और परोक्ष रूप से भारत के

अल्प-संख्यकों और बहुसंख्याकों के आपसी सम्बन्ध पर भी पड़ सकता है। आवश्यकता है कि पाकिस्तान अपनी साम्प्रदायिकता हटा कर भारत के साथ एक अच्छे सहयोगी पड़ोसी का व्यवहार करे। आधुनिक जगत में किसी राज्य का एक विशेष सम्प्रदाय के अनुसार संचालित होना अन्ततः अव्यावहारिक और अनिष्टकर होता है।

भारतीय संघ का क्षेत्रफल और जनसंख्या—पाकिस्तान का अलग राज्य बन जाने पर भारतीय संघ का क्षेत्रफल १२,२०,०९९ वर्गमील रह गया। भारतीय सङ्घ की जनसंख्या, सन् १९४१ की गणना के अनुसार लगभलग बत्तीस करोड़ है, आगामी गणना सन् १९५१ में होगी। उससे मालूम होगा कि गत दस वर्षों में जनसंख्या कितनी बढ़ी है। अनुमान किया जाता है कि अब जनसंख्या लगभग पैंतीस करोड़ होगी। भारतीय संघ में कौन-कौन से राज्य सम्मिलित हैं, यह आगे बताया जायगा। यहाँ यह विचार किया जाता है कि भारत के कौन से राज्य स्वतंत्र हैं, तथा यहाँ के किन भागों में अभी विदेशी प्रभुत्व है।

भारत के स्वतंन्त्र राज्य; नेपाल और भूटान—भारत में स्वतन्त्र राज्य नेपाल और भूटान हैं। नेपाल राज्य हिमालय के दक्षिण में, अधिकांश में पहाड़ी राज्य है। इसकी लम्बाई पाँच सौ मील से अधिक और चौड़ाई एक सौ चालीस मील है। पिछली मनुष्य-गणना के अनुसार, यहाँ की जनसंख्या साठ लाख है। क्षेत्रफल छप्पन हज़ार वर्गमील है नेपाल के छोटे-बड़े कुल २२ भाग हैं। यहाँ का प्रधान शासक 'महाराजाधिराज श्री पाँच सरकार' कहलाता है। परन्तु शासन-सत्ता प्रधान मंत्री के हाथ में है, यह 'महाराज तीन सरकार' कहलाता है। इससे नीचे जंगी लाट होता हैं, वह इसके देहान्त के बाद इसके पद का अधिकारी हो जाता है। वास्तव में यहाँ न तो कोई नियमित शासन-व्यवस्था है, और न कोई कानून। राणा (प्रधान मंत्री) की इच्छा ही

यहाँ कानून है। सब आय-व्यय उसकी ही इच्छा के अनुसार होता है। सेना भी उसके ही अधीन होती है, उसमें उसके वंशजों को ही अफसरों के उच्च पद मिलते हैं। नेपालियों ने राणाओं की निरंकुश सत्ता के विरुद्ध कई बार आंदोलन किया पर उन्हें सैनिक बल से बुरी तरह दबा दिया गया।

पिछले दिनों भारत और नेपाल की नई संधि हुई है। मालूम हुआ है कि उसके अनुसार दोनों राज्यों ने एक-दूसरे की सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्नता स्वीकार की है। साथ ही इन दोनों देशों में से एक का नागरिक दूसरे देश में जाकर सम-राष्ट्रीयता का उपभोगकर सकेगा।

इस माह (नवम्बर १९५०) राजा साहब, जो अपने आपको सत्ताहीन तथा एक राजबन्दी सा अनुभव कर रहे थे, भारत आए हैं। राणा की सरकार ने नैपाल में एक तीन वर्ष के बालक को गद्दी पर बैठा दिया है, पर भारत, इंगलैंड या अमरीका ने उसे मान्य नहीं किया। नैपाल में जन आन्दोलन जोर पर है, जनता, और सेना की राज-निष्ठा राजा के प्रति है। कांग्रेस-सेना उसके ही नाम पर काम कर रही है, उसकी विजय पर विजय हो रही है।

चीन में कम्युनिस्टों का राज्य हो जाने और तिब्बत में उनका प्रसार हो जाने से नेपाल में लाल खतरे की आशंका बढ़ गयी है। निरंकुश राणाओं द्वारा शासित, असन्तुष्ट जनता और अल्प साधनों वाला नेपाल-राज्य अपनी रक्षा करने में असमर्थ रहेगा और भारत के लिए भी समस्या उत्पन्न करेगा। आवश्यकता है कि यहाँ जिम्मेदार लोकतंत्रात्मक शासन स्थापित हो। अच्छा हो, यदि यह राज्य भारत की, उत्तरी पहरेदार के रूप में, एक बलवान इकाई बन जाय; उसे अपनी रक्षा और वैदेशिक सम्बन्ध तो भारत सरकार को सौंप ही देने चाहिए।

भूटान का क्षेत्रफल बीस हजार वर्गमील और जनसंख्या लगभग ढाई लाख है। यहाँ की सरकार बाहरी मामलों में भारत-सरकार की सलाह से

काम करती है, भीतरी मामलों में स्वतंत्र है। प्रधान शासक महाराजा कहलाता है। हाल में भारत-भूटान संधि हुई है। इसके अनुसार भूटान को पूरी आंतरिक आजादी होगी। लेकिन जहां तक विदेश-नीति का ताल्लुक है, दक्षिणी चीन पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो जाने से भारत सरकार भूटान की सीमा पर होनेवाली कम्यूनिस्टों की कार्यवाही पर पूरी निगरानी रखेगी। इसके अलावा वह यहाँ की आंतरिक शासन-व्यवस्था भी ऐसी नहीं होने देगी, जिससे हिन्दुस्तान की आन्तरिक या बाह्य सुरक्षा को किसी किस्म का खतरा पहुँचे।

फ्राँसीसी और पुर्तगाली बस्तियाँ—सतरहवीं सदी में यहाँ व्यापार करने के लिए कई योरपीय जातियों के आदमी आये थे। पीछे समय पाकर इन्होंने यहाँ अधिकार जमाने का यत्न किया। कुछ लड़ाइयों की हार-जीत तथा सन्धियों के बाद अधिकांश भारतवर्ष में अंगरेजों का अधिकार या प्रभाव हो गया। कुछ स्थान फ्रांसीसी और पुर्तगाली लोगों के पास रह गये। अब भारत से अँगरेजी सत्ता हट गयी, पर कुछ भागों में अन्य योरपीय शक्तियों का प्रभुत्व है।

फ्रांस के अधीन चार नगर हैं :—

१—यनाम (गोदावरी नदी के डेल्टे के किनारे पर),

२—माही (मालाबार के किनारे पर),

३—कारीकल (कारोमंडल के किनारे पर), और

४—पांडेच्चरी (कारोमंडल के किनारे पर)।

पांडेच्चरी इन सब की राजधानी है। चन्द्रनगर सहित इन सब स्थानों का क्षेत्रफल २०३ वर्ग मील, और जन-संख्या पौने तीन लाख के लगभग थी। इस नगर में गत वर्ष जनमत लिया गया; भारत के पक्ष में ७४७३ और फ्रांस के पक्ष में केवल ११४ मत प्राप्त हुए। अब यह नगर भारतीय संघ के अन्तर्गत है। आशा है इसी प्रकार फ्रांस के अन्य प्रदेश भी भारत में मिल जायँगे। यहाँ जनमत के बारे में कुछ कहना

है। लोकमत या सर्वसाधारण की भावना का आदर करना ठीक है। परन्तु हम इस सीधे-सादे मामले में जनमत को अनावश्यक समझते हैं। फिर, मत-संग्रह में कभी-कभी कैसी चालबाजियाँ की जाती हैं, यह छिपा नहीं है। यदि एक भी फ्रांसीसी बस्ती में जनमत की आड़ में, फ्रांस की सत्ता बनी रही तो वह भारत के लिए स्थायी संकट होगा। यह हम क़दापि सहन नहीं कर सकते।

पुर्तगाल के अधीन तीन स्थान हैं :—

१—गोवा (बम्बई के दक्षिण में),

२—डामन (गुजरात के किनारे पर),

३—ड्यू (काठियावाड़ के किनारे पर)।

इन तीनों स्थानों का क्षेत्रफल केवल साढ़े चौदह सौ वर्ग मील और जनसंख्या लगभग छः लाख है। इन स्थानों के लिये एक गवर्नर-जनरल गोवा (राजधानी) में रहता है। पुर्तगाल राज्य को चाहिए कि स्वयं ही इन भारतीय भागों को स्वतंत्र कर दे, अन्यथा उसे इनकी जनता से संघर्ष लेना होगा, जिसमें भारत की सहानुभूति स्वभावतः इन स्थानों की स्वतंत्रता-प्रेमी जनता से होगी, और अन्त में पुर्तगाल को नीचा देखना पड़ेगा। पिछले दिनों पुर्तगाल-सरकार ने पाकिस्तान से हथियार आदि हैदराबाद पहुँचाने में बहुत सहायता दी थी। इससे स्पष्ट होगया कि गोआ का बन्दरगाह, विदेशियों के अधीन रहते हुए, भारत के वास्ते कितना खतरनानक हो सकता है। इसलिए इन सभी स्थानों में विदेशी सत्ता का अन्त होना आवश्यक है। सुरक्षा के अतिरिक्त यह हमारे राष्ट्र के स्वाभिमान का भी प्रश्न है।

यहाँ एक बात का उल्लेख करना आवश्यक है। फ्राँसीसी या पुर्तगाली बस्तियों की स्वतंत्रता की लड़ाई स्वयं इन बस्तियों के निवासियों को लड़नी है, कारण, ये देशी रियासतें नहीं हैं कि ब्रिटिश सरकार के हटने पर भारत सरकार इन्हें भारतीय संघ में मिलाले। ये दूसरे राज्यों के अधीन प्रदेश हैं,

जिनका ब्रिटिश सरकार से कोई शर्तनामा नहीं था। अस्तु, अगर फ्रांस और पुर्तगाल की सरकारें समय रहते अपनी इन बस्तियों को आजाद नहीं करतीं तो इन बस्तियों के नागरिक अपने पड़ोसी भारतीयों के उदाहरण से प्रोत्साहित होकर अपनी स्वतंत्रता लिए बिना न रहेंगे। उन्हें स्वतंत्रता बिना भीषण कांड के मिल जाय, इसी में फ्रांस और पुर्तगाल का हित है आशा है, वे समय की गति को पहिचानें और शीघ्र उचित कदम उठावें।

हमारी कल्पना का भारत—बहुत प्राचीन काल से ठेठ उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में हिन्द महासागर और लंका तक और इसी तरह पश्चिम में काबुल-कंधार से लेकर पूर्व में आसाम बर्मा तक के भूखण्ड को हमने धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक देश माना है। इस एक देश में एक से अधिक राज्य होने से हमारी मान्यता में अन्तर नहीं आया। हम यह स्वप्न देखते रहे और यथा-सम्भव प्रयत्न करते रहे कि यह देश राजनैतिक दृष्टि से भी एक हो जाय। अशोक और अकबर के समय हमारी आकांक्षा एक सीमा तक पूरी हुई। पीछे देश अँगरेजों के अधीन हो गया, जिन्होंने अपने स्वार्थ के लिए इसके अधिक-से-अधिक भागों पर अधिकार जमाया और साथ ही समय-समय पर इसके कुछ भागों को अलग भी करते रहे।

१५ अगस्त १९४७ के दिन हमें भारत को स्वतंत्र होते देखने का तो सुअवसर मिला, परन्तु इस समय भी विभाजन के रूप में हम पर एक नया प्रहार हो गया। अस्तु, अब भारतीय संघ के आकार प्रकार के सम्बन्ध में हमारी आकांक्षा यह है :—

१—फ्रांसीसी और पुर्तगाली बस्तियाँ शीघ्र ही भारतीय संघ का अंग बनें; भारत में विदेशी सत्ता का पूर्णतया अन्त हो।

२—नैपाल और भूटान में लोकतन्त्रात्मक शासन पद्धति प्रचलित हो और वे भारतीय संघ की स्वराज्य-प्राप्त इकाई हों। इसी में उनकी रक्षा और भारत का हित है।

३—हमारा निश्चित मत है कि स्वयं पाकिस्तानी जनता के हित की दृष्टि से पाकिस्तान को भारत से अलग एक जुदा राज्य के रूप में नहीं रहना चाहिए। परन्तु वहाँ की साम्प्रदायिक भावनाओं का विचार करते हुए हमें इस बात का आग्रह नहीं करना चाहिए कि पाकिस्तान भारत में मिल जाय। ऐसा करने से कटुता बढ़ेगी ही। स्वयं पाकिस्तान के नागरिक उस राज्य को भारत में मिलाने के पक्ष में हो जायें, तभी उद्देश्य सिद्ध होगा। हमें जहां तक व्यवहारिक हो, सहयोग और मित्रता के भावों की वृद्धि करते रहना चाहिए। हमारा विश्वास है कि धैर्य रखने से दोनों राज्यों का मेल होकर रहेगा। हमें जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

४—यदि लंका और बर्मा की जनता अपने राज्यों का भारत से अलग अस्तित्व रखने की ही इच्छुक हों तो वे सहर्ष अलग रहें; हमारे विचार से उनका भारतीय संघ में मिलना ही हितकर है। परन्तु यदि वे अलग रहे तो आपस में एक-दूसरे से घनिष्ट मित्रता वा सम्बन्ध रहना चाहिए।

ऐसा होने से भारत एशिया में और संसार में अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन कर सकेगा, ऐसी आशा है।

दूसरा अध्याय

भारत में अँगरेज़ी राज्य का विस्तार

"भारत में अँगरेजी राज्य की स्थापना का रहस्य यही है कि अंगरेजों ने इस देश के एक भाग के आदमियों तथा यहाँ के ही धन के सहारे दूसरे भाग को प्राप्त किया; यह हमारी राष्ट्रीयता की कमी का स्पष्ट प्रमाण था।"

१५ अगस्त १९४७ से भारत या इंडियन यूनियन (भारतीय संघ) का नया संविधान २६ नवम्बर १९४९ को स्वीकार किया गया। वास्तव में यह २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ। इसके अनुसार जो शासन पद्धति

यहाँ प्रचलित है। उसका ही विवेचन करना इस पुस्तक का मुख्य विषय है। पर उसे समझने के लिए यह जान लेना उपयोगी है कि उसकी पृष्ठ-भूमि क्या है। उसमें पहले की कौनसी बातें कुछ विकसित या परिवर्तित रूप में सम्मिलित हैं। यों तो वर्तमान पर भूत काल की थोड़ी बहुत छाया हमेशा ही रहती है, हमारे वर्तमान संविधान में तो कितनी ही बातें ऐसी हैं, जिनका सूत्रपात अंगरेजों के शासन-काल में ही हो गया था, और जिनका पीछे धीरे-धीरे विकास हुआ। इसलिए भारतीय शासन का क्रमागत परिचय देने के लिए हमें संक्षेप में यह भी बताना है कि अंगरेजी राज्य में यहाँ शासन-प्रबन्ध किस प्रकार स्थापित हुआ, और उसमें, समय-समय पर क्या परिवर्तन हुआ, उसके विकास की क्या दिशा रही।

भारत में अँगरेजों का आगमन—अँगरेज यहाँ सोलहवीं सदी में आने लगे। आरम्भ में वे व्यापार के लिए ही आये थे। अंगरेजों के रूप में भारत का ऐसे देश के निवासियों से सम्पर्क हुआ जो अपने वैधानिक विकास के लिए, अपने विधान-मंडल (पार्लिमेंट) की प्राचीनता के लिए बहुत प्रसिद्ध है, जिसकी पार्लिमेंट को 'पार्लिमेंटों की माता' कहा जाता है। हाँ, यह ठीक है कि अंगरेज पूंजीवादी और साम्राज्यवादी रहे हैं। वे अपने लाभ के लिए यहाँ आये थे। अपने कार्यों में उनकी निगाह खासकर अपने स्वार्थ पर रहती थी। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए उन्होंने इस देश में क्या नहीं किया, और भारत को उससे क्या हानि नहीं पहुँची। उसका विचार करने का यहाँ स्थान नहीं है। यहाँ तो पाठकों का ध्यान इसी बात की ओर दिलाना है कि हमने उनकी शासनपद्धति से कई बातें ली हैं। अंगरेज अब यहाँ से चले गए हैं। पर उनकी चलाई हुई शासन-पद्धति हमारे संविधान को स्पष्ट रूप से प्रभावित किए हुए है। अस्तु, अंगरेजों का भारत आना भारतीय इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है।

कम्पनी की राजनैतिक सत्ता का बढ़ना—सन् १६०० में

महारानी एलिज़वेथ से सनद (चार्टर) लेकर लगभग दो सौ अंगरेज व्यापारियों ने एक कम्पनी स्थापित की, उसका नाम 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' था। क्रमशः उसके व्यापार की वृद्धि होती गयी। धीरे-धीरे उसके डच (हालैंड वासी) पुर्तगाली और फ्राँसीसी प्रतिद्वन्द्वियों का ह्रास होता गया। भारत की राजनैतिक दुरवस्था से लाभ उठाकर वह अपनी सत्ता बढ़ाने लगी। बात यह थी कि सम्राट् औरंगजेब की मृत्यु (सन् १७०७) के बाद यहाँ केन्द्रीय शासन कमजोर हो गया। प्रान्तों के सूबेदार और नवाब खुदमुखतार हो चले। उधर औरंगजेब के समय की साम्प्रदायिक नीति ने भी अपना कुफल दिखाया। जगह-जगह केन्द्रीय शक्ति की अवहेलना होने लगी। कितने ही स्थानीय शासकों ने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं या स्वार्थवश कम्पनी को सहायता दी। ऐसी परिस्थिति में कम्पनी अधिकाधिक शक्तिवान होती गई। सन् १७५७ में उसका बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला से संघर्ष हुआ। नवाब के लोभी सेनापति मीरजाफर ने उसे ऐन समय पर धोखा दिया तथा अंगरेज सेनापति क्लाइव और वाटसन ने बड़ी चालाकी और मक्कारी से काम लिया। कूटनीति के बल पर सन् १७५७ की प्लासी की लड़ाई में कम्पनी ने विजय प्राप्त की। उसने मीरजाफर को बंगाल का नवाब बना दिया। पर वह तो नाम मात्र का नवाब था; असली शक्ति कम्पनी के हाथ में थी।

सन् १७६५ में बादशाह ने सन्धि के रूप में कम्पनी को बंगाल बिहार और उड़ीसा की दीवानी अर्थात मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इससे कम्पनी को इन स्थानों में कानूनी हक मिल गया। कम्पनी केवल व्यापार करनेवाली संस्था न रही, वह राज्य भी करने लगी। वह मालगुजारी वसूल करती, अपनी सेना रखती, और अपनी रक्षा करने के अलावा अधिक भूमि प्राप्त करने के वास्ते दूसरों पर आक्रमण भी करती थी। अब उसके लिए भारत में राज्य-स्थापना का मार्ग साफ हो गया। उत्तर भारत में एक स्थान के बाद दूसरे स्थान पर अधिकार प्राप्त

करने के लिए उसके पास यथेष्ट धन-जन होता गया। भारत में अँगरेजी राज्य की स्थापना का रहस्य यही है कि अंगरेजों ने इसी देश के एक भाग के आदमियों तथा यहाँ के ही धन के सहारे यहाँ के दूसरे भाग को प्राप्त किया; इसमें हमारी राष्ट्रीयता की कमी का स्पष्ट भाग है।

प्रान्तों की रचना—पहले कम्पनी का प्रबन्ध एक डायरेक्टरों की सभा करती थी। इसमें २४ डायरेक्टर और एक गवर्नर होता था। सतरहवीं सदी के अन्त में कलकत्ता, बम्बई और मदरास में अलग-अलग प्रबन्धकर्ता गवर्नर या प्रेसीडेन्ट रहने लगा; प्रत्येक का शासनाधीन प्रदेश प्रेसीडेन्सी कहा जाता था। हरेक प्रेसीडेन्सी सीधे डायरेक्टरों के अधीन थी। गवर्नर अपनी प्रेसीडेन्सी का प्रबन्ध एक कौंसिल द्वारा करता था। धीरे-धीरे कम्पनी के अधिकार में अधिक भूमि आती गई, और वह इसे ऊपर बताए हुए तीन प्रेसीडें-सियों में से किसी-न-किसी में शामिल करती गई। इस प्रकार प्रेसीडेंसी का अर्थ बड़ा प्रान्त हो गया। जब इन प्रेसीडेंसियों की सीमा बहुत अधिक बढ़ गई और शासन की दृष्टि से असुविधा मालुम होने लगी तो क्रमशः नए प्रान्त बनाए गए।

कम्पनी का प्रबन्ध—कम्पनी को भारत से अधिक-से-अधिक धन-संग्रह करने की इच्छा थी। उसने गरीब किसानों से खूब कसकर मालगुजारी वसूल की। दूसरे कर प्राप्त करने के लिए भी उसने जनता के प्रति कठोरता की नीति बर्ती। उसके कर्मचारियों के लोभी और रिश्वतखोर होने के कारण सब कारोबार और उद्योग-धन्धे नष्ट-भ्रष्ट हो गये और न्यायालयों में बहुत बेइन्साफी होने लगी। सन् १७७२ में वार्न हेस्टिंग्स बंगाल का गवर्नर हुआ। उसने मालगुजारी के सम्बन्ध में जमींदारों से पाँच वर्ष के लिए बन्दोबस्त किया। मालगुजारी का ठेका दिया जाने लगा और उसे वसूल करने के लिए हिन्दुस्तानी कर्मचारियों

को हटा कर उनका काम योरपीय कलेक्टरों को दे दिया गया। इसी समय से प्रत्येक जिले में एक कलेक्टर होने की प्रथा चली। कलेक्टर ही, पंडितों और मौलवियों की सहायता से, हिन्दुओं और मुसलमानों के मुकदमों का फैसला करने लगा। कलकत्ते में अपील की दो अदालतें स्थापित की गईं—सदर दीवानी अदालत, माल के मुकदमों की अपील के लिए; और सदर निजामत अदालत, फौजदारी मामलों की अपील के लिए।

पार्लिमेंट का हस्तक्षेप; रेग्यूलेटिंग एक्ट—सन् १७५७ से कम्पनी के राज्य का विस्तार होता गया। कम्पनी की प्रभुता स्थापित होने तथा उसके कर्मचारियों के अधिकाधिक धनवान होने पर इंगलैंड की जनता का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। कम्पनी का राज प्रबन्ध बहुत खराब था। स्वयं अँगरेज नेता उसकी निन्दा करते थे। इसके अतिरिक्त उसकी माली हालत खराब हो जाने से उसे रुपए की सख्त जरूरत हुई। पार्लिमेंट से ऋण मांगने पर पार्लिमेंट को कम्पनी के अधिकारों में खुला हस्तक्षेप करने का अवसर मिला। इस प्रकार सन् १७७३ में उसने कम्पनी के प्रदेशों के सुशासन के लिये 'रेग्यूलेटिंग एक्ट' नाम का कानून बनाया। भारत के सम्बन्ध में पार्लिमेंट का यह सबसे पहला कानून था। इसके द्वारा कम्पनी पर पार्लिमेंट का नियंत्रण अधिक हो गया। कम्पनी के भारतीय प्रदेशों का एकीकरण करने के लिए बम्बई और मदरास की सरकारें बंगाल सरकार के अधीन की गईं। बंगाल का गवर्नर गवर्नर-जनरल कहा जाने लगा। वार्न हेस्टिंगस पहला गवर्नर-जनरल हुआ। उसकी सहायता के लिये चार मेम्बरों की कौंसिल या कार्यकारिणी सभा बनाई गई। कलकत्ते में एक प्रधान जज और तीन दूसरे जजों की प्रधान अदालत (सुप्रीम कोर्ट) की स्थापना की गई। अब से कम्पनी के सारे राज्य पर गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल का अधिकार हो गया।

इस रेग्यूलेटिंग एक्ट का संशोधन सन् १७८४ में पिट के बनाए हुए कानून से हुआ। पिट के कानून के अनुसार कम्पनी के शासनप्रबन्ध की देखरेख करने के लिये पार्लिमेंट की ओर से 'बोर्ड-आफ-कंट्रोल' नाम की नियंत्रण करनेवाली कमेटी बनाई गई, जिसमें ६ सदस्य रखे गए। धीरे-धीरे भारत के अँगरेजी राज्य पर पार्लिमेंट का हस्तक्षेप बढ़ता गया। गवर्नर-जनरल के कौंसिल के सदस्यों की संख्या में एक की कमी कर दी गई, अर्थात् अब से उसमें चार की जगह तीन सदस्य रहने लगे। इस प्रकार केवल एक सदस्य द्वारा समर्थन होने पर भी गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। पीछे जाकर यह नियम कर दिया गया कि विशेष दशाओं में वह कौंसिल के मत के विरुद्ध भी कार्य कर सके।

अन्य चार्टर एक्ट—सन् १७७३ के बाद प्रति बीसवें वर्ष कम्पनी को नयी सनद दी जाने लगी। सनद बदलते समय पार्लिमेंट भारतवर्ष के शासन-सुधार के सम्बन्ध में कानून बनाती थी, जिन्हे 'चार्टर एक्ट' कहा जाता था। सन् १७७३ के बाद पहली बार सन् १७६३ में कम्पनी की सनद बदली गई। इस वर्ष के चार्टर-कानून से भारत में एक सीमा तक व्यापार करने का अधिकार दूसरे अंगरेज व्यापारियों को भी दिया गया।

सन् १८१३ के कानून से कम्पनी का भारत के व्यापार का एकाधिकार उठ गया, सब अंगरेजों को यहाँ व्यापार करने की अनुमति हो गई। भारत में शिक्षा-प्रचार के लिए कम-से-कम एक लाख रुपया सालाना खर्च करने की व्यवस्था की गई। यह नियम किया गया कि उच्च पदों की नौकरी इंगलैंड-नरेश की इजाजत से दी जाया करे।

१८३३ के कानून से भारत सरकार का मुख्य अधिकारी बंगाल का गवर्नर-जनरल न कहला कर भारत का गवर्नर-जनरल कहलाने लगा। भारत सरकार को कम्पनी के समस्त राज्य के लिए कानून बनाने का अधिकार हो गया, मदरास और बम्बई की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार न रहा। गवर्नर-जनरल की कौंसिल में कानून-सदस्य और बढ़ गया। यह

केवल कानून बनाने के समय ही कौंसिल में भाग ले सकता था। पहला कानून-सदस्य मेकाले था, जिसकी अंगरेजी शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी नीति प्रसिद्ध है। भारतीयों को यह आश्वासन दिया गया कि सरकारी नौकरियाँ मिलने का मार्ग उनके लिए खुला रहेगा, कोई आदमी अपने रंग, जाति, या धर्म आदि के कारण उनसे वंचित नहीं किया जायगा। आगरा और अवध-प्रान्त के लिए एक लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किया गया।

सन् १८५३ के कानून में यह स्पष्ट कर दिया गया कि भारत में राज्य करने का असली अधिकार ब्रिटिश सरकार को है; हाँ, जब तक पार्लिमेंट खुद शासन करना न चाहे तब तक कम्पनी बादशाह के नाम से राज्य कर सकती है। इस समय से बंगाल, बिहार और उड़ीसा के शासन के लिए एक अलग लेफ्टिनेंट-गवर्नर नियुक्त किए जाने से गवर्नर-जनरल इस कार्य से मुक्त होगया। अब कानून-सदस्य कौंसिल के दूसरे सदस्यों के समान अधिकार पाकर इसमें बैठने और सम्मति देने लगा, तथा कानून बनाने के लिए छः अतिरिक्त सदस्य बनाए गए। इस प्रकार गवर्नर-जनरल, जंगी लाट, कौंसिल के चार मेम्बरों और इन छः अतिरिक्त सदस्यों को मिला कर प्रथम बार बारह सदस्यों की विधान सभा बनाई गई। सिविल सर्विस के लिए प्रतियोगता के आधार पर दरवाजा सब के लिए खोल दिया गया, परन्तु परीक्षा इंगलैंड में ही होने के कारण भारतीयों को विशेष लाभ न मिला।

सन् १८५७ का संग्राम; कम्पनी का अन्त—भारतीयों को अँगरेजों की अधीनता अधिकाधिक असह्य होती जा रही थी, उनका आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक असन्तोष बढ़ता जा रहा था। वे समय-समय पर उनसे लड़कर अपने स्वाधीनता-प्रेम का परिचय देते रहे। लार्ड डलहौजी के शासन में ऐसा मालूम पड़ा कि भारत के एक हिस्से के बाद दूसरे हिस्से को किसी-न-किसी बहाने से, तेजी से अँगरेजों की अधीनता में लाया जा रहा है, इस पर सन् १८५७ में भारतीय स्वतंत्रता का सुप्रसिद्ध संग्राम हुआ। हिन्दुओं और मुसलमानों ने मिलकर भारत में

अँगरेजी सत्ता को नष्ट करने का प्रयत्न किया, परन्तु संगठन की कमी, उद्देश्य की असमानता और सुयोग्य नेतृत्व के अभाव के कारण वे असफल रहे। कुछ देश-द्रोही भारतीयों की सहायता से अँगरेजों की विजय रही।

सन् १८५८ से कम्पनी का अन्त हो गया, भारत का शासन-प्रबन्ध उसके हाथ से निकलकर पार्लिमेंट के अधीन हो गया। स्मरण रहे कि कम्पनी को अपने अन्तिम समय तक भारत में हुकूमत करने का कानूनी अधिकार प्राप्त न था, उसके बड़े-से-बड़े अधिकारी अपने आपको मुगल सम्राट के 'फिदविए खास' अर्थात् विशेष सेवक कहते थे और सनदों और कानूनी कागजों में लिखते थे। १८५७ की राजक्रान्ति तक सब राजकाज यहाँ के मुगल-सम्राट के नाम से होता था। पीछे अँगरेजों ने असफल बहादुरशाह को नजरबन्द करके रंगून भेज दिया। तब से इंगलैंड का बादशाह भारत- सम्राट् कहा जाने लगा और किसी भारतवासी का भारत-सम्राट् बनना बन्द हो गया।

कम्पनी के समय की भारतीय शासन-व्यवस्था पर विचार करने से यह स्पष्ट है कि इस समय इसमें भारतवासियों का कोई हाथ न था; शासक जैसा चाहते थे, प्रबन्ध करते थे; यदि उन्होंने कोई सुधार किया तो उसमें उनकी सुविधा या इच्छा ही प्रधान रही।

तीसरा अध्याय

भारतीय शासन–विकास

(१)

सन् १८५८—१९१८

'हमारी हार्दिक इच्छा है कि भारत में शान्ति-पूर्ण वातावरण में उद्योग-धंधों की उन्नति की जाय, सर्व-साधारण के लाभ और सुधार के कार्य किए जायँ, और शासन-कार्य का इस प्रकार संचालन किया जाय कि हमारी समस्त प्रजा का कल्याण हो।'

—म० विक्टोरिया की घोषणा, सन् १८५८

अगर ये (मार्ले-मिन्टो) सुधार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से भारत को पार्लिमेंटरी शासन-व्यवस्था की ओर ले जाते हैं तो कम-से-कम मैं तो इनसे कोई वास्ता नहीं रखूंगा।

—लार्ड मार्ले, सन् १९०९

पार्लिमेंट का समय—पहले कहा जा चुका है कि सन् १८५८ से भारत में ब्रिटिश पार्लिमेंट का शासन स्थापित हुआ, और यह देश १५ अगस्त १९४७ को स्वाधीन हुआ। इस प्रकार पार्लिमेंट का शासन लगभग नब्बे वर्ष रहा। भारतीय शासन-नीति की दृष्टि से इसके स्थूल रूप से तीन भाग किए जा सकते हैं—

(क) सन् १८५८ से १९१८ तक। दृढ़ केन्द्रीय शासन की स्थापना, और शासन-कार्य में भारतीयों के सहयोग की वृद्धि।

(ख) सन् १९१९ से १९४६ तक। उत्तरदायी शासन और प्रान्तीय स्वराज्य।

(ग) सन् १९४६ से १५ अगस्त १९४७ तक। भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति, परन्तु साथ ही पाकिस्तान-राज्य का निर्माण।

सन् १८५८ का कानून—इस वर्ष पार्लिमेंट ने 'भारतवर्ष के बेहतर शासन' का कानून पास किया। इसके अनुसार भारत का शासन-प्रबन्ध कम्पनी के हाथ से हटाकर इंगलैंड के शासक को सौंपा गया; जो पीछे भारत का सम्राट् (या साम्राज्ञी) कहा जाने लगा। एक भारत-मंत्री की नियुक्ति की गई। कम्पनी के कोर्ट-आफ-डायरेक्टर्स; और बोर्ड-आफ-कंट्रोल के सब अधिकार उसे दे दिए गए। भारत-मन्त्री को शासन-कार्य में सहायता देने के लिए १५ सदस्यों की एक इण्डिया-कौंसिल बनाई गई। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

महारानी विक्टोरिया की घोषणा; सरकारी नीति—ब्रिटिश पार्लिमेंट की सम्मति से महारानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन सम्बन्धी सब अधिकार अपने हाथ में ले लिए। उनकी घोषणा (नवम्बर १८५८) में पुरानी संधियों को पालन करने का आश्वासन देते हुए कहा गया कि 'हम अपने वर्तमान (भारतीय) राज्य का और अधिक विस्तार नहीं चाहते। जबकि हम अपने राज्य या अधिकारों पर किसी को आक्रमण न करने देंगे, हम राजाओं के राज्य या अधिकारों पर भी कोई आघात न होने देंगे। हम देशी राजाओं के अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा का अपने अधिकारों तथा मान-प्रतिष्ठा की तरह सम्मान करेंगे।' इसी घोषणा में भारतीयों की धार्मिक भावना की रक्षा, उनके साथ समानता का व्यवहार करने और उन्हें योग्यतानुसार सरकारी पद देने, देश की औद्योगिक उन्नति करने और शासन-कार्य को लोकहित की दृष्टि से संचालित करने का आश्वासन दिया गया।

भारतीय जनता ने इस घोषणा को बड़ा महत्व दिया और इसे अपना अधिकार-पत्र माना। पर पीछे उसे इस विषय में बहुत निराशा हुई, जो उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

भारत-मंत्री—पहले कहा गया है कि पार्लिमेंट भारत का शासन-प्रबन्ध भारत-मंत्री के द्वारा करने लगी। भारत-मंत्री पार्लिमेंट की दो सभाओं (कामन्स सभा और लार्ड सभा) में से किसी एक का सदस्य होता था। उसके दो सहायक होते थे, एक तो स्थायी, और दूसरा पार्लिमेंट की उस सभा का सदस्य, जिसका भारत-मंत्री सदस्य न हो। उसकी एक सभा (इंडिया-कौंसिल) होती थी। भारत-मन्त्री के दफ्तर को 'इण्डिया-आफिस' कहते थे। यह इंगलैंड की राजधानी लन्दन में था। इसका सब खर्च भारत के खजाने से दिया जाता था। भारत-मंत्री को सम्राट्, अपने प्रधान मन्त्री के परामर्श से, नियुक्त करता था। ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल का सदस्य होने के कारण, भारत-मन्त्री की नियुक्ति और बरख़ास्तगी वहाँ के अन्य राजमन्त्रियों के साथ लगी हुई थी। वह पार्लिमेंट के सामने प्रति वर्ष मई महीने की पहली तारीख के बाद, भारतवर्ष के आय-व्यय का हिसाब पेश करता था। उस समय पार्लिमेंट के सदस्य भारतवर्ष के शासन सम्बन्धी विषयों पर आलोचना कर सकते थे। इसे 'भारतीय बजट की बहस' कहते थे।

समय-समय पर पार्लिमेंट को भारत सम्बन्धी आवश्यक सूचना देते रहना भारत-मन्त्री का ही काम था। सम्राट् चाहता तो इसके द्वारा भारत-सरकार के बनाए क़ानून को रद्द कर सकता था। भारतवर्ष के जंगी लाट (कमांडरनचीफ़), बंगाल, तथा बम्बई और मद्रास के गवर्नर, इनकी कौंसिलों के सदस्य, हाईकोर्ट के जज, तथा अन्य उच्च राजकर्म-चारियों की नियुक्ति के लिए यह सम्राट् को सम्मति देता था।

भारत-मन्त्री भारतीय शासन के लिए पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदाता था। उसे भारतीय शासन-व्यवस्था के निरीक्षण और नियंत्रण के नियम बनाने का अधिकार था।

इंडिया कौंसिल—भारत-मन्त्री को शासन सम्बन्धी कार्य में

सहायता या परामर्श देनेवाली सभा 'इंडिया-कौंसिल' कहलाती थी। इसका अधिवेशन भारत-मन्त्री की आज्ञा से एक मास में एक बार होता था। इसका सभापति भारत-मन्त्री, अथवा उसका सहकारी मन्त्री या भारत-मन्त्री द्वारा नामजद, कौंसिल का कोई सदस्य होता था। इस कौंसिल के सदस्यों को भारत-मन्त्री नियुक्त करता था। भारत-मन्त्री को कौंसिल में साधारण मत (वोट) देने के अतिरिक्त एक अधिक मत देने का भी अधिकार था। विशेष अवसरों पर वह इस कौंसिल के बहुमत बिना भी कार्य कर सकता था। साधारणतया भारतवर्ष को कोई आज्ञा या सूचना भेजने, अथवा गवनर-जनरल या प्रान्तीय सरकारों के साथ भारत-मन्त्री का पत्र-व्यवहार होने का ढंग कौंसिल-युक्त भारत-मन्त्री द्वारा निश्चित किया जाता था।

केन्द्रीय सरकार क अधिकार-वृद्धि—सन् १७७३ के रेग्यूलेटिंग एक्ट से भारत का शासन-प्रबन्ध केन्द्रित होने लगा था। अब शासन-प्रबन्ध पार्लिमेंट के हाथ में आ जाने पर वायसराय के अधिकार तथा उत्तरदायित्व और भी बढ़ गए। प्रान्तीय सरकारों को उसके आदेशानुसार काम करना होता था, और उन्हें हरेक विषय की सूचना केन्द्रीय सरकार को देनी होती थी। उनके वास्ते नए टैक्स लगाने या ऋण लेने के लिए केन्द्रीय सरकार की, तथा किसी विषय का कानून बनाने या उसे अमल में लाने के लिए गवर्नर-जनरल की आज्ञा लेना जरूरी था। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की एजन्ट मात्र हो गईं।

कौंसिल-कानून—ब्रिटिश पार्लिमेंट ने सन् १८६१ में 'इन्डियन कौंसिल्स एक्ट' पास किया, उसके अनुसार मदरास और बम्बई की सरकारों को कानून बनाने का अधिकार फिर दिया गया, जो १८३३ में छीन लिया गया था? यह व्यवस्था की गई कि कानून बनाने के लिए

कार्यकारिणी कौंसिल के सदस्यों में सरकार द्वारा कुछ सदस्य गैर-सरकारी भी नामजद किए जाया करें। इस कानून के अनुसार पीछे बम्बई और मदरास के अलावा कई अन्य प्रान्तों में भी विधान-परिषदों की स्थापना हुई। सन् १८५३ में केन्द्रीय विधान-सभा बनने की बात पिछले अध्याय में कही जा चुकी है। अब उसके अतिरिक्त मेम्बरों की संख्या १२ तक हो सकती थी। गैर-सरकारी मेम्बर भी नियत होने लगे, और यह नियम हो गया कि इनकी संख्या आधी से कम न रहे। जिस जगह विधान-सभा का अधिवेशन हो, वहाँ के प्रान्तीय शासक को उसके अतिरिक्त मेम्बर के अधिकार प्राप्त हो गए।

सन् १८८५ ई० से भारतीय राष्ट्र-सभा (कांग्रेस) का शासन-सुधार सम्बन्धी वैध और सङ्गठित आन्दोलन आरम्भ हुआ। बहुत-कुछ उसके फल-स्वरूप १८९२ का 'इन्डियन कौंसिल्स एक्ट' बनाया गया। इससे विश्वविद्यालयों, म्युनिसिपेलटियों और जिला-बोर्डों को तथा जागीरदार आदि विशेष समूहों को विधान-परिषदों के लिए सदस्य चुनने का अधिकार मिला। यह अप्रत्यक्ष निर्वाचन था। सदस्यों को परिषदों में प्रश्न पूछने का तथा बजट पर बहस करने का भी कुछ अधिकार दिया गया था।

बंग-विच्छेद, राष्ट्रीय आन्दोलन और आतंकवाद— काँग्रेस की शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी, यह अँगरेजों को अच्छा नहीं लगा। वे काँग्रेस को हिन्दुओं की संस्था कहते हुए मुसलमानों को उससे अलग रखने की कोशिश करते रहे। सन् १९०५ में लार्ड कर्जन ने बंगाल के दो टुकड़े कर दिए, जिससे बंगाल के नए प्रान्त में मुसलमानों का हिन्दुओं से मेल कम रहे और 'पूर्वी बंगाल और आसाम' प्रांत में मुसलमानों का बहुमत हो। इसका जनता ने बहुत विरोध किया। देशव्यापी स्वदेशी आन्दोलन और विदेशी वस्तु-बहिष्कार का सूत्रपात हुआ। खासकर अरविन्द और तिलक के नेतृत्व में राष्ट्रीय दल (गरम दल) का संगठन हुआ।

श्री दादाभाई नौरोजी ने बतलाया कि भारत का ध्येय स्वराज्य है। सन् १९०७ के सूरत में होने वाले काँग्रेस-अधिवेशन में गरम और नरम दल का स्पष्ट विवाद सामने आया। सरकार द्वारा घोर दमन होने के बाद कांग्रेस में नरम दल का बोलबाला रह गया।

इधर कुछ लोगों, विशेषतया युवकों का कांग्रेस के वैध आन्दोलन पर से विश्वास उठगया। उन्होंने आतंक-मार्ग को ग्रहण किया। जगह-जगह गुप्त सभाएँ संगठित की गईं। अस्त्र-शस्त्र और धन-संग्रह करने के लिए 'डाके' डाले गए। कहीं एक अँगरेज अफसर को मार डालने की योजना की गई, कहीं दूसरे को गोली का निशाना बनाया गया। कहीं गवर्नर आदि की रेल उलटने का प्रयत्न किया गया।

मार्ले-मिन्टो सुधार और साम्प्रदायिक निर्वाचन— सन् १९०८ से नरम दल वाले ही काँग्रेस का अधिवेशन करने लगे थे। गवर्नर-जनरल लार्ड मिन्टो ने उन्हें संतुष्ट करने के लिए भारत-मंत्री लार्ड मार्ले से विचार-विनिमय किया। फल-स्वरूप सन् १९०९ में मार्ले-मिन्टो सुधार कानून बना। इसके अनुसार भारतीय विधान-सभा में साठ सदस्य होने लगे--३३ नामज़द और २७ निर्वाचित। प्रान्तीय विधान-परिषदों में गैर-सरकारी सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई। कुछ सदस्य प्रत्यक्ष रूप से भी निर्वाचित होने लगे; अधिकांश निर्वाचन तो अप्रत्यक्ष ही था। अब से भारत-सरकार का एक सदस्य भारतीय होने लगा। प्रान्तीय सरकारों के सदस्यों में भारतीयों को भी शामिल करने की व्यवस्था की गई।

जहाँ एक ओर विधान सभाओं में भारतीयों का बल बढ़ाया जा रहा था, दूसरी ओर उसे घटाने की भी योजना कर ली गई थी। स्वयं सरकार के इशारे पर मुसलमानों का डेप्यूटेशन लार्ड मिन्टो से मिला था। अन्ततः नये सुधारों में, मुसलमानों के लिए भारतीय विधान-सभा में, और पंजाब को (जहाँ मुसलमानों की आबादी अधिक थी) छोड़कर अन्य प्रान्तों की विधान-परिषदों में पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रथा जारी कर दी गई।

इस प्रकार जातिगत निर्वाचन के रूप में भारतीय राष्ट्रीयता के लिए एक विष-वृक्ष लगा दिया गया, जो पीछे उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया।

मुस्लिम लीग—अधिकारियों की भेद-भाव-नीति, मेहरबानी या रियायतों से मुसलमान प्रभावित होते रहे। उन्होंने कांग्रेस में विशेष भाग लेना पसन्द न किया। अपने राजनैतिक आन्दोलन की स्वतन्त्र व्यवस्था करने के लिए उन्होंने सन् १६०६ में मुस्लिम लीग की स्थापना कर ली। उसने बंगाल के दो टुकड़े किए जाने की सराहना की और साम्प्रदायिकता का खूब प्रचार किया।

होम रूल आन्दोलन—सन् १६११ में भारतीय लोकमत से प्रभावित होकर सरकार ने वंग-भंग को रद्द किया। इससे देश में प्रसन्नता और कृतज्ञता की लहर दौड़ती मालूम हुई, पर जनता के असंतोष के कितने ही कारण बने रहे। प्रथम योरपीय महायुद्ध (१६१४–१८) में इंगलैंड और उसके मित्र-राष्ट्रों ने पराधीन देशों के लिए आत्म-निर्णय के सिद्धान्त की घोषणा की। इससे भारतीय जनता में स्वराज-प्राप्ति के लिए नई आशा और उत्साह का उदय हुआ। इसी समय लोकमान्य तिलक और श्रीमती एनीबिसेंट ने 'होमरूल-लीग' (स्वशासन-संघ) स्थापित की। देश भर में जगह-जगह इसकी शाखाएँ फैल गईं। लोकमान्य का यह वाक्य आदमी-आदमी की जबान पर चढ़ गया—'स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है, और मैं इसे लूंगा।'

सन् १६१७ की घोषणा—पार्लिमेंट कुछ समय से भारत के शासन-कार्य में भारतीयों का सहयोग प्राप्त करने की नीति अपना रही थी, पर उसकी गति बहुत धीमी थी; फिर खासकर अँगरेजी शिक्षा और राष्ट्रीय साहित्य के प्रचार, यातायात की सुविधाएँ, शासन की एकता, पाश्चात्य देशों की प्रजातंत्रात्मक शासन-पद्धति के ज्ञान, तथा स्वतंत्र देशों के इतिहास से प्रभावित होकर भारतीयों की राष्ट्रीय भावना बढ़ती जा रही थी।

कांग्रेस जनता के असन्तोष को अधिकाधिक व्यक्त करती जा रही थी। ऐसी दशा में शासन-कार्य में भारतीयों के सहयोग मात्र से काम नहीं चल सकता था। जनता की जोरदार माँग थी कि सरकार अपनी नीति में मौलिक सुधार करे।

अगस्त १९१७ में भारत-मंत्री ने ब्रिटिश पार्लिमेंट में भारतीय शासन सम्बन्धी नीति की घोषणा की; उसकी मुख्य बातें ये थीं—

(अ) भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित किया जाय, और इसके लिए भारतीयों का शासन के प्रत्येक विभाग में अधिकाधिक सम्पर्क हो।

(आ) भारत जो उन्नति करे, वह ब्रिटिश साम्राज्य का भाग रहते हुए ही करे।

(इ) प्रान्तीय सरकारों को भारत-सरकार से अधिकाधिक स्वतंत्र किया जाय।

(ई) उन्नति-क्रम के समय और सीमा का निर्णय ब्रिटिश सरकार और भारत-सरकार करेगी (भारतीय जनता नहीं)।

नवम्बर १९१७ में भारत-मंत्री श्री मांटेग्यू भारत आए और अनेक सरकारी तथा गैर-सरकारी कार्यकर्ताओं से मिले। फिर उन्होंने वायसराय चेम्सफोर्ड के साथ मिलकर भारतीय शासन-सुधारों की योजना तैयार की, जो उन दोनों के हस्ताक्षर से जुलाई १९१८ में प्रकाशित हुई। यह 'मांट-फोर्ड स्कीम' के नाम से प्रसिद्ध हुई।

चौथा अध्याय

भारतीय शासन-विकास

(२)

सन् १९१९—४६

शुरू में हमारी दृष्टि ऊँची सरकारी नौकरियाँ या शासन में कुछ अधिकार पा लेने पर थी। बाद में स्वराज्य का अस्पष्ट और धुँधला रेखा-चित्र हमारे सामने आया, और तब पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय की स्थापना हुई।

—शान्ति प्रसाद वर्मा

हम भारतीय प्रजाजन भी अन्य राष्ट्रों की भांति अपना जन्म-सिद्ध अधिकार मानते हैं कि हम स्वतंत्र होकर रहें, अपने परिश्रम का फल भोगें और हमें जीवन-निर्वाह के लिए आवश्यक सुविधायें प्राप्त हों, जिससे हमें भी विकास का पूरा मौका मिले।... अतः हम शपथ-पूर्वक संकल्प करते हैं कि पूर्ण स्वराज्य की स्थापना के हेतु कांग्रेस समय-समय पर जो आज्ञाएँ देगी, उनका हम पालन करते रहेंगे।

—स्वाधीनता का घोषणा-पत्र, सन् १९३०

सन् १९१९ का शासन-सुधार—मांटफोर्ड सुधार-योजना के आधार पर ब्रिटिश पार्लिमेंट ने सन् १९१९ में एक्ट पास किया, उसके अनुसार भारतीय शासन में निम्नलिखित परिवर्तन किए गए :—

१—विधान सभाओं के सदस्यों की संख्या बढ़ाई गई और जनता के प्रतिनिधियों की संख्या नामजद सदस्यों से अधिक की गई। मताधिकार का क्षेत्र बढ़ाया गया। लगभग ७५ लाख व्यक्तियों को मताधिकार प्राप्त

हुआ। केन्द्रीय विधान-मंडल में एक की जगह दो सभाएँ की गईं—भारतीय विधान-सभा और राजपरिषद्।

भारतीय विधान सभा के सदस्यों की संख्या १४० निर्धारित की गई। उसके ४० नामजद सदस्यों में से २६ से अधिक सरकारी नहीं हो सकते थे। कुल सदस्यों में कम-से-कम १०० सदस्य निर्वाचित होने आवश्यक थे। प्रान्तों के सदस्यों की संख्या अलग-अलग थी। संयुक्त-प्रान्त में ८ हिन्दू, ६ मुस्लिम, १ योरपियन, और १ जमींदार निर्वाचित और १ सरकारी तथा १ गैर-सरकारी सदस्य नामजद थे। इस सभा की आयु तीन वर्ष थी। राज-परिषद् में ६० सदस्य होने लगे—३३ निर्वाचित और २७ नामजद। नामजद सदस्यों में सरकारी सदस्यों की संख्या २० से अधिक नहीं होती थी। निर्वाचकों के लिए योग्यता का आर्थिक परिमाण बहुत अधिक निर्धारित किया गया था। इसलिए यह भारतीय विधान-सभा की अपेक्षा बहुत कम निर्वाचकों का प्रतिनिधित्व करती थी। इस सभा की आयु ५ वर्ष थी।

प्रान्तों की विधान परिषदों के सदस्यों की संख्या जुदा-जुदा थी। सब से अधिक सदस्य बंगाल में थे; वहाँ १३९ सदस्य थे। संयुक्त प्रान्त की विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या १२३ निर्धारित की गई; इनमें से १०० सदस्य जनता द्वारा निर्वाचित होते थे, और २३ गवर्नर द्वारा नामजद। विधान परिषदों की आयु तीन वर्ष होती थी। साम्प्रदायिक निर्वाचन अब पहले से भी अधिक था।

२—केन्द्रीय और प्रान्तीय विषयों को अलग-अलग करके प्रान्तीय विषयों को दो भागों में विभक्त किया गया—हस्तान्तरित और रक्षित। हस्तान्तरित विषयों में भारतीय मन्त्रियों की जिम्मेवारी रखी गई। इनका प्रबन्ध गवर्नर अपने मन्त्रियों के परामर्श से करता था, जो प्रान्तीय विधान-परिषदों के प्रति उत्तरदायी होते थे। हस्तान्तरित विषयों में स्थानीय स्वराज्य, स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि, उद्योग-धन्धे आदि रखे गए।

दूसरे प्रकार के विषय रक्षित कहे गए और गवर्नर की कार्यकारिणी को सौंपे गए। इनके लिए कार्यकारिणी के सदस्य विधान परिषद् के अधीन न होकर गवर्नर के प्रति उत्तरदायी होते थे। इस प्रकार के विषयों में शान्ति, कानून; भूमि-कर, आय-व्यय आदि महत्वपूर्ण विषय रखे गए। इस प्रकार उत्तरदायी शासन पद्धति आंशिक रूप में, नौ प्रान्तों में आरम्भ की गई—बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-बरार, बर्मा और आसाम में।

[जिस शासन-पद्धति से शासन-कार्य इस प्रकार दो भागों में विभक्त किये जाते हैं, उसे दोहरी शासन-पद्धति ('डायर्की') कहते हैं।]

३—इस कानून से केन्द्र में उत्तरदायी शासन आरम्भ नहीं किया गया, भारत सरकार ब्रिटिश पार्लिमेन्ट के प्रति ही उत्तरदायी रही। हाँ, उसमें तीन सदस्य भारतीय होने लगे।

४—इस कानून से इन्डिया-कौंसिल के सदस्यों की संख्या ८ और १२ के बीच में निश्चित की गई। कौंसिल की आयु पाँच वर्ष ठहराई गई। अब तक कौंसिल का खर्च भारतीय खजाने से दिया जाता था अब यह निश्चित किया कि भारत-मन्त्री का वेतन ब्रिटिश-कोष से दिया जाया करे, यह इसलिए किया गया कि पार्लिमेंट भारत-मंत्री के कार्यों पर नियत्रण रख सके। इंगलैंड में एक नए अधिकारी अर्थात् हाई-कमिश्नर की नियुक्ति की गई। उसे भारत-सरकार के प्रति उत्तरदायी रखा गया। यह इंगलैंड में भारत-सरकार के एजन्ट का काम करता था और भारतीय स्टोर-विभाग, विद्यार्थी-विभाग और भारतीय व्यापार-कमिश्नर के कार्य का निरीक्षण करता था तथा भारतवर्ष के लिए आवश्यक सामग्री ठेके से बनवाकर यहाँ भेजता था।

इस कानून में यह बात स्पष्ट की गई कि दस वर्ष बाद एक कमीशन नियुक्त किया जायगा, जो इस बात की जाँच करेगा कि सन् १९१९ में

जो उत्तरदायी शासन प्रचलित किया गया, उसे कहाँ तक बढ़ाना, बदलना या घटाना ठीक होगा।

सत्याग्रह और असहयोग—इसी समय सरकार ने भारतीय लोकमत की नितान्त उपेक्षा करके 'रौलेट एक्ट' नाम से कुप्रसिद्ध दमनकारी कानून बना दिया। इस पर महात्मा गाँधी के नेतृत्व में जगह-जगह हजारों आदमियों ने सत्याग्रह किया। कांग्रेस का सन्देश गाँव-गाँव और घर-घर पहुँचा। कांग्रेस ने १६१६ के शासन-सुधारों को अपूर्ण, असन्तोषप्रद और निराशाजनक ठहराया और उनका बहिष्कार किया। सन् १६२० में कांग्रेस के उद्देश्य में से भारत के, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहने की बात निकाल दी गई। इस वर्ष नये सुधारों के अनुसार विधान सभाओं का पहला निर्वाचन हुआ, पर बहुत से योग्य व्यक्तियों ने असहयोगी होने के कारण उसमें भाग नहीं लिया।

स्वराज्य-दल का कार्य—सन् १६२२ में, कांग्रेस में एक ऐसा दल बन गया, जिसने चुनाव में भाग लेकर इन थोथे सुधारों को नष्ट करना उचित समझा। यह 'स्वराज्य दल' था। इसने १६२३ के चुनाव में बङ्गाल और मध्यप्रांत में बहुमत प्राप्त किया। इस से इन प्रान्तों में मन्त्रियों का वेतन अस्वीकृत या नाममात्र को स्वीकृत हुआ, और सरकार की बार-बार हार हुई।

मुडीमेन-कमेटी—सन् १६२४ में भारतीय विधान सभा ने बजट की कई मदें तथा कर लगाने वाला सरकारी प्रस्ताव नामंजूर किया। सरकार को अपने विशेषाधिकार से काम चलाना पड़ा। इस तरह विधान सभाओं के मत के अनुसार शासन-कार्य करने में सरकार को बहुत कठिनाइयां हुईं। उन्हें दूर करने के विषय पर विचार करने के लिए अगस्त १६२४ में भारत सरकार ने मुडीमेन-कमेटी नियुक्त की। कमेटी की दो रिपोर्टें प्रकाशित हुईं। बहुमत ने कुछ कठिनाइयाँ दूर करने के उपाय बतलाए। अल्पमत

ने यह सिद्ध किया कि सुधार-कानून में विशेष परिवर्तन किए बिना शासन-सम्बन्धी कठिनाइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। भारत-सरकार ने अल्पमत रिपोर्ट नामंजूर करके भारतीय विधान सभा में बहुमत-रिपोर्ट स्वीकार करने का प्रस्ताव उपस्थित किया। इसके संशोधन में, सितम्बर १९२५ में विधान-सभा ने एक उप-प्रस्ताव पास किया और सुधार सम्बन्धी राष्ट्रीय मांग पेश की; इसे सरकार ने मंजूर नहीं किया।

सन् १९३५ के संविधान की रचना—सन् १९१९ के शासन सुधारों के अनुसार, यहां सन् १९२७ ई० में 'साइमन कमीशन' नियुक्त हुआ। इसके सातों सदस्य अँगरेज थे, और वे भी अनुदार विचार वाले। इस कमीशन की रिपोर्ट सन् १९२९ में प्रकाशित हुई। पश्चात् १९३० से १९३२ ई० तक लंदन में तीन बार 'गोलमेज सभा' हुई, इसमें से केवल दूसरी में कांग्रेस ने महात्मा गांधी द्वारा भाग लिया। गोलमेज सभाओं तथा विविध कमेटियों के परिणाम-स्वरूप शासन सम्बन्धी प्रस्ताव 'श्वेत-पत्र' में प्रकाशित किये गए। यह 'श्वेत पत्र' पार्लिमेंट की दोनों सभाओं की संयुक्त कमेटी के सामने उपस्थित किया गया। इस पर पार्लिमेंट ने सन् १९३५ का शासन-विधान बनाया।

इस संविधान की मुख्य बातें—सन् १९३५ के संविधान की मुख्य बातें ये थीं—

१—सम्पूर्ण भारत (ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों) के लिये संघ-शासन की योजना बनाई गई। इसके बारे में खुलासा आगे लिखा जायगा।

२—प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना की गई, परन्तु गवर्नरों को अनेक विशेषाधिकार दिए गए।

३—बर्मा प्रान्त ब्रिटिश भारत से अलग किया गया। पहले बर्मा के अलावा आठ प्रान्तों में गवर्नर थे—बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त,

पंजाब, बिहार-उड़ीसा, मध्यप्रान्त-बरार और आसाम में। सन् १९३५ के संविधान से इनमें तीन प्रान्त और बढ़े। सिन्ध को बम्बई से और उड़ीसा को बिहार से अलग करके दो नए प्रान्त बनाए गए। पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त का शासक पहले चीफ कमिश्नर होता था, वह प्रान्त भी गवर्नर का प्रान्त बनाया गया। इस प्रकार कुल मिलाकर इस समय गवर्नरों के प्रान्त ग्यारह हो गए।

इन ग्यारह प्रान्तों में विधान-मंडलों का पुनर्संगठन किया गया। विधान सभा तो इन सभी प्रान्तों में रही। इनमें से छः प्रान्तों (बंगाल, बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, बिहार और आसाम) में दूसरी सभा (विधान-परिषद) भी स्थापित की गई। इसके विषय में ब्यौरेवार बातें आगे कही जायँगी।)

चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों में पश्चिमोत्तर प्रान्त के न रहने की बात कही जा चुकी है। इस विधान से एक चीफ-कमिश्नरी नई बढ़ाई गई—पंथ-पिपलौदा। यह प्रदेश पहले होलकर राज्य का ही अंग था।

४—संघ न्यायालय स्थापित करने की व्यवस्था की गई।

[संघ-शासन होने की दशा में जब कभी केन्द्रीय सरकार का किसी प्रान्तीय सरकार से, अथवा दो प्रान्तीय सरकारों का परस्पर में किसी विषय में मतभेद हो, या शासन-विधान की किसी धारा का अलग-अलग अर्थ लगाया जाता हो, तो उसका निर्णय संघ-न्यायालय द्वारा होता है।]

संघ शासन-योजना—संघ-शासन का अर्थ कई राज्यों का सम्मिलित शासन है। जब कुछ राज्य आत्मरक्षा या आर्थिक अथवा राजनैतिक उन्नति के लिए अपनी सेना, व्यापार या राष्ट्रोन्नति आदि विभागों का प्रबन्ध सामूहिक रूप से करना चाहते हैं, और इस उद्देश्य से अपना संगठन करते हैं तो यह कहा जाता है कि उन्होंने अपना संघ (फेडरेशन) बनाया। संघ-शासन में संघान्तरित राज्यों की सरकारें अपने-अपने राज्य सम्बन्धी शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विषयों में स्वाधीन रहती हैं। वे अपनी

आय का कुछ भाग और अपने कुछ अधिकार केन्द्रीय सरकार (संघ-सरकार) को दे देती हैं, जो इन राज्यों को बाहरी आपत्ति से रक्षा करने के अतिरिक्त सार्वदेशिक हित-सम्पादन का कार्य करती है।

सन् १९३५ के संविधान में भारत में दो भिन्न प्रकार की शासनपद्धति वाले प्रदेशों का गठबंधन किया गया था। ब्रिटिश भारत में लोकसत्तात्मक शासनपद्धति और संस्थाएँ, कुछ अपूर्ण रूप में ही सही, विद्यमान थीं; जब कि अधिकांश देशी राज्यों में अवैध राजसत्तात्मक शासनपद्धति थी, प्रजा-प्रतिनिधियों का उसमें प्रायः कुछ भी भाग नहीं था। संघ-योजना में इनके अन्तर को घटाने के लिए यह व्यवस्था भी नहीं की गई कि देशी राज्यों में क्रमशः उत्तरदायी शासन-पद्धति प्रचलित की जाय। इसके विपरीत, उनका सम्राट् से पृथक् और सीधा सम्बन्ध रहने की व्यवस्था करके उन्हें ब्रिटिश भारत से और भी दूर करने की योजना की गई।

पुनः यह योजना इस देश को न केवल विदेश-नीति और व्यापार के सम्बन्ध में, वरन् अपनी रक्षा और आन्तरिक प्रबन्ध में भी परतंत्र बनाए हुए थी। केन्द्रीय कार्यों के संचालन के लिए प्रायः समस्त शक्तियाँ और अधिकार मंत्रि-मंडल को न देकर गवर्नर-जनरल को सौंप दिए गए थे, संघीय विधान-मंडल का संगठन और कार्य-पद्धति अत्यन्त दूषित थी, तथा इसके कानून-निर्माण सम्बन्धी एवं आर्थिक अधिकार बहुत कम थे।

ऐसे दूषित संविधान का जनता द्वारा प्रबल विरोध होना स्वाभाविक ही था। ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्यों में सर्वत्र इसका विरोध हुआ। कुछ साम्प्रदायिक तथा स्वार्थी लोगों की यह इच्छा अवश्य रही कि संविधान अमल में आ जाय। परन्तु वे नगण्य थे। राष्ट्रीय नेताओं ने घोषणा कर दी थी कि यदि ब्रिटिश सरकार हम पर इस संविधान को लादेगी तो हम सत्याग्रह द्वारा उसका विरोध करेंगे। किन्तु उसका अवसर ही न आया। संघ-योजना कार्य-रूप में परिणत होने से पहले ही स्थगित कर दी गई।

संविधान के प्रान्तों सम्बन्धी भाग का प्रयोग— सन् १६३५ के संविधान का केवल प्रान्तों सम्बन्धी भाग सन् १६३७ से अमल में आया। इसके अनुसार प्रान्तीय विधान-मण्डलों का प्रथम चुनाव होने पर ६ प्रान्तों (बम्बई, मदरास, संयुक्तप्रान्त, बिहार, उड़ीसा, और मध्य प्रान्त) में कांग्रेस-दल का बहुमत था। परन्तु कांग्रेस ने मन्त्रि-पद ग्रहण करना उस समय तक अस्वीकार किया, जब तक कि गवर्नर यह आश्वासन न दे दें कि रोजमर्रा के शासन-कार्य में, वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग न करेंगे।

अतः विधान को अमल में लाने के लिए, जब कि अन्य प्रान्तों में बहुमत दल के मंत्रिमण्डल बने, जिन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत था, उनमें अल्पसंख्यक दलों द्वारा अस्थायी मंत्रिमण्डल बनाए गए; इन्हें जनता ने 'गुड़िया मंत्रिमंडल' का नाम दिया। अविश्वास के प्रस्ताव के भय से, ये मंत्रिमंडल विधान-सभाओं के सामने जाने का साहस नहीं कर सकते थे, अतः विधान-सभाओं का अधिवेशन स्थगित रखा गया। देश में महान वैधानिक संकट उपस्थित हो गया। अन्ततः गवर्नर-जनरल ने यह आश्वासन दिया कि आमतौर पर शासन-कार्य मंत्रिमंडल करेंगे, और गवर्नर उनकी सलाह मानेंगे; उसमें हस्तक्षेप न करेंगे। इस पर कांग्रेस ने उक्त छः प्रान्तों में मंत्रिमंडल बनाए। पश्चात् पश्चिमोत्तर-सीमाप्रान्त और आसाम में भी कांग्रेसी मंत्रिमंडल हो जाने से, गवर्नरों के ग्यारह प्रांतों में से आठ में कांग्रेस-शासन स्थापित हो गया।

कांग्रेस द्वारा पद-ग्रहण किए जाने से कांग्रेसी प्रांतों में नया राजनैतिक वातावरण हो गया। मंत्रियों ने जनता की असुविधाओं को दूर करने के लिए यथा-शक्ति प्रयत्न किया। राजबन्दी छोड़े गए, जेलों में आवश्यक सुधार किए गए, प्रेसों की जमानतें वापिस की गईं, बकाया वसूलयाबी रोकी गई, ग्राम-सुधार के अन्यान्य कार्यों में, ग्राम-पुस्तकालय खोले गए, पंचायतों की वृद्धि की गई, मद्यपान-निषेध का कार्य आरम्भ किया गया,

कितनी ही सार्वजनिक संस्थाओं तथा राजनैतिक पुस्तकों पर से पाबन्दी हटाई गई। इसके अतिरिक्त, मज़दूरों की स्थिति की जांच करके, उसमें सुधार की कोशिश की गई, बिहार और संयुक्तप्रान्त में किसानों के हित का कानून, और, मदरास में ऋण-निवारण कानून बनाया गया।

जिन प्रान्तों में गैर-कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें भी थोड़े-बहुत जनहितकारी कार्य किए गए।

कांग्रेस-सरकारों का पदत्याग—सन् १९३९ ई० में योरप में (दूसरा) महायुद्ध छिड़ा। इंगलैंड ने जर्मनी के विरुद्ध युद्ध आरम्भ किया तो भारतवर्ष को भी अपने साथ युद्ध-संलग्न घोषित कर दिया और केन्द्रीय सरकार के अधिकारियों को प्रान्तों में कई प्रकार के काम करवाने के लिए विशेष अधिकार दे दिए इससे प्रान्तीय मंत्रिमण्डलों की शक्ति कम रह गई। यहाँ युद्ध सम्बन्धी तैयारी होने लगी और ऐसे महत्वपूर्ण विषय में प्रान्तीय सरकारों का कोई मत नहीं लिया गया। कांग्रेसी सरकारों को यह खटकने वाला ही था, उन्होंने ब्रिटिश सरकार से युद्ध का उद्देश्य पूछा, और यह माँग उपस्थित की कि युद्ध समाप्त होने पर भारतवासियों को अपनी संविधान-सभा द्वारा स्वयं ही अपनी शासनपद्धति निश्चित करने का अधिकार रहे। ब्रिटिश सरकार का उत्तर सर्वथा असन्तोषप्रद रहा। इस पर कांग्रेसी सरकारों ने त्यागपत्र दे दिया। जिन प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडल थे, उनमें गवर्नरों ने शासन-विधान स्थगित करके अपना एकछत्र अधिकार स्थापित कर लिया। पीछे कुछ प्रान्तों में साम्प्रदायिक और अराष्ट्रीय मंत्रिमंडल बनाए गए।

क्रिप्स-योजना—जब कि भारतवर्ष पर जापान के आक्रमण की आशंका थी, फरवरी सन् १९४२ में, ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल की ओर से सर स्टेफर्ड क्रिप्स भारतवर्ष के भावी शासन की एक योजना लेकर यहाँ आए थे; साधारण बोलचाल में उसे 'क्रिप्स योजना' कहते

हैं। इसकी मुख्य बातें युद्ध के बाद अमल में आनेवाली थीं; वे इस प्रकार थीं :—

(१) युद्ध-समाप्ति पर भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य अर्थात् ब्रिटिश साम्राज्य के स्वाधीन उपनिवेशों का पद दिया जाय।

(२) भारत-राज्य का नाम भारतीय 'यूनियन' (संघ) होगा। संविधान-सभा को यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि भारतीय यूनियन ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर रहे या बाहर।

(३) युद्ध समाप्त होते ही संविधान-सभा बनाई जायगी। (सन् १६३५ के शासन-विधान के अनुसार) प्रान्तीय विधान-सभाओं (असेम्बलियों) का नया चुनाव होगा। उनके कुल सदस्य अपने में से दशमांश व्यक्तियों को चुनकर संविधान-सभा बनाएँगे। इस सभा में देशी नरेशों के प्रतिनिधि उनके राज्यों की जनसंख्या के अनुपात से होंगे।

(४) जो प्रान्त या राज्य भारतीय यूनियन में सम्मिलित न होना चाहें वे अपना यूनियन अलग बना सकते हैं; उनका ब्रिटिश साम्राज्य से सीधा सम्बन्ध होगा।

[जो प्रान्त भारतीय यूनियन से पृथक होना चाहें, उसकी विधान सभा के बहुसंख्यक (उदाहरणार्थ कम-से-कम साठ प्रतिशत) सदस्य पृथक् होने के पक्ष में होने चाहिएँ; यदि इससे कम होंगे तो वहाँ की जनता की राय ली जायगी।]

युद्ध-काल के बारे में बताया गया कि भारतवर्ष की रक्षा के कार्य पर अधिकार और उसके संचालन की जिम्मेवारी ब्रिटिश जंगी लाट पर होगी, जो ब्रिटिश युद्ध-मंत्रिमण्डल के प्रति जिम्मेवार होगा; वह भारतवासियों में से किसी को नहीं दी जा सकती। [सैनिक और माली साधनों को संगठित करने का कार्य, जनता के सहयोग से भारत-सरकार करेगी।] रक्षा

को छोड़कर शेष सब विषय भारतवर्ष के प्रमुख दलों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों से बनाई हुई राष्ट्रीय सरकार को सौंपे जायँगे।

योजना अस्वीकृत—इस योजना को भारतवर्ष की विविध संस्थाओं ने भिन्न-भिन्न कारणों से अस्वीकार किया। राष्ट्रीय दृष्टि से, इसमें निम्नलिखित दोष थे, जिनके कारण कांग्रेस ने इसे अस्वीकार किया—

(१) किसी प्रान्त और देशी राज्य का अलग रहने का अधिकार भारतीय एकता और अखंडता के लिए घातक था।

(२) देशी राज्यों की नौ करोड़ जनता को प्रतिनिधित्व न देकर उनकी उपेक्षा की गई थी।

(३) राष्ट्र-रक्षा की जिम्मेवारी भारतीयों को न देकर ब्रिटिश सरकार पर रखी गई थी।

वास्तव में यह योजना एक ऐसी हुन्डी की तरह थी, जिस पर आगे की मिति डाली हुई हो, जिसका तत्काल मूल्य न हो। कांग्रेस की यह माँग थी कि राष्ट्र-रक्षा की पूरी जिम्मेवारी हमारे हाथ में होनी चाहिए, जिससे जनता में युद्ध के सफल संचालन के लिए आवश्यक उत्साह हो। फिर, युद्ध-काल में शासन के अन्य सब विभाग इसी विभाग के सहायक और पोषक बन जाते हैं; अतः रक्षा-विभाग की तुलना में वे गौण हो जाते हैं। निदान, आवश्यक सत्ता के अभाव में कांग्रेस ने क्रिप्स-योजना अस्वीकार कर दी। अन्य दलों ने भी उसे स्वीकार नहीं किया।

सन् १९४२ की जन-क्रान्ति—क्रिप्स-योजना की असफलता पर देश में घोर असन्तोष और क्षोभ का वातावरण हो गया। विदेशी शासन असह्य हो रहा था। लोगों में कोई जोरदार कदम उठाने की भावना बढ़ती गई। १४ जुलाई १९४२ को कांग्रेस कार्यसमिति ने अंगरेजों से भारत छोड़ने का आग्रह करनेवाला 'भारत-छोड़ो' प्रस्ताव पास किया। उस पर ८ अगस्त को बम्बई में विचार होकर जो ऐतिहासिक प्रस्ताव

स्वीकार किया गया उसने आठ अगस्त को भारतीय राजनीति के इतिहास में अमर बना दिया। इसे उपस्थित करते हुए म० गांधी ने कहा "कांग्रेस से मैंने आज यह बाजी लगवाई है कि वह या तो देश को आजाद करेगी अथवा खुद फना हो जायगी। 'करो या मरो' हमारा मूल मंत्र होगा।"

कांग्रेस कमेटी का कार्य समाप्त होने से पूर्व ६ अगस्त को बहुत सवेरे देश के बड़े-बड़े नेताओं को गिरफ्तार करके सरकार ने बिना चाहे ही जन-संघर्ष को आमंत्रित कर डाला। जनता पर म० गांधी का जो सौम्य नियंत्रण था, वह न रहा। इधर १० अगस्त को भारतमंत्री श्री एमरी का वक्तव्य प्रकाशित हुआ कि कांग्रेस का कार्य-क्रम रेल की पटरी उखाड़ना तार तोड़ना, सरकारी इमारतों को नष्ट करना आदि है। बस, जगह-जगह तोड़फोड़ का काम होने लगा। इस आन्दोलन का संचालन किसी संस्था (कांग्रेस आदि) या व्यक्ति विशेष के नेतृत्व में न होकर स्वयं जनता द्वारा हुआ था। यह जनता का खुला विद्रोह था। इसे दबाने के लिए सरकार ने अंधाधुंध दमन किया। अनेक स्थानों में जन-समूह पर गोलियाँ चलीं, गांव जलाए गए, सामूहिक जुरमाने हुए, लोगों का सामान नीलाम किया गया, नागरिक स्वतंत्रता छीन ली गई। दमन ने आन्दोलन को बाहरी दृष्टि से शान्त कर दिया, पर वह जनता की स्वतंत्रता की भावना को न दबा सका।

इस जनक्रान्ति के ही समय, देश की पूर्वी सीमा पर इसे स्वतंत्र करने के लिए आजाद-हिन्द आन्दोलन श्री नेताजी सुभाष बोस के नेतृत्व में हुआ। बाहरी दृष्टि से सफल न होने पर भी आजाद हिन्द सरकार ने अपने कार्यों से चमत्कार-पूर्ण साहस, त्याग और संगठन का परिचय दिया।

वेवल योजना—मई १६४४ में म० गांधी जेल से छूटे। आपने फिर यही कहा कि देश में राष्ट्रीय सरकार का स्थापित हो जाना आवश्यक है। आपने तथा श्री राजगोपालाचारी जी ने मुस्लिम लीग के कर्ता-धर्ता

श्री जिन्ना से बातचीत की। परन्तु जैसी कि आशंका थी, वह सफल नहीं हुई।

जुलाई १९४५ में ब्रिटिश पार्लिमेंट के चुनाव होने वाले थे। श्री चर्चिल की फिर प्रधान मंत्री बनने की इच्छा थी, अपनी सफलता के उद्देश्य से उसने भारत के राजनैतिक गतिरोध को दूर करने के लिए वायसराय लार्ड वेवल को आदेश दिया। लार्ड वेवल ने जो योजना उपस्थित की उसका सारांश यह था कि वायसराय की कार्यकारिणी का नया संगठन होगा, उसमें वायसराय तथा प्रधान सेनापति को छोड़कर शेष सब सदस्य भारतीय होंगे। कार्यकारिणी में हिन्दू तथा मुस्लिम सदस्य समान संख्या में होंगे तथा भारतीय ईसाई, सिक्ख, दलित वर्ग आदि के भी सदस्य होंगे। यदि यह नयी कार्यकारिणी बनाने में सफलता मिली तो प्रान्तों में भी मंत्रिमंडल पुनः स्थापित हो जायंगे। इस योजना पर विचार करने के लिए २५ जून को शिमले में भारतीय नेताओं की कान्फ्रेन्स बुलाई गई। योजना में कई दोष जानते हुए भी जनता के युद्ध-कालीन संकट दूर करने और देश की आजादी का रास्ता साफ होने की आशा से कांग्रेस ने कान्फ्रेन्स में भाग लिया। यह निश्चय किया गया कि वायसराय की नयी कार्यकारिणी के सदस्य इस प्रकार हों—कांग्रेस ५, मुस्लिम लीग ५, सिक्ख १, भारतीय ईसाई १, और दलित जातियाँ २। पर श्री जिन्ना ने यह हठ की कि पाँचों मुसलमान सदस्यों का चुनाव सिर्फ मुस्लिम लीग ही करे; जिसका अर्थ यह होता था कि कांग्रेस कोई राष्ट्रीय संस्था नहीं है, उसका मुसलमानों से कोई सम्बन्ध नहीं है। जिन्ना की यह बात असत्य थी; योजना पर विचार होते समय भी मौलाना अब्दुलकलाम आजाद कांग्रेस के सभापति की हैसियत से कान्फ्रेन्स में भाग ले रहे थे। अस्तु, वेवल-योजना अमल में नहीं आई।

राजनैतिक परिस्थिति—१९४६ में प्रान्तीय विधान-सभाओं का जो चुनाव हुआ, उसमें कांग्रेस को प्रचंड विजय प्राप्त हुई। आठ प्रान्तों

में उसके मंत्रिमंडल बन गए। उधर, दूसरे महायुद्ध में यद्यपि इंगलैंड विजयी हुआ था, वह अब योरप में प्रथम श्रेणी का राष्ट्र न रह कर, दूसरी ही नहीं, तीसरी श्रेणी का राष्ट्र रह गया था। वह भारत जैसे देश के सहयोग की उपेक्षा नहीं कर सकता था। फिर, वहाँ के १६४५ के चुनावों ने अनुदार दल को हटा कर शासन की बागडोर मजदूर दल के नेताओं को सौंप दी थी।

ब्रिटिश सरकार भारत पर से अपना नियंत्रण शिथिल करने की आवश्यकता अनुभव कर ही रही थी कि फरवरी १६४६ में बम्बई में नौसैनिक संघर्ष हुआ, जो क्रमशः दूर-दूर तक फैल गया, और जिसे अन्त में श्री सरदार पटेल आदि ने बीच में पड़ कर शान्त किया। यह स्पष्ट होगया कि ब्रिटिश विरोधी भावना अब सेना को भी ग्रस्त कर चुकी है, और उस पर भी भरोसा नहीं किया जा सकता। इस प्रकार इङ्गलैंड के सूत्रधारों को यह दिखाई देने लग गया कि भारत पर उनकी हकूमत चलनी कठिन है। अब से भारतीय स्वतंत्रता की योजना होने लगी।

पाँचवाँ अध्याय

स्वतंत्रता और विभाजन की योजना

भारत की भावी शासन-व्यवस्था कैसी होगी, इसका निर्णय स्वयं भारतीयों को करना है। सरकार की राय में वह समय आगया है, जब भारत के शासन का भार भारतीय हाथों में सौंप देना चाहिए।

—ब्रिटिश प्रधान मंत्री एटली, सन् १६४६

ब्रिटिश मंत्रिमिशन का आगमन—फरवरी १६४६ में यह घोषित किया गया कि ब्रिटिश मंत्रि-मंडल के तीन सदस्य (लार्ड पेथिक

लारेन्स, सर स्टेफर्ड क्रिप्स, और अलबर्ट एलेग्जेंडर) भारतीय नेताओं से भावी भारतीय शासन-विधान के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करने के लिए भारत जायँगे। यह मंत्रिमिशन मंत्रिमंडल का प्रतिनिधि-स्वरूप होगा और इसे मंत्रिमंडल के अधिकार होंगे। भारत द्वारा पूर्ण शासनाधिकार प्राप्त करने के लिए यह निम्नलिखित कार्य करेगा—

१—शासन-विधान के निर्माण के ढंग पर अधिक-से अधिक सहमति प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों तथा भारतीय रियासतों से प्रारम्भिक विचार-विनिमय।

२—संविधान सभा की स्थापना।

३—ऐसी कार्यकारिणी-सभा का निर्माण, जिसका भारत के प्रमुख राजनैतिक दल समर्थन करें।

यह ब्रिटिश मंत्रिमिशन यहाँ मार्च १९४६ में आया। इसने सरकारी पदाधिकारियों तथा भारत के राष्ट्रीय तथा साम्प्रदायिक नेताओं से सम्पर्क स्थापित करके उनसे विचार-विनिमय किया।

राष्ट्रीय सरकार और मुस्लिम लीग—मंत्रिमिशन ने नया संविधान बनने तक कांग्रेस और मुस्लिम लीग से सम्मिलित अस्थायी सरकार बनाने को कहा; और, उनके द्वारा न बनाए जाने पर १६ जून १९४६ को १४ सदस्यों की अन्तर्कालीन सरकार बनाने की योजना उपस्थित की। इसमें मुसलमानों के पांचों प्रतिनिधि श्री० जिन्ना की मर्जी के रखे गए और कांग्रेस को यह अधिकार भी नहीं दिया गया कि वह अपने हिस्से के प्रतिनिधियों में एक स्थान राष्ट्रीय मुस्लिम को भी दे। मुस्लिम लीग ने योजना स्वीकार करली, पर कांग्रेस ने इसे स्वीकार न किया। श्री० जिन्ना को आशा थी कि कांग्रेस की अस्वीकृति पर मुस्लिम लीग को भारत पर शासन करने का अवसर मिलेगा। उनकी यह आशा पूरी न हुई। परिषद के चुनाव का कार्य चलता रहा।

जुलाई १९४६ में लार्ड वेवेल ने अन्तर्कालीन सरकार बनाने का

फिर प्रयत्न किया। उन्होंने कांग्रेस-अध्यक्ष श्री० जवाहरलाल नेहरू तथा श्री जिन्ना को क्रमशः ६ और ५ व्यक्तियों की सूची भेजने को कहा और यह आश्वासन दिया कि अल्पसंख्यकों के तीन सदस्य दोनों बड़े दलों के परामर्श से नियुक्त किए जायँगे। श्री० जिन्ना ने सूची न भेजकर आन्दोलन द्वारा पाकिस्तान प्राप्त करने की धमकी दी। इस पर लार्ड वेवल ने श्री नेहरू को अन्तर्कालीन सरकार बनाने के लिए आमंत्रित किया। अन्त में २ सितम्बर को लीग के सहयोग के बिना ही १२ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बनाई गई, जिसमें देश के अन्य सब प्रमुख हितों के प्रतिनिधि थे।

जब कि राष्ट्रीय सरकार बनाने की बात हो ही रही थी, श्री० जिन्ना ने विरोध-रूप में १६ अगस्त को 'प्रत्यक्ष संघर्ष' ('डायरेक्ट एक्शन') दिन मनाए जाने की घोषणा कर दी। इससे देश में खूब साम्प्रदायिक उपद्रव हुए; द्वेषाग्नि फैल गई। पहले कलकत्ते और नोआखाली में मारकाट, लूट, और आग लगाने की कितनी ही घटनाएँ हुईं। लीग-सरकार वाले बंगाल प्रान्त के अमानुषिक अत्याचारों की प्रतिक्रिया बिहार में हुई। पर म० गांधी के अनशन की घोषणा तथा केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार की तत्परता से स्थिति जल्दी सम्हल गई।

लीग के अलग रहने और विरोधी कार्य करने के कारण राष्ट्रीय सरकार से न तो कांग्रेस को संतोष था, और न वायसराय को। लीग से फिर बातचीत चली और आखिर, नवाब भोपाल की मध्यस्थता से मुस्लिम लीग के पांच सदस्यों ने अन्तर्कालीन सरकार में आना स्वीकार कर लिया। अब, अन्तर्कालीन सरकार के उपर्युक्त बारह सदस्यों में से तीन को हटाकर लीग के ५ सदस्य ले लिए गए। इस प्रकार १४ सदस्यों की राष्ट्रीय सरकार बन गई। परन्तु लीग के सदस्य सरकार में शामिल होकर अड़ंगा ही लगाते रहे।

भावी संविधान-योजना—मई १९४६ में मंत्रिमिशन ने भारत का भावी संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा के संगठन की योजना

बनाई और यह सिफारिश की कि एक अखिल भारतीय यूनियन या संघ होना चाहिए, जिसमें ब्रिटिश भारत तथा देशी राज्य दोनों भाग सम्मिलित हों। उसके अधीन ये विषय रहने चाहिएँ—विदेशी मामले, रक्षा और यातायात। इन विषयों को छोड़कर शेष सब अधिकार प्रान्तों को हों। कोई भी प्रांत अपनी विधान-सभा के बहुमत से प्रथम दस वर्ष बाद विधान की शर्तों पर पुनर्विचार कर सकेगा।

मंत्रिमिशन ने मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग को स्पष्ट रूप से अस्वीकार करके भी भारतवर्ष को तीन समूहों में बाँटने पर जोर दिया। उनमें से पूर्वी और पश्चिमी समूहों में ऐसे प्रांतों का समावेश किया गया, जिनमें कुल मिलाकर मुस्लिम बहुमत था। उसने 'क' समूह में मदरास, बम्बई, संयुक्तप्रांत, बिहार, मध्यप्रांत और उड़ीसा रखे; 'ख' (पश्चिमी) समूह में पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रांत, और सिंध; और 'ग' पूर्वी समूह में बंगाल और आसाम। संविधान सभा के लिए ब्रिटिश भारत के सदस्यों की संख्या २९६ निश्चित की गई—दस लाख व्यक्तियों पीछे एक प्रतिनिधि के हिसाब से। देशी राज्यों के सदस्यों की संख्या ९३ निश्चित हुई।

इस योजना में प्रांतों का समूहीकरण आदि कई दोष थे। परन्तु अन्त में पूर्ण स्वराज्य प्राप्त करने की आशा से, कांग्रेस ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। विधान-सभा में प्रांतों की ओर से लिए जाने वाले सदस्यों का चुनाव किया गया। मुस्लिम लीग ने भी चुनावों में भाग लिया।

मुस्लिम लीग का विरोध; भारत विभाजन की मांग—जुलाई १९४६ में मंत्रिमिशन की योजना के अनुसार संयुक्त भारत का संविधान बनाने के लिए प्रांतीय विधान सभाओं द्वारा संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव हुआ। उसमें २९६ सदस्यों में से २०८ कांग्रेसी थे, और यदि ३ स्वतंत्र मुसलमान भी उनमें मिला दिए जायँ तो कांग्रेस समर्थकों की संख्या २११ थी, जब कि मुस्लिम लीग को केवल ७३ स्थान मिले थे। यह देख कर जिन्ना साहब बहुत उद्विग्न हो उठे। उनके दिमाग

को इस चिन्ता ने घेर लिया कि ऐसी परिस्थिति में मुस्लिम लीग का और स्वयं उनका स्थान अंधकारमय है। आखिर उन्होंने एक ओर तो मुस्लिम लीग के सदस्यों को संविधान सभा से असहयोग करने का आदेश दिया, और दूसरी ओर पाकिस्तान प्राप्ति के लिए 'प्रत्यक्ष संघर्ष' की घोषणा की इसके फल-स्वरूप बंगाल के कई स्थानों में भयंकर मारकाट और विध्वन्स कार्य हुए, जिनका उल्लेख पहले किया गया है। अब मुस्लिम लीग ने खुले आम यह नीति अपनाली कि हम संयुक्त भारत की संविधान सभा को सफल नहीं होने देंगे, भारत का विभाजन चाहते हैं, पाकिस्तान राज्य अलग होना चाहिए, और उसकी संविधान सभा अलग संगठित हो।

(संयुक्त भारत की) संविधान सभा की पहली बैठक दिसम्बर १९४६ को होने वाली थी। इस बीच में ब्रिटिश सरकार ने श्री नेहरू और लियाकत अली को लन्दन बुला कर समझौता कराना चाहा। पर लीग संयुक्त संविधान-सभा को भंग करने पर डटी रही। उसने कांग्रेस के बहुत चाहने पर भी दिसम्बर की बैठक में भाग नहीं लिया।

२० फरवरी सन् १९४७ को ब्रिटिश प्रधानमंत्री श्री एटली ने घोषणा की कि अधिक-से-अधिक जून १९४८ तक से भारत से अंगरेजी सत्ता हटा ली जायगी। इस घोषणा में यह भी कहा गया कि यदि जून १९४८ तक भारत का संविधान पूर्णतया प्रतिनिध्यात्मक ढंग से नहीं बना तो ब्रिटिश सरकार यह निश्चय करेगी कि भारत का शासन किस सत्ता या सत्ताओं को सौंपा जाय। यह हर्ष का विषय था कि आखिर भारत में विदेशी शासन के अन्त के लिए एक दिन निश्चित होगया; परन्तु इससे मुस्लिम लीग को अपने मनसूबे हासिल करने—अलग पाकिस्तान बनाने—के लिए प्रोत्साहन भी मिला।

संविधान-योजना में परिवर्तन; भारतीय संघ और पाकिस्तान—मुस्लिम लीग मंत्रिमिशन-योजना का विरोध और पाकिस्तान के लिए आन्दोलन करती रही। भारतवर्ष के खंडित होने की आशंका

देखकर कांग्रेस ने (बंगाल, पंजाब और आसाम के उन भागों को ध्यान में रखकर जिनमें मुस्लिम बहुमत नहीं था) इस बात पर जोर दिया कि किसी प्रदेश पर उसकी इच्छा के विरुद्ध शासन नहीं लादा जा सकता। आखिर, तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड माउँटबेटन ने विविध नेताओं से मिलकर तथा ब्रिटिश मंत्रिमंडल की स्वीकृति से ३ जून ४७ को संविधान सम्बन्धी नई योजना प्रकट की। इस योजना के अनुसार शासन की दृष्टि से भारतवर्ष के दो अलग-अलग स्वतंत्र राज्य हो गए:—भारतीय संघ और पाकिस्तान।

पाकिस्तान के पूर्वी भाग में पूर्वी बंगाल, और आसाम के सिलहट ज़िले का अधिकांश भाग रहा। पाकिस्तान के पश्चिमी भाग में पश्चिमी पंजाब, सिन्ध तथा विलोचिस्तान रखे गए और निश्चय किया गया कि पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के लोगों का मत लिया जाय। अधिकांश जनता पाकिस्तान विरोधी थी। पर इस समय मुस्लिम लीगियों के संघर्ष से बचने के लिए उसने भारतीय संघ में शामिल होना पसन्द नहीं किया। उसने अपने स्वतंत्र पठानिस्तान की माँग की, लेकिन प्रस्तुत योजना में उसकी गुंजायश नहीं थी इसलिए पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के बहुत से आदमियों ने अपना मत नहीं दिया। नतीजा यह हुआ कि पाकिस्तान के समर्थक लीगियों की विजय रही। सीमाप्रान्त को (वहां के निवासियों के न चाहते हुए भी) पाकिस्तान में मिलना पड़ा।

कांग्रेस ने विभाजन क्यों स्वीकार किया ?—३ जून की घोषणा से होने वाले देश के विभाजन से राष्ट्रीय नेता प्रसन्न नहीं थे, पर उनके सामने, तत्कालीन परिस्थितियों में स्वाधीनता-प्राप्ति का और कोई उपाय भी नहीं था। महात्मा गांधी ने ४ जून के प्रार्थना-भाषण में कहा कि 'जनता को यह न भूल जाना चाहिए कि कांग्रेस को इस स्थिति में आने के लिए विवश किया गया है।' कांग्रेस ने अखंड भारत का लक्ष्य सामने रखा था। परन्तु बिना मुस्लिम लीग के सहयोग के उस

सिद्धान्त पर डटे रहने का मतलब देश में भयानक गृहयुद्ध को आमन्त्रित करना था। अंगरेजों की कृपा से मुसलमान अस्त्र-शस्त्र से खूब सुसज्जित थे; उनके पीछे ब्रिटिश सत्ता का हाथ था। मुस्लिम लीग वाले जगह-जगह साम्प्रदायिक दंगे ही नहीं; लूट-मार, आगजनी आदि हिन्सा-कांड कर रहे थे। एक बात यह भी थी कि अस्थायी सरकार के समय लीगी नेताओं ने पद-पद पर बाधाएँ उपस्थित कीं, और शासनाकार्य ठीक तरह नहीं होने दिया। इस दशा में, परिस्थितियों से विवश हो कांग्रेस-नेताओं को न चाहते हुए भी देश का विभाजन स्वीकार करना पड़ा, जिससे अंगरेज यहाँ से चले जायँ, और खंडित भारत की ही सही, आजादी मिल जाय।

भारतीय स्वतंत्रता विधान, सन् १९४७—४ जुलाई १९४७ को ब्रिटिश पार्लिमेंट में भारतीय स्वतंत्रता का मसविदा पेश किया गया, और १८ जुलाई को इसे शाही अनुमति से कानून का रूप मिल गया। इसके उद्देश्य इस प्रकार थे—'दो स्वतंत्र राज्यों (भारत और पाकिस्तान) के निर्माण की व्यवस्था करना, भारतीय शासन सम्बन्धी सन् १९३५ के संविधान की उन धाराओं के बदले नई धाराओं को स्थान देना, जिनका सम्बन्ध इन राज्यों के बाहर की बातों से है, और इन राज्यों के निर्माण के फलस्वरूप तथा सम्बन्धित अन्य बातों की व्यवस्था करना।'

भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, कोई ऐसा विधान नहीं था, जिसमें प्रत्येक बात अन्तिम निर्णय की तरह ब्योरेवार दी हुई हो, वरन् यह ऐसे प्रस्ताव के रूप में था, जिससे भारत अपना नया संविधान बना सके और संक्रमण काल के लिए आवश्यक व्यवस्था कर सके। इसका मूल आधार भारत का सन् १९३५ का संविधान था, जो इस प्रकार घटाया, बढ़ाया, संशोधित और परिवर्तित किया गया था कि भारत (ब्रिटिश) राष्ट्र-मंडल के स्वराज्य प्राप्त प्रदेशों के समान हो जाय।

इस प्रकार नया संविधान बन कर अमल में आने (२६ जनवरी १९५०) तक इन दोनों राज्यों का तथा इनके प्रांतों का शासन भारत के सन् १९३५ के विधान के अनुसार हुआ, जो इन राज्यों के गवर्नर-जनरलों द्वारा संशोधित और परिवर्तित था। गवर्नर-जनरल और गवर्नर वैधानिक शासक थे। इनके व्यक्तिगत निर्णय और विवेक सम्बन्धी विशेषाधिकारों की इतिश्री होगई। इन दोनों राज्यों पर ब्रिटिश सरकार का किसी प्रकार का नियंत्रण न रहा। इनकी विधान सभाओं को पूर्ण अधिकार थे, उन पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न था। उन्हें सर्वोच्च सत्ता प्राप्त थी।

भारतीय रियासतों को एक या दूसरे राज्य में सम्मिलित होने की स्वतन्त्रता दी गई परन्तु कोई रियासत पूर्ण स्वतन्त्र नहीं रह सकती थी; एक या दूसरे राज्य में मिलने का कानूनी अधिकार भी बहुत-कुछ सीमित था, क्योंकि कुछ भौगोलिक अनिवार्यताएँ ऐसी थीं, जिनसे बचा नहीं जा सकता था।

भारत के स्वतंत्र हो जाने से भारत-मंत्री और उसके सलाहकार अनावश्यक हो गए थे; उन्हें हटाने की व्यवस्था की गई।

विधान को अमल में लाने के कार्य—ऊपर कहा गया है कि भारतीय स्वतंत्रता विधान का मसविदा ४ जुलाई १९४७ को पार्लिमेंट में पेश किया गया; यह स्पष्ट था कि उसे स्वीकृति जल्दी ही मिल जायगी। इसलिए उसी समय से उसे अमल में लाने के कार्य किये गये।

१—स्वतन्त्रता-विधान में यह व्यवस्था की गई थी कि भारत और पाकिस्तान दोनों राज्यों के लिए एक-एक गवर्नर-जनरल होगा, पर इसमें यह शर्त रखी गई थी कि जब तक इनमें से किसी राज्य का विधान मंडल विरोधात्मक नियम न बनावे, एक ही व्यक्ति दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल नियुक्त किया जा सके। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार एक ही व्यक्ति को दोनों राज्यों का गवर्नर-जनरल बनाने की बात सोचती थी। पर मुस्लिम

लीग का विचार दूसरा रहा। अस्तु, ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के दूसरे राज्यों में गवर्नर-जनरल को सम्राट् उस राज्य के मंत्रिमंडल की सिफारिश पर नियुक्त करता है, पर भारत और पाकिस्तान में १५ अगस्त १९४७ से पूर्व अलग-अलग मन्त्रिमन्डल ही न थे। इसलिए ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की सिफारिश के अनुसार पाकिस्तान में श्री जिन्ना को गवर्नर-जनरल बनाया और भारतीय विधान सभा की इच्छानुसार भारत में माउंटवेटन को गवर्नर-जनरल रहने दिया।

२—इस विधान के अनुसार पाकिस्तान के प्रदेश निर्धारित कर दिए गए और ब्रिटिश भारत के शेष प्रदेशों को भारत का नाम दिया गया। प्रदेश-निर्धारण का आधार निवासियों का साम्प्रदायिक बहुमत था, पर अन्तिम निर्णय बंगाल और पंजाब के सीमा-निर्धारण-कमीशनों पर छोड़ दिया गया, जो अपना निर्णय देते समय साम्प्रदायिक बहुमत के अतिरिक्त कुछ अन्य बातों पर भी विचार करनेवाले थे। सीमा-निर्धारण-कमीशन सर रेडक्लिफ की अध्यक्षता में नियुक्त हुए। परन्तु उनके एकमत न होने के कारण, उनकी अनुमति से सर रेडक्लिफ ने स्वयं अपना निर्णय दिया।

३—भारतीय संविधान सभा में मुस्लिम लीग और देशी रियासतों के प्रतिनिधि भाग लेने लगे, और यह घोषित कर दिया गया कि १० अगस्त से पाकिस्तान की संविधान सभा कराची में कार्य आरम्भ करेगी।

४—विभाजन-कौंसिल ने सेना का बंटवारा करना शुरू कर दिया और अँगरेजी सैनिक भारत से जाने की तैयारी करने लगे।

५—विदेशों में भारतीय राजदूत नियुक्त किए गए।

६—संविधान सभा ने कांग्रेस के तिरंगे झंडे में चरखे की जगह सम्राट् अशोक के चक्र को स्थान देकर, उसे भारतवर्ष का सरकारी झंडा स्वीकार किया।

७—प्रान्तों के लिए भारतीय गवर्नरों की नियुक्ति की गई और आवश्यकतानुसार प्रान्तीय मंत्रिमंडलों में परिवर्तन किए गए।

८—लार्ड माउंटबेटन ने रियासतों को भारतीय संघ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित करते हुए उनका स्वतंत्रता सम्बन्धी भ्रम दूर किया। इस प्रकार भारतीय संघ के विविध भागों का सुसंगठन होने लगा।

विशेष वक्तव्य—१५ अगस्त १६४७ की आधी रात को भारत स्वतंत्र हो गया, राजसत्ता हस्तान्तरित हो गई। देश ने अंगरेजों की अधीनता से मुक्ति पाई; हाँ, खंडित होने के कारण यह समय इतने उल्लास का न था, जितना होना चाहिए था। फिर, इस समय साम्प्रदायिकता का नंगा नाच होने के कारण भारत और पाकिस्तान के सीमा-प्रदेशों में अनेक परिवारों पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा, लाखों आदमियों, स्त्रियों और बच्चों को अपना घर-बार छोड़ कर दूसरे राज्य में शरणार्थी बनना पड़ा, कितनों ही ने तो अपने प्राण गंवा दिए। अनेक महिलाओं की इज्जत-आबरू नष्ट हुई। ये बातें खून खौलाने वाली थीं। धन्य है, उन सज्जनों को जिन्होंने इस उत्तेजनामय वातावरण में भी धैर्य और गम्भीरता से काम लिया। अस्तु, १५ अगस्त १६४७ हमारा स्वतंत्रता-प्राप्ति का दिवस है।

अंगरेजों के समय का अन्तिम शासन-तंत्र अगले पृष्ठ के नक्शे में दिखाया गया है, 'भारत के स्वतंत्र होने पर यहाँ की शासनपद्धति में जो परिवर्तन हुआ, उसका परिचय पाठकों को इस नक्शे की, अगले अध्याय में (पृष्ठ ५२ पर) दिये हुए नक्शे से, तुलना करने पर सहज ही मिल जायगा। इस प्रकार १५ अगस्त १६४७ के दिन का हमारी वैधानिक प्रगति में विशेष स्थान है। इससे पहले और इससे पीछे की भारतीय शासन सम्बन्धी स्थिति में महत्वपूर्ण अन्तर है।

भारत का शासन-तंत्र; १५ अगस्त १९४७ से पहले
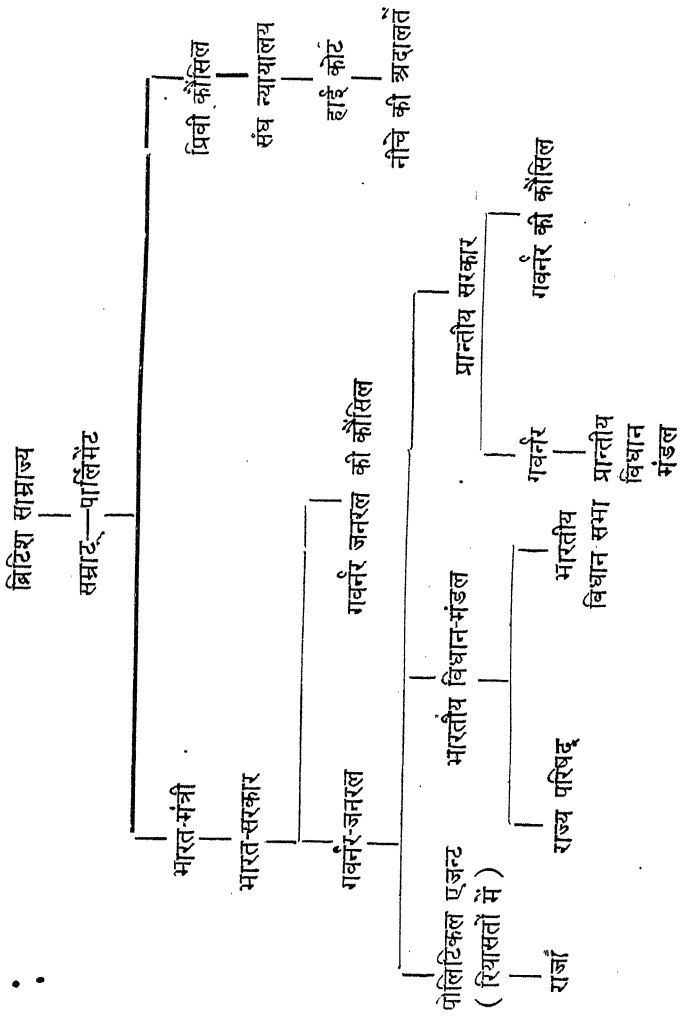
छठा अध्याय

नये संविधान से पहले की शासन पद्धति

"व्यवहार रूप में भारत १५ अगस्त १६४७ को अपने भाग्य का स्वयं विधाता बन गया, किन्तु कानूनी रूप में वह २६ जनवरी १६५० को पूर्ण स्वतंत्र हुआ।"

पिछले अध्याय में भारतीय स्वतंत्रता-विधान के सम्बन्ध में लिखा जा चुका है। उसके अनुसार १५ अगस्त १६४७ के बाद भारत में किस प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित हुई; भारत सरकार, और भारतीय पार्लिमेंट तथा प्रान्तीय सरकारों और प्रान्तीय विधान मंडलों आदि का रूप क्या हुआ, ये किस प्रकार सम्राट् और ब्रिटिश पार्लिमेंट के नियंत्रण से मुक्त हुए और देशी रियासतों की स्थिति में क्या परिवर्तन हुआ। इन बातों का ब्योरेवार वर्णन इस अध्याय में किया जायगा।

यह शासनपद्धति अस्थायी, अर्थात् उस समय तक के लिए थी, जब तक कि संविधान सभा द्वारा भारत का नया संविधान बन कर अमल में न आने लगे। नया संविधान २६ जनवरी १६५० से अमल में आने लगा। इस प्रकार इस अध्याय में बतायी हुई स्थिति अन्तकालीन व्यवस्था के रूप में थी।

इसका स्थूल रूप नक्शे में अगले पृष्ठ में दिखाया जाता है इस नक्शे की, पिछले अध्याय के अन्त में दिये हुए नक्शे से तुलना करके देखिए कि स्वतंत्र होने पर हमारी शासनपद्धति में क्या वैधानिक -रिवर्तन हुआ है।

१५ अगस्त १९४७ के बाद स्वतंत्र भारत का शासन-तंत्र
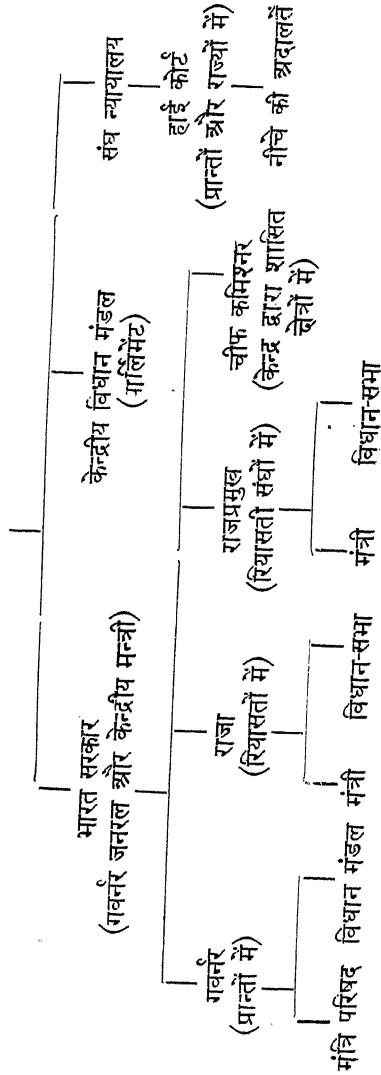
(१)

केन्द्रीय शासन

भारत के स्वतन्त्र होने से पहले भारत-सरकार का अर्थ था, कौंसिल-युक्त गवर्नर-जनरल, (गवर्नर-जनरल और उसकी कार्यकारिणी सभा)। अब भारत-सरकार का अर्थ हो गया गवर्नर-जनरल और उसका मंत्रिमंडल।

गवर्नर जनरल—पहले गवर्नर-जनरल की नियुक्ति सम्राट्, ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सिफारिश से करता था। उसका कार्य-काल प्रायः पाँच वर्ष होता था। १५ अगस्त १९४७ को भारत स्वतन्त्र हो गया और नए गवर्नर-जनरल की नियुक्ति का प्रश्न सामने आया। अब सम्राट् को इसके लिए ब्रिटिश प्रधान मंत्री की सिफारिश की आवश्यकता न रही। स्वराज्य-प्राप्त प्रदेशों के गवर्नर-जनरलों की नियुक्ति उस प्रदेश के मंत्रिमंडल की सिफारिश पर करने का नियम है। भारत में उस समय भारत और पाकिस्तान सम्बन्धी कई विषयों का निपटारा करना था और आन्तरिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय समस्याएँ उपस्थित थीं। यहाँ के मंत्रिमण्डल की इच्छा-नुसार भारतीय विधान-सभा ने माउंटबेटन को ही गवर्नर-जनरल बनाए रखना स्वीकार किया। इसके लिए सम्राट् ने नियमानुसार स्वीकृति देदी। अंगरेज गवर्नर-जनरलों में यह अन्तिम थे। जून सन् १९४८ में लार्ड माउंटबेटन के अवकाश प्राप्त करने पर केन्द्रीय मंत्रिमण्डल की इच्छा-नुसार सम्राट् द्वारा श्री राजगोपालाचार्य गवर्नर-जनरल नियुक्त किए गए। यह नियुक्ति नया संविधान स्वीकार होने तक (२६ नवम्बर १९४९ तक) रही। उसके बाद गवर्नर-जनरल का पद समाप्त हो गया।

स्वतंत्रता-विधान से गवर्नर जनरल की शक्ति बहुत कम हो गयी। वह केवल वैधानिक शासक रह गया। उसके विशेषाधिकार, जिनका उप-योग वह पहले अपनी ही इच्छा से कर सकता था, समाप्त होगए। अब

उसके लिए प्रत्येक कार्य मंत्रिमंडल के परामर्श के अनुसार ही करना आवश्यक हो गया। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भारत सरकार ने निश्चय किया कि लोगों को पदवी देने की प्रथा हटा दी जाय, इससे गवर्नर-जनरल का पदवी देने का अधिकार स्वयं समाप्त हो गया।

मंत्रिमंडल—गवर्नर-जनरल की सहायता के लिये एक कौंसिल या कार्यकारिणी सभा उस पद के आरम्भ से ही रहती आई थी। पहले उसके सब सदस्य अंगरेज होते थे। पीछे उसमें भारतीयों को भी स्थान मिलने लगा। परन्तु भारतीय सदस्यों को सेना, अर्थ और गृह-विभाग नहीं सौंपे जाते थे। सब सदस्य सम्राट् की अनुमति से पांच वर्ष के लिये नियुक्त किये जाते थे। कोई सदस्य इस देश की वास्तविक इच्छाओं और आवश्यकताओं को व्यक्त नहीं करता था, उसका यहाँ के प्रमुख राजनैतिक दलों से सम्पर्क नहीं होता था, वह केन्द्रीय विधान मंडल के प्रतिउत्तर दायी नहीं होता था।

अब यह बात नहीं रही। अब गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी के जो सदस्य थे, उनका उत्तरदायित्व राष्ट्र के प्रति था, वे राष्ट्र-नेता श्री नेहरू (प्रधान मंत्री) द्वारा चुने हुए थे। श्री नेहरू को विधान-सभा (भारतीय पार्लिमेंट) का यथेष्ट समर्थन प्राप्त था, और वे उसके प्रति उत्तरदायी थे। गवर्नर-जनरल की यह कार्यकारिणी 'मंत्रिमंडल' कहलाती थी। इसमें १४ मंत्री थे। भारत-सरकार के सब विभाग इन मंत्रियों में बटे हुए थे।

मंत्रियों को नियुक्त करने (और बर्खास्त करने) का अधिकार नियमानुसार तो गवर्नर-जनरल को था। परन्तु अब व्यवहार में गवर्नर-जनरल अपनी इच्छानुसार कुछ नहीं कर सकता था। उसके लिए आवश्यक था कि वह केन्द्रीय विधान मंडल के बहुमत वाले दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करे और प्रधान मंत्री की सिफारिश पर अन्य मंत्रियों को नियुक्त करे।

भारत-सरकार का उत्तरदायित्व—भारत के स्वतंत्र होने तक भारत-सरकार अपने कार्यों के लिए ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी थी। पार्लिमेंट उस पर भारत-मंत्री के द्वारा नियंत्रण रखती थी। भारत-मंत्री समय-समय पर भारत-सरकार को आदेश देता रहता था, और पार्लिमेंट के सदस्य भारत-मंत्री से भारतीय शासन सम्बन्धी किसी विषय में जवाब माँग सकते थे। भारत-सरकार पर, वैधानिक दृष्टि से भारतीय विधान-मंडल का कोई नियंत्रण नहीं था।

भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, से स्थिति बदल गई। अब भारतीय शासन में ब्रिटिश पार्लिमेंट का कोई स्थान नहीं रहा है। भारतमंत्री और उसके सलाहकारों का पद तोड़ ही दिया गया, केवल सम्राट् ही भारतीय शासन-विधान का अंग रहा, पर वह भारत के सम्बन्ध में यहाँ के उत्तरदायी मंत्रियों के परामर्श से ही अपने अधिकारों का प्रयोग करने लगा, व्यवहार में उसके भी अधिकार नहीं के बराबर रह गए, भारत सरकार अब अपनी गृह, नीति तथा विदेश-नीति निर्धारित करने में स्वतंत्र हो गयी। उस पर ब्रिटिश सरकार का कोई प्रतिबन्ध न रहा।

पार्लिमेंट का संगठन—भारतीय स्वतंत्रता-विधान, सन् १९४७, में यह व्यवस्था की गई थी कि नया संविधान अमल में आने तक भारत की संविधान सभा को ही, भारत की संघ-पार्लिमेंट के अधिकार होंगे। पहले यह बताया जा चुका है कि मई १९४६ में भारतीय संविधान सभा के निर्माण की जो योजना बनाई गई थी, उसमें ब्रिटिश भारत के २९६ और देशी राज्यों के ९३, कुल मिला कर ३८९ सदस्य रखे गए थे। इन्हीं सदस्यों से पार्लिमेंट संगठित हुई। पीछे पाकिस्तान का अलग राज्य बनाये जाने की योजना होने पर इनमें से उस क्षेत्र के ६९ सदस्य अलग हो गये, और भारतीय पार्लिमेंट में ३२० सदस्य रह गए। पार्लिमेंट की हैसियत से काम करने के समय उसका सभापति अलग होने लगा।

[संविधान-सभा के सभापति डा० राजेन्द्रप्रसाद, और भारतीय पार्लिमेंट के सभापति श्री मावलंकार जी थे ।]

पार्लिमेंट के अधिवेशनों में संविधान-सभा के वे सदस्य भाग नहीं लेते थे, जो प्रान्तीय विधान मंडलों के सदस्य थे।

पार्लिमेंट की सर्वोच्च सत्ता—१५ अगस्त १६४७ से पहले भारतीय विधान-मंडल के अधिकार बहुत सीमित थे। वह ब्रिटिश पार्लिमेन्ट द्वारा पास किए गए भारतवर्ष सम्बन्धी कानूनों से असंगत कानून नहीं बना सकती थी। उसके द्वारा पास किए हुए प्रस्तावों को गवर्नर जनरल सम्राट् की अनुमति के लिए रोक सकता था और सम्राट को अनुमति देने अथवा न देने या उन्हें रद्द करने तथा स्थगित करने का पूर्ण अधिकार था। ब्रिटिश पार्लिमेंट द्वारा पास किए हुए अनेक कानून भारत पर भी लागू होते थे। परन्तु भारतीय स्वतंत्रता-विधान से ये सब प्रतिबन्ध हट गए। अब भारतीय पार्लिमेन्ट को ब्रिटिश पार्लिमेन्ट द्वारा पास किए हुए कानूनों तथा तत्सम्बन्धी नियमों को रद्द करने तथा उनसे असंगत कानून बनाने का भी अधिकार हो गया। इस प्रकार भारतीय पार्लिमेन्ट एक सर्वोच्च सत्ता-सम्पन्न विधान संस्था हो गई। पहले आर्थिक विषयों में पार्लिमेंट पर बहुत से प्रतिबन्ध थे, और गवर्नर-जनरल को विशेषाधिकार प्राप्त थे। अब गवर्नर-जनरल के विशेषाधिकार समाप्त हो जाने से आर्थिक विषयों में भी पार्लिमेंट को पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गए।

(२) प्रान्तीय शासन

प्रान्तों का निर्माण और सीमा-परिवर्तन—प्रान्तों की संख्या समय-समय पर बदलती रही है। भारत के स्वतंत्र होने से पहले कोई प्रान्त (चाहे वह गवर्नर का प्रान्त हो, या चीफ-कमिश्नर का) निर्माण करने, या उसका क्षेत्र घटाने या बढ़ाने, अथवा उसकी सीमा बदलने का अधिकार सम्राट् को था। सन् १६४७ के भारतीय स्वतंत्रता

विधान से किसी प्रान्त को बनाने या उसकी सीमा में परिवर्तन करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को हो गया।

चीफ कमिश्नरों के प्रान्त—भारत के स्वतंत्र होने के समय चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त ये थे—(१) देहली, (२) अजमेर-मेरवाड़ा, (३) कुर्ग, (४) पंथ-पिपलोदा और (५) अन्दमन-निकोबार। अगस्त १६४७ के बाद इन प्रांतों में बहुत परिवर्तन हुआ। देशी राज्यों में से अधिकांश, भारतीय संघ में विलीन हो गए और इनमें से कुछ राज्यों या उनके समूहों को कमिश्नर या चीफ-कमिश्नर का प्रान्त बनाया गया। इनकी नियुक्ति गवर्नर-जनरल करता था और वे उसके प्रति ही उत्तरदायी होते थे।

गवर्नरों के प्रान्त—भारत के स्वतंत्र होने (और पाकिस्तान बनने) के बाद गवर्नरों के प्रान्त निम्नलिखित हुए—(१) मदरास (२) बम्बई (३) संयुक्त प्रान्त (४) बिहार (५) मध्य प्रान्त-बरार (६) आसाम (७) उड़ीसा (८) पूर्वी पंजाब (९) पश्चिमी बंगाल।

पहले गवर्नरों की नियुक्तियाँ सम्राट द्वारा होती थीं। भारत के स्वतंत्र होने के समय अर्थात् १५ अगस्त १६४७ से पूर्व सब गवर्नरों ने त्याग-पत्र दे दिया था। मदरास, बम्बई, और आसाम के गवर्नरों से अपने पद पर बने रहने की प्रार्थना की गई, जो उन्होंने स्वीकार करली। अन्य प्रान्तों के लिए नए गवर्नरों को सम्राट् की स्वीकृति से नियुक्त किया गया और यह निश्चय हो गया कि भविष्य में रिक्त होने वाले स्थानों की पूर्ति गवर्नर-जनरल द्वारा की जायगी।

भारत के स्वतंत्र होने से पहले बंगाल, बम्बई, मदरास और संयुक्त-प्रान्त के गवर्नरों का पद विशेष ऊंचा माना जाता था; इन्हें वार्षिक वेतन १,२०,००० रु० मिलता था। पंजाब और बिहार के गवर्नरों को

(हिन्दू), २—सिक्ख; ३—मुस्लिम, ४—एंग्लो-इंडियन, ५—योरपियन, ६—भारतीय ईसाई, ७—व्यापार, उद्योग और खनिज, ८—जमींदार, ९—विश्वविद्यालय, १०—श्रम, ११—स्त्रियाँ—साधारण (हिन्दू), १२—स्त्रियाँ—मुस्लिम, १३—स्त्रियाँ—एंग्लोइंडियन, १४—स्त्रियाँ —सिक्ख, १५—स्त्रियाँ—भरतीय ईसाई, १६—पिछड़ी हुई जातियाँ। इस आधार पर पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और उड़ीसा को छोड़कर अन्य प्रत्येक प्रान्त के विधान मंडल में कुछ स्थान योरपियनों को दिए हुए; थे। स्वतंत्रता विधान से ये स्थान समाप्त समझे गए अब प्रान्तीय विधान-सभाओं के सदस्य इस प्रकार रह गये—

मदरास २१२, बम्बई १७२, पश्चिमी बंगाल ९०, संयुक्तप्रान्त २२६, पंजाब ८१, उड़ीसा ६०, विहार १५०, मध्य प्रान्त-बरार १११, और आसाम ७१।

विधान सभा के अधिक से अधिक पाँच वर्ष रहने और इसके बाद भंग होजाने का नियम था।

सन् १९४६ के चुनावों के समय (१९३५ के शसन-विधान के अनुसार) छः प्रान्तों में दूसरी सभाएँ (विधान-परिषदें) थीं। भारतीय स्वतंत्रता विधान के अनुसार पश्चिमी बंगाल और आसाम की विधान-परिषदें तोड़ दी गयीं, अब चार प्रान्तों में ही दो-दो सभाएँ रह गयीं :— इनके सदस्यों की अधिकतम संख्या इस प्रकार थी:—

मदरास ५५, बम्बई २९, संयुक्तप्रान्त ५९, विहार २९। विधान परिषदें स्थायी सस्थाएँ थीं, वे कभी भंग नहीं होती थीं। इनके लगभग एक-तिहाई सदस्य निर्धारित रीति से तीन-तीन साल में बदलने (अर्थात् प्रत्येक तीन साल के बाद इसके एक-तिहाई सदस्यों का नया चुनाव होने) का नियम था। कौन-कौन से सदस्य पहले तीन साल बाद, और कौन-कौन से पहले छः साल बाद इससे पृथक् हों, इसका निर्णय गवर्नर करता था।

प्रान्तीय विधान मंडलों का अधिकार—सन् १९३५ के

संविधान के अनुसार प्रांतीय विधान मंडलों के कार्य-सम्पादन के सम्बन्ध में अनेक वाधाएँ तथा सीमाएँ थीं। अब उनका अन्त हो गया। अब ब्रिटिश पार्लिमेंट प्रांतों के सम्बन्ध में कोई कानून नहीं बना सकती थी। और न सम्राट् प्रांतीय विधान मंडलों द्वारा बनाए हुए कानूनों को रद्द कर सकता था। पहले गवर्नर-जनरल अपने विवेक और व्यक्तिगत निर्णय से प्रांतीय विधान मंडलों के कानून-निर्माण में कई प्रकार की रुकावटें डाल सकता था। अब उसके वे अधिकार लुप्त होगए। पहले कई विषयों के प्रस्ताव प्रांतीय विधान मंडलों में उपस्थित नहीं किए जा सकते थे, और कुछ को उपस्थित करने के लिए गवर्नर-जनरल या गवर्नर की पूर्व अनुमति लेना अनिवार्य था। सन् १९४७ के भारतीय स्वतंत्रता विधान द्वारा ये सब रुकावटें हटा दी गईं। अब प्रांतीय विधान मंडल अपने क्षेत्र के विषयों के लिए यथेष्ट कानून बना सकते थे।

(३)

देशी रियासतें

भारत के स्वतंत्र होने से पहले रियासतें दोहरी अधीनता में थीं— राजाओं की तथा अंगरेजों की। रियासतों की जागीरी जनता तो तेहरी अधीनता में थी, कारण वह जागीरदारों के भी अधीन थी। भारत के स्वतंत्र होने पर रियासतों के शासन-प्रबन्ध में विलक्षण परिवर्तन हुआ। वे क्रमशः प्रान्तों के स्तर पर आने लगीं। इसे अच्छी तरह समझने के लिए यह जान लेना चाहिए कि सन् १९४७ से पहले उनकी स्थिति क्या थी।

भारत के स्वतंत्र होने से पहले—सन् १९३५ के संविधान के अनुसार, देशी रियासत ('स्टेट') भारतवर्ष के ऐसे किसी भी भाग को कह सकते थे, जो ब्रिटिश भारत का भाग न हो, और जिसे सम्राट् ने रियासत मान लिया हो। इस प्रकार देशी रियासतों से भारतवर्ष के उन भागों का

प्रयोजन था, जिनका आन्तरिक शासन यहाँ के ही राजा या सरदार, विविध संधियों के अनुसार, सम्राट् की आधीनता में रहते हुए करते थे। छोटी-बड़ी ये सब रियासतें लगभग ५६० थीं। इनमें से हैदराबाद, बड़ौदा, मैसूर, कश्मीर और ग्वालियर आदि कुछ तो अपने विस्तार और जनसंख्या में योरप के एक-एक राष्ट्र के समान तथा दो-दो करोड़ रुपए से अधिक आय वाली थीं। अन्य बहुत सी रियासतें साधारण गाँव सरीखी थीं। जिन्हें वास्तव में रियासत कहा जाना चाहिए था, उनकी संख्या दो सौ से भी कम थी, शेष सनदी जागीरें ('इस्टेट्स') थीं, जिनके अधिपति सरदार या 'चीफ' कहलाते थे। केवल ३० ही रियासतें ऐसी थीं, जिनकी आबादी, क्षेत्रफल और साधन यहाँ के औसत जिले के समान थे।

अधिकतर देशी रियासतों में कोई शासन-विधान नहीं था। उनका शासन, शासक की व्यक्तिगत इच्छा, रुचि या योग्यता आदि के अनुसार बदलता रहता था।

केवल तीस रियासतों में विधान-सभाएँ थीं। इनकी सभाओं में से भी अधिकतर में सरकारी सदस्यों की काफी संख्या थी, तथा गैरसरकारी सदस्य भी जनता द्वारा निर्वाचित न होकर नामज़द होते थे; अथवा म्युनिसपेलटियों आदि द्वारा चुने जाते थे। फिर, अधिकतर विधान-सभाओं को क़ानून बनाने या बजट की मदें स्वीकार करने का विशेष अधिकार न होने से, वे एक प्रकार की परामर्श देने वाली संस्थाएँ थीं, उनका शासकों पर कुछ नियंत्रण नहीं था।

अधिकांश रियासतों में निराले-निराले कानून प्रचलित थे। कुछ में तो कानून का अभाव ही कहा जा सकता था; शासकों की इच्छा ही कानून थी। लगभग चालीस रियासतों में हाईकोर्ट कुछ-कुछ ब्रिटिश भारत के ढंग पर संगठित थे।

अधिकतर राजा प्रजा के प्रति कुछ भी उत्तरदायी नहीं थे, वे

स्वेच्छानुसार भाँति-भाँति के कर लगाते थे, और जब चाहते वे उन्हें बढ़ा देते थे; किसी व्यवस्थापक सभा आदि का कुछ नियंत्रण नहीं था। खर्च के विषय में भी वे प्रायः स्वछन्द थे।

नई योजना—सन् १९४६-४७ में भारत के लिए नए संविधान की योजना बनाने के जो प्रयत्न हुए, उनका उल्लेख पहले किया जा चुका है। ३ जून १९४७ की ब्रिटिश योजना ने रियासतों के लिए तीन मार्ग छोड़ दिए (१) वे भारतीय संघ में शामिल हों, (२) पाकिस्तान में शामिल हों, या (३) १५ अगस्त को ब्रिटिश सत्ता का अन्त होने पर वे स्वतंत्र हो जाएँ। हाँ वायसराय ने यह स्पष्ट कर दिया था कि 'अपने हितों की रक्षा करने का भार स्वयं देशी राज्यों पर रहेगा, हम भारतवर्ष की सार्वभौम सत्ता भारतीयों के हाथ में दे रहे हैं, देशी राज्यों को भारत (या पाकिस्तान) सरकार से बात करनी चाहिए। सम्राट् की सरकार और राजाओं के बीच किसी प्रत्यक्ष समझौते या संधि की बात न हो सकेगी। राजाओं की सहायता के लिए ब्रिटिश सेनाएँ नहीं रहेंगी।' इस प्रकार राजाओं के लिए उपर्युक्त तीन रास्तों में से आखरी रास्ता कुछ बन्द सा हो गया। तथापि कुछ शासक अपनी 'स्वतंत्रता' का स्वप्न देखने लगे, और वे उसे चरितार्थ करने के लिए कूटनीतिक उपाय काम में लाए।

देशी रियासतें और भारतीय संघ—भारत की लगभग ५६० रियासतों में से एक दर्जन से भी कम पाकिस्तान की भौगोलिक सीमा में थीं। वे पाकिस्तान में सम्मिलित हो गईं। शेष सब भारतीय संघ के प्रान्तों से मिली हुई या इन प्रान्तों के बीच में थीं। ये क्रमशः प्रवेश-पत्र पर हस्ताक्षर करके भारतीय संघ में शामिल होती गयीं। केवल भोपाल, इन्दौर और त्रावणकोर ने ढील की, और कश्मीर, जूनागढ़ और हैदराबाद का कुछ विरोधी रुख रहा। अन्त में ये भी भारतीय संघ में सम्मिलित हो गईं। सब ने तीन अनिवार्य विषय—रक्षा, वैदेसिक सम्बन्ध और

यातायात—केन्द्रीय सरकार को सौंप दिये। इन रियासतों के प्रतिनिधियों ने नया संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा में भाग लिया।

कश्मीर पर पाकिस्तान ने अपना दावा किया और उसका कुछ हिस्सा दबा लिया। यह मामला संयुक्तराष्ट्र की सुरक्षा समिति के सामने पेश हुआ, पर उसने निर्णय करने में बहुत ढील की, और पाकिस्तान को आक्रामक या हमला करने वाला घोषित नहीं किया। अब कश्मीर की, वालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित विधान सभा इसका विचार करेगी।

पहले कहा जा चुका है कि अधिकांश रियासतें बहुत ही छोटी-छोटी थीं। उनका क्षेत्रफल, जनसंख्या और आय अच्छे शासन की सुविधा की दृष्टि से काफी नहीं थी। इसलिए उन्हें प्रान्तों में मिलाने या उनके संघ बनाने का विचार किया गया। रियासती विभाग के सुयोग्य अध्यक्ष सरदार पटेल ने रियासती कार्यकर्ताओं तथा राजाओं से इस विषय पर क्रमशः समझौता करके उन्हें प्रान्तों के स्तर पर लाने का प्रयत्न किया। इसके सम्बन्ध में विशेष आगे लिखा जायगा।

सातवाँ अध्याय

संविधान-निर्माण

इतने विशाल देश का विधान तैयार करना कोई मामूली बात नहीं है। इतनी बड़ी जनसंख्या के भाग्य-निर्णय का काम किसी भी तरह आसान नहीं कहा जा सकता। जनसंख्या और देश की विशालता के साथ-साथ कितनी ही ऐसे समस्याएँ भी हमारे सामने थीं, जिनसे हमारा काम और भी कठिन होगया था। पर हमारे नेताओं ने चीजों को खूबी के साथ सम्भाला।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

इस अध्याय में यह विचार करना है कि भारत का नया संविधान किस प्रकार बना उसे बनानेवाली सभा का संगठन कैसा था और उसकी कार्यपद्धति क्या रही। पहले यह जानलें कि संविधान-सभा वास्तव में किसे कहते हैं और उसका क्या महत्व और उत्तर-दायित्व होता है।

संविधान-सभा—संविधान-सभा उस सभा को कहते हैं, जो देश का शासन-विधान बनाने के लिए बुलाई जाती है। उस सभा में प्रायः जनता के चुने हुए प्रतिनिधि रहते हैं। आधुनिक काल में अधिकतर लिखित विधान तैयार किये गए हैं और उनके निर्माण के लिए संविधान-सभा का संगठन किया गया है। संयुक्तराज्य-अमरीका, फ्राँस, जर्मनी तथा रूस में संविधान-सभा बुलाकर उसी द्वारा संविधान तैयार कराया गया। यह लोकसत्ता अथवा प्रजातन्त्र का युग है। प्रजा को ही वास्तविक सत्ताधारी माना जाता है। प्रजातन्त्र में राजनैतिक सत्ता जनता के हाथ में निहित

होती है। वही सब शासन-कार्य का संचालन करती है। उसी पर सब जिम्मेदारी रहती है। अतः यह उचित समझा जाता है कि वही देश के लिए संविधान भी तैयार करे। जैसे शासन का कार्य प्रजा की ओर से उसके प्रतिनिधि करते हैं, उसी तरह संविधान बनाने का कार्य भी प्रतिनिधियों द्वारा सम्पादित होता है। आज के युग में यदि किसी देश की जनता निरंकुशता, तानाशाही अथवा पराधीनता से मुक्त होने के लिए आन्दोलन करती है तो यह माँग भी उपस्थित करती है कि संविधान बनाने के लिए संविधान-सभा की योजना की जाय। भारत भी वर्तमान युग की विचार-धारा से प्रभावित रहा है। अतः उसकी ओर से भी ब्रिटिश अधिकारियों से यह माँग की गई। उसी का फल है कि भारत को स्वाधीनता देने की तैयारी करने के लिए ब्रिटिश अधिकारियों ने संविधान सभा का संगठन कर दिया।

संविधान-सभा का संगठन—ब्रिटिश मंत्रिमिशन की मई १९४६ की योजना के अनुसार भारत के प्रान्तों के २९६, तथा रियासतों के ९३, कुल मिलाकर ३८९ सदस्यों की संविधान-सभा बनाने का निश्चया किया गया। इन सदस्यों के चुनाव की योजना यह थीः—

१—मोटे तौर पर प्रत्येक प्रान्त का, उसकी जनसंख्या के आधार पर दस लाख पीछे १ प्रतिनिधि रहे।

२—सब प्रतिनिधियों के स्थान प्रान्तों में उनकी मुख्य जातियों की जनसंख्या के अनुपात से बाँट दिए जाँय।

३—प्रत्येक प्रान्त में प्रत्येक जाति के निर्धारित प्रतिनिधि असेम्बली में उस जाति के सदस्यों द्वारा निर्वाचित हों।

४—इस कार्य के लिए भारत की केवल तीन मुख्य जातियाँ स्वीकार की जाँयः—साधारण, मुस्लिम तथा सिक्ख। असेम्बलियों के इन जातियों के सदस्य सानुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर अपने-अपने प्रतिनिधि चुनें।

५—ब्रिटिश भारत के विविध प्रान्तों के कुल प्रतिनिधियों की संख्या २६६ हो।

६—रियासतों को सानुपातिक प्रतिनिधित्व प्राप्त हो तथा ब्रिटिश भारत के प्रतिनिधियों की संख्या के आधार पर उनके ६३ से अधिक प्रतिनिधि न हों।

इस योजना के अनुसार संविधान-सभा के लिए प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ। प्रान्तीय विधान-सभाओं ने इस चुनाव में निर्वाचन-क्षेत्र का काम किया। इस प्रकार चुनाव परोक्ष रहा और उसमें पृथक् निर्वाचन का ही सिद्धान्त माना गया।* प्रत्येक सदस्य को अपने-अपने निर्वाचन-क्षेत्र से, जितने प्रतिनिधियों की संख्या निश्चित थी, उतने मत देने का अधिकार था। कांग्रेस की इच्छा के अनुसार संविधान-सभा में बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, विधानवेत्ता, इतिहास-ज्ञाता, दार्शनिक, समाजशास्त्री आदि सभी प्रकार के व्यक्ति लिए गए, तथापि यह नहीं कहा जासकता कि सभी आदमी संविधान-निर्माण के लिए यथेष्ट योग्य और कर्त्तव्य-परायण थे। ब्रिटिश भारत में, विविध दलों की दृष्टि से, प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार रही:—

---

*वास्तव में चुनाव बालिग मताधिकार के आधार पर होना चाहिए था, परन्तु संविधान बनने का कार्य जल्दी हो, इसलिए सिद्धान्त की उपेक्षा करके व्यवहारिकता का ध्यान रखा गया।

प्रान्त	कांग्रेस	मुस्लिम लीग	स्वतंत्र साधारण	स्वतंत्र मुसलमान	सिक्ख	योग
संयुक्तप्रांत	४५	७	३	—	—	५५
मध्यप्रान्त	१६	१	—	—	—	१७
मदरास	४५	४	—	—	—	४९
बम्बई	१९	२	—	—	—	२१
बिहार	२१	५	—	—	—	३६
उड़ीसा	८	—	१	—	—	९
दिल्ली	१	—	—	—	—	१
अजमेर-मेरवाड़ा	१	—	—	—	—	१
कुर्ग	१	—	—	—	—	१
पंजाब	६	१५	२	१	४	२८
सिंध	१	३	—	—	—	४
सीमाप्रान्त	२	१	—	—	—	३
बलोचिस्तान	—	—	—	१	—	१
बंगाल	२५	३२	२	१	—	६०
आसाम	७	३	—	—	—	१०
योग ...	२०८	७३	८	३	४	२९६

इनके अतिरिक्त देशी राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या ६३ ठहराई गई थी। ये प्रतिनिधि राजाओं और कार्यकर्ताओं से विचार-विनिमय करके लिए गए। इस प्रकार तत्कालीन योजना के अनुसार भारतीय संविधान सभा के कुल सदस्यों की संख्या ३८६ थी।

पीछे पाकिस्तान राज्य का निर्माण होने से उसके सदस्य अलग हो गए। उसके प्रान्तों के सदस्यों का हिसाब इस प्रकार था—

प्रान्त	मुस्लिम	साधारण	सिक्ख	योग
पूर्वी बंगाल और सिलहट	३१	१३	—	४४
पश्चिमी पंजाब	१२	३	२	१७
सिन्ध	३	१	—	४
सीमा प्रान्त	३	—	—	३
बलोचिस्तान	१	—	—	१
योग	५०	१७	२	६९

संविधान सभा का उद्घाटन—संविधान-सभा के उद्घाटन के लिये ६ दिसम्बर १९४६ की तिथि नियत की गई। मुस्लिम लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना ने एक वक्तव्य निकाल कर कहा कि लीग के प्रतिनिधि उसमें कोई भाग नहीं लेंगे। इसके उत्तर में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने मेरठ के कांग्रेस-अधिवेशन में घोषित किया कि लीगवाले आयें या न आयें, हम अपना काम जारी रखेंगे। हम एक स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए पूरी तौर से तैयार होकर संविधान-सभा में जायँगे। फलतः ६ दिसम्बर को बड़े समारोह के साथ संविधान-सभा का उद्घाटन हुआ। पार्लिमेंटरी पद्धति के सबसे बड़े ज्ञाता डा० सच्चिदानन्द सिन्हा उसके अस्थायी अध्यक्ष चुने गए; पीछे देशरत्न डा० राजेन्द्रप्रसाद स्थायी अध्यक्ष निर्वाचित हुए।

उद्देश्य-प्रस्ताव—संविधान-सभा का पहला अधिवेशन २३ दिसम्बर १९४६ को समाप्त हुआ। इसमें कार्यप्रणाली के नियमादि तैयार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति के अतिरिक्त उद्देश्य-प्रस्ताव पर विचार हुआ। इसे उपस्थित करते हुए श्री नेहरू जी ने कहा था कि 'इसमें सिद्धान्त की बुनियादी बातें बताई गयी हैं। यह प्रस्ताव होते हुए भी प्रस्ताव से बहुत ज्यादा है। यह एक घोषणा है, एक दृढ़ निश्चय है, एक प्रतिज्ञा और दायित्व है और हम सब के लिए तो यह एक व्रत है। हम इस प्रस्ताव द्वारा संसार को यह बतलाना चाहते हैं कि हमने इतने दिनों से किस बात की अभिलाषा कर रखी थी, हमारा स्वप्न क्या था, यह प्रस्ताव जिसे हम भारतीय स्वतन्त्रता का घोषणा-पत्र कह सकते हैं; इस प्रकार है :—

यह संविधान-सभा भारत को पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र जनतंत्र घोषित करने और उसके भावी शासन के लिए एक संविधान बनाने का गम्भीर और दृढ़ निश्चय करती है।

इस शासन-विधान में उन सभी प्रदेशों का एक संघ रहेगा, जो अब ब्रिटिश भारत तथा देशी रियासतों के अन्तर्गत हैं, तथा उनके बाहर भी हैं, और जो आगे स्वतन्त्र भारत में सम्मिलित होना चाहते हैं। और

इस संविधान में उपर्युक्त सभी प्रदेशों को, जिनकी वर्तमान सीमा चाहे कायम रहे या संविधान सभा और पीछे संविधान के नियमानुसार बने या बदले, एक स्वाधीन इकाई या प्रदेश का दर्जा मिलेगा व रहेगा। उन्हें वे सब अवशिष्ट अधिकार प्राप्त होंगे, जो संघ को नहीं सौंपे जायँगे, और वे शासन तथा प्रबन्ध सम्बन्धी सभी अधिकारों को बरतेंगे, सिवाय उन कार्यों और अधिकारों के जो संघ को सौंपे जायँ, जो संघ में स्वभावतः निहित या समाविष्ट हों, या

जो उससे निकलते हों। और

इस संविधान में पूर्ण सत्ताधारी स्वतंत्र भारत तथा उसके अंगभूत प्रदेशों और शासन के सभी अंगों की सारी शक्ति और सत्ता जनता द्वारा प्राप्त होगी। तथा

इस संविधान द्वारा भारत के सभी लोगों को राजकीय नियमों और साधारण सदाचार के अनुकूल, निश्चित नियमों के आधार पर सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक न्याय के अधिकार, वैयक्तिक स्थिति व सुविधा की, तथा मानवी समानता के अधिकार और विचारों की, विचारों के प्रगट करने की, विश्वास व धर्म की, काम-धंधों की, संघ बनाने व काम करने की स्वतन्त्रता के अधिकार रहेंगे और माने जायँगे। और

इस संविधान में अल्पसंख्यकों के लिए, पिछड़े हुए व कबायली प्रदेशों के लिए तथा दलित और पिछड़ी हुई जातियों के लिए काफी संरक्षण रहेंगे। और

इस संविधान के द्वारा इस जनतंत्र के क्षेत्र की आन्तरिक एकता रक्षित रहेगी और और जल, थल और हवा पर उसके सब अधिकार, न्याय और सभ्य राष्ट्रों के नियमों के अनुसार रक्षित होंगे। और

यह देश संसार में अपना योग्य व सम्मानित स्थान प्राप्त करने और संसार की शान्ति तथा मानवजाति का हित-साधन करने में अपनी इच्छा से पूर्ण योग देगा।

इस प्रस्ताव को चारों ओर से समर्थन हुआ। किन्तु डा० जयकर और अम्बेडकर के कहने से उस पर उस समय विचार करना स्थगित किया गया—इस ख्याल से कि लीग वालोंका सहयोग प्राप्त होने वाला है, उसके बाद ही इसे पास किया जाय।

[यह प्रस्ताव बहुत सोच समझ कर तैयार किया गया था। श्री नेहरू ने कहा था 'कि यदि मैंने प्रस्ताव में यह उल्लेख किया होता कि हम समाजवादी राज्य चाहते हैं तो हमने एक ऐसी बात कही होती, जो बहुसंख्यक व्यक्तियों को स्वीकार होती, किन्तु कुछ व्यक्तियों को पसन्द न होती। हम प्रस्ताव को ऐसा रखना चाहते हैं जो विवाद-ग्रस्त न हो।' अस्तु, प्रस्ताव को भरसक विवाद-रहित बनाने का प्रयत्न किये जाने पर भी इस पर लम्बी बहस हुई। अन्त में यह २९ जनवरी १९४७ को सर्वसम्मति से पास हुआ। यह प्रस्ताव संविधान का अंग नहीं बना, किन्तु इसका सार भाग संविधान की प्रस्तावना में रखा गया है, यों यह प्रस्ताव संविधान की सभी धाराओं में बोलता हुआ मिलता है, क्योंकि सारा संविधान उसी से प्रेरित होकर बनाया गया है।]

उपसमितियों की नियुक्ति—संविधान-सभा का दूसरा अधिवेशन २० जनवरी १९४७ ई० से ५ दिन के लिए हुआ। एक कार्य-संचालन-समिति (स्टीयरिंग कमेटी) नियुक्त की गई। सरदार पटेल की अध्यक्षता में एक सलाहकार-समिति बनाई गई। यह सबसे बड़ी समिति थी। इस ने चार उपसमितियाँ नियुक्त कीं—(१) अल्पसंख्यक-उपसमिति, श्री एच० सी० मुकर्जी की अध्यक्षता में; (२) मूल अधिकार उपसमिति, आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में; (३) उत्तर-पूर्वी सीमा (आसाम) आदिम जाति तथा पृथक् प्रदेश उपसमिति, श्री गोपीनाथ बारदोलोई की अध्यक्षता में; (४) आदिम जाति और पृथक् प्रदेश उपसमिति, श्री ठक्कर बापा की अध्यक्षता में। सभा का तीसरा अधिवेशन २८ अप्रैल १९४७ को प्रारम्भ हुआ। यह भी पाँच दिन तक रहा। इस अधिवेशन में बड़ौदा, बीकानेर, कोचीन, पटियाला, जयपुर, रीवा तथा भावनगर के प्रतिनिधि भी सम्मिलित हुए।

संविधान-सभा ने पहले ही अधिवेशन में श्री नेहरू की अध्यक्षता

में एक समिति नरेन्द्रमण्डल की वार्ता-समिति से परामर्श करने के लिए बना दी थी ताकि यह तय हो जाय कि देशी राज्यों के लिए नियत ६३ जगहों का बँटवारा किस प्रकार हो। उसी का परिणाम था कि संविधान सभा में देशी राज्यों के भी प्रतिनिधि सम्मिलित होने लगे। संघ संविधान के सिद्धान्त स्थिर करने के लिए एक समिति नेहरू जी की अध्यक्षता में नियुक्त की गई। इसी प्रकार एक समिति प्रान्तीय विधान के सिद्धांतों के सम्बन्ध में बनाई गई, जिसके अध्यक्ष सरदार पटेल नियुक्त किए गये। संविधान-सभा के अध्यक्ष ने यह घोषित किया कि ज्यों-ज्यों संविधान बनता जायगा, उसका राष्ट्रभाषा में अनुवाद भी होता जायगा।

स्वतन्त्रता-विधान का प्रभाव—संविधान सभा का अगला (चौथा) अधिवेशन जो १४ जुलाई १९४७ को प्रारम्भ हुआ, बड़ा महत्वपूर्ण था। विभिन्न समितियों की रिपोर्टों पर विचार किया गया और संविधान की रूप-रेखा स्थिर की गई। इसी अधिवेशन-काल में भारत स्वाधीन हुआ, संविधान-सभा के हाथ में सर्वोच्च सत्ता आ गई। उसने अपना राष्ट्रीय झण्डा भी स्थिर किया। यह बात भी उल्लेखनीय है कि १५ अगस्त को जब भारतीय स्वतन्त्रता-विधान अमल में आया तो भारत के उन भागों के प्रतिनिधि, जो पाकिस्तान में चले गए, संविधान-सभा से अलग हो गए। दूसरा बड़ा परिवर्तन यह हुआ कि संविधान-सभा के अधिकारों पर जो बन्धन थे, वे सब दूर हो गए। तीसरे संविधान-सभा को भारतीय विधान-मण्डल अर्थात् पार्लिमेंट के रूप में भी काम करने का अधिकार प्राप्त हो गया; कानून बनाने के काम करने के लिए इसका अधिवेशन अलग किया जाता था, उसका अध्यक्ष (स्पीकर) दूसरा व्यक्ति होता था।

प्रारूप (मसविदा) रचना—संविधान-सभा के चौथे अधिवेशन में ही संविधान का मसविदा बनाने के लिए सात सज्जनों की एक कमेटी बनायी गयी। इसके अध्यक्ष डाक्टर भीमराव अम्बेडकर

(क़ानून–मंत्री) निर्वाचित हुए। संविधान का हिन्दी अनुवाद करने के लिए श्री घनश्यामसिंह गुप्त (अध्यक्ष, मध्यप्रदेश–विधान-सभा) के सभापतित्व में तथा हिन्दुस्तानी अनुवाद करने के लिए पंडित सुन्दरलाल जी के सभापतित्व में एक-एक अनुवाद कमेटी नियुक्त की गयी। मसविदा कमेटी ने बड़े परिश्रम से मसविदा तैयार किया और उसे फरवरी १६४८ में संविधान सभा के अध्यक्ष की सेवा में उपस्थित किया। यह मसविदा २५ फरवरी को प्रकाशित हुआ। यह पुस्तक-रूप में छपा तथा पत्रों में भी प्रकाशित हुआ।

भाषावार प्रान्त कमीशन—प्रारूप समिति ने भाषावार प्रान्त कमीशन नियुक्त करने की सिफारिश की। संविधान-सभा में भी इसकी माँग की गयी थी। अतः जुलाई १६४८ में श्री एस० के० दर की अध्यक्षता में यह कमीशन नियुक्त किया गया। डा० पन्नालाल और श्री जगतनारायण लाल इसके सदस्य थे। कमीशन ने अपनी रिपोर्ट (दिसम्बर १६४८) में स्वीकार किया कि देश में भाषा के आधार पर प्रान्तों की पुनर्रचना की जाने की प्रबल मांग है। परन्तु भारतीय राष्ट्र की एकता को शक्तिशाली बनाए रखने की आवश्यकता प्रमुख है; प्रत्येक मांग का इसी दृष्टिकोण से विचार किया जाना चाहिए। कमीशन का मत है कि भाषाओं के आधार पर प्रान्तों की पुनर्रचना होने से देश की एकता को आघात पहुँचेगा।

संविधान-सभा के संबंध में कुछ अन्य ज्ञातव्य बातें—संविधान बनाने में संविधान-सभा ने ११ अधिवेशनों में भाग लिया वह कुल १६५ दिन बैठी, जिसमें ११४ दिन संविधान के वाचन और उस पर विवाद में खर्च हुए। कुल ७६३५ संशोधन आये, जिनमें २४७३ विचारार्थ उपस्थित हुए। संविधान-सभा में कुल ३०८ सदस्य थे।

भारत का संपूर्ण संविधान बनने में ६४ लाख रुपए और तीन साल का समय लगा। संविधान सभा के जिन सदस्यों ने लगातार परिश्रम

करके संविधान-निर्माण में योग दिया, वे धन्यवाद और प्रशंसा के योग्य हैं, परन्तु यह स्वीकार करना होगा कि कुछ सदस्यों में ऐसे कार्य के लिए यथेष्ट योग्यता का अभाव था, और कुछ ने प्रमाद या आलस्यवश अपने कर्तव्य का यथेष्ट पालन नहीं किया। अन्यथा संविधान बनने में अवश्य ही समय और द्रव्य इतना अधिक खर्च न होता, उसमें काफी बचत हो जाती।

संविधान-निर्माण की समस्याएँ; एकीकरण—अंगरेजों ने भारत में अपने स्वार्थ के लिए साढ़े पांच सौ से अधिक जुदा-जुदा रियासतें कायम करके इस देश को बुरी तरह अङ्ग-भङ्ग कर रखा था। इस प्रकार अब से पहले जितने संविधान बने थे वे भारत के केवल 'ब्रिटिश भारत' कहे जाने वाले भाग पर लागू होते थे, देशी राज्यों पर नहीं। भारत से हटते समय भी अंगरेजों ने इन सैकड़ों 'राज्यों' को नयी भारत-सरकार के अधीन न करके केन्द्रीय सरकार को बहुत निर्बल अवस्था में छोड़ा। सरदार पटेल की राजनैतिक कुशलता ने ही इन्हें भारतीय संघ में मिलाया। तो भी संविधान-निर्माताओं के सामने यह समस्या थी कि जल्दी-से-जल्दी इनके शासन-प्रबन्ध में जनता का यथेष्ट प्रतिनिधित्व हो और ये भाग प्रान्तों के स्तर पर आजायँ। नया संविधान देश के दोनों भागों प्रान्तों और देशी राज्यों पर लागू होगा; दोनों भागों को अब राज्य ही कहा जायगा।

इनके अतिरिक्त देश में कुछ विदेशी बस्तियाँ-फ्रांसीसी और पुर्तगाली प्रदेश—हैं। आशा है ये भी जल्दी ही भारतीय संघ के अन्तर्गत आ जायँगे। इनके सम्बन्ध में हम इस पुस्तक के पहले अध्याय में लिख चुके हैं।

साम्प्रदायिकता की समस्या—दूसरी महत्वपूर्ण समस्या सांप्रदायिकता की थी। इसी के फल-स्वरूप भारत का विभाजन हुआ था। यद्यपि देश के विभाजन से सांप्रदायिक समस्या का कुछ हल

हो गया था, फिर भी ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता थी जिससे कि इस समस्या की वृद्धि न हो। सांप्रदायिक आधार पर निर्वाचन होना ही इस समस्या का मूलभूत कारण था, जिसने हमारे सामाजिक जीवन को विषाक्त बना रखा था। इसलिए नये विधान-मंडलों में सांप्रदायिक आधार पर स्थान सुरक्षित रखने की प्रथा का अन्त कर दिया गया; केवल अछूतों और अनुसूचित जातियों के लिए संविधान लागू होने से १० वर्ष तक स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई है।

अस्पृश्य और उपेक्षित जातियाँ—अस्पृश्यता बहुत समय से भारतीय समाज का कलंक बनी हुई थी। भारत के लाखों नहीं करोड़ों आदमी अपने ही देश-बंधुओं की निगाह में अपमानित थे और रोजमर्रा की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति में पग-पग पर बाधाओं का अनुभव करने के कारण विकास के साधनों से वंचित थे। संविधान ने अस्पृश्यता का अन्त करके एक महान कार्य कर दिया।

'अस्पृश्य' माने जाने वाले लोगों के अतिरिक्त, भारत में ढाई करोड़ व्यक्ति आदिम जातियों के थे। इनकी अँगरेजी राज्य में घोर उपेक्षा हुई; यहाँ तक कि राष्ट्रीय सुधारकों को भी उनकी सेवा-सहायता करने से रोका गया। नये संविधान ने इनकी भी उन्नति और विकास का मार्ग प्रशस्त कर दिया है।

संविधान की स्वीकृति और श्रीगणेश—संविधान-सभा के अधिवेशन समय-समय पर होते रहे। आखिर संविधान की एक-एक धारा पर तथा उसके खंडों पर विशद रूप से विचार तथा आवश्यक संशोधन, परिवर्तन और परिवर्द्धन होकर वह २६ नवम्बर १९४९ को अन्तिम रूप से स्वीकृत हुआ। इसमें ३९५ धाराएँ और ८ परिशिष्ट हैं। संविधान को २६ जनवरी १९५० अमल में लाने का निश्चय किया गया। यह तारीख इसलिए निश्चित की गई कि बीस वर्ष पहले इसी तारीख को,

म० गांधी के नेतृत्व में, भारत की जनता ने अपनी स्वाधीनता प्राप्त करने का दृढ़ संकल्प किया था और सन् १९३० से वह प्रति वर्ष २६ जनवरी को ही स्वाधीनता-दिवस मनाती आ रही थी।

अस्तु, यद्यपि व्यवहार-रूप में भारत १५ अगस्त १९४७ को ही अपने भाग्य का विधाता बन गया था, कानूनी रूप में २६ जनवरी १९५० ई० से पूर्ण स्वतंत्र हुआ है। यहाँ गण-राज्य की स्थापना हुई है। इस तारीख से इंगलैंड के राजा की सर्वोपरि सत्ता समाप्त हो गयी। उसकी ओर से नियुक्त होनेवाले गवर्नर-जनरलों की इतिश्री हो गयी। डाक्टर राजेन्द्र-प्रसाद नये संविधान के अनुसार राष्ट्रपति नियुक्त हुए। उनके शब्दों में 'इतिहास में यह पहला अवसर है जब यह सारा देश, कश्मीर से कन्या-कुमारी तक और काठियावाड़ और कच्छ से कोकोनाड़ा और कामरूप तक एक संविधान के शासन-सूत्र में बंधकर बत्तीस करोड़ मनुष्यों के सुख-दुःख की जिम्मेदारी अपने हाथों में ले रहा है और उसके सब कारोबार संभालने जा रहा है; इस देश में आज से न कोई राजा रहा और न कोई प्रजा, या तो सब के सब राजा हैं, या सब प्रजा हैं।'

आठवाँ अध्याय

संविधान का स्वरूप और विशेषताएँ

भारत प्रभुत्वपूर्ण होगा, यह स्वाधीन होगा और गणतंत्र होगा। यदि भारत को पूर्ण स्वाधीन तथा प्रभुत्व-सम्पन्न होना है, तो हम वाह्य एकतंत्र को भी स्वीकार नहीं करेंगे और न हम अपने देश में ही उसकी खोज करेंगे। भारत आवश्यक रूप से गणतंत्र ही रहेगा।

—जवाहरलाल नेहरू

इस संविधान के अनुसार देश का मामूली से मामूली आदमी भी सब से ऊँची जगह पर पहुँच सकता है, और हमारे आदर का स्थान पा सकता है।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

अंगरेजों के शासन-काल में, उनके द्वारा बनाए हुए संविधानों में अनेक दोष थे; ऐसा होने का एक कारण यह भी था कि विदेशी होने के कारण वे हमारी समस्याओं को अच्छी तरह नहीं जान सकते थे और जानलेने पर भी वे उनका निरपक्ष हल करने को तैयार नहीं होते थे। वे अपने स्वार्थ के दृष्टिकोण से उनपर विचार करते थे। उनका तथा हमारा स्वार्थ कई बातों में स्पष्टतया भिन्न था, इस लिए उस समय के संविधानों का दूषित होना स्वाभाविक था।

स्वाधीन होने पर संविधान बनाने का उत्तरदायित्व हमारे ही आदमियों पर आगया। उन्होंने संसार के प्रमुख संविधानों से आवश्यक बातें लेकर उसे अच्छे से अच्छा और व्यावहारिक बनाने का प्रयत्न किया; यों

परिस्थितियाँ बदलने पर संविधानों में संशोधन या परिवर्तन करने की, अथवा विशेष दशाओं में नये संविधान बनाने की जरूरत हुआ ही करती है। अस्तु, अब हम अपने इस नये संविधान के स्वरूप का और इसकी विशेषताओं का विचार करते हैं।

संविधान का स्वरूप

संविधान का लक्ष्य—संविधान का स्वरूप जानने के लिए पहले उसका लक्ष्य जानलें, इस पर उसकी प्रस्तावना से अच्छा प्रकाश पड़ता है। पहले बताया जा चुका है कि संविधान-निर्माण के समय जो उद्देश्य-प्रस्ताव उपस्थित किया गया था, उसका ही सार-रूप यह प्रस्तावना है। इसमें कहा गया है :—

"हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए

'तथा उसके समस्त नागरिकों को, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए

'तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करनेवाली बंधुता बढ़ाने के लिए

'दृढ़ संकल्प होकर अपनी संविधान-सभा में ताः २६ नवम्बर १६४६ (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सम्वत २००६ विक्रमी) के दिन आज की इस कार्रवाई से इस संविधान को अपनाते हैं कानून बनाते हैं, और स्वयं अपने को देते हैं।'

संविधान भारत को 'संपूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित करता है। भारत सम्पूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न तो इस कारण है कि संविधान भारत के ऊपर किसी भी राष्ट्र का वैधानिक प्रभुत्व स्वीकार नहीं करता। भारत गण-राज्य इस लिए है कि इसका प्रधान वंशानुगत क्रम

से कोई सम्राट या राजा न होकर निर्वाचन द्वारा राष्ट्रपति होगा, और इसके लोकतन्त्रात्मक होने का प्रमाण यही है कि लोकतंत्र के आधार-भूत सिद्धान्तों—स्वतन्त्रता, समानता, बन्धुत्व, न्याय आदि का संविधान की प्रस्तावना में प्रमुख स्थान हैं और किसी भी प्रकार की आर्थिक अथवा सामाजिक व्यवस्था को लादने का प्रयत्न नहीं किया गया है। उपरोक्त सिद्धान्तों की प्राप्ति राज्य का उद्देश्य बतलाया गया है। लोकतन्त्र के विरोधी तत्वों—सांप्रदायिकता, असमानता छुआछूत आदि का अन्त कर दिया है। संविधान में वयस्क मताधिकार, नागरिकों के मूल अधिकारों और स्वतन्त्र न्यायपालिका को स्थान देकर लोकतन्त्रात्मक प्रणाली को सफल और चिरस्थायी बनाने का प्रयास किया गया है।

संविधान एकात्मक है या संघात्मक ?—संविधान के स्वरूप का विचार करते समय एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह सामने आता है कि इसके विचार से भारत को 'फेडरेशन' (संघात्मक राज्य) कहा जाय या 'यूनियन' (एकात्मक राज्य)। संघात्मक और एकात्मक राज्य में मुख्य भेद यह होता है कि संघात्मक राज्य में शासन तथा कानून-निर्माण सम्बन्धी सब अधिकार केन्द्र और इकाइयों में बँटे होते हैं, और केन्द्र और इकाइयाँ अपने-अपने निर्धारित क्षेत्रों में स्वतन्त्र होती हैं। यदि कभी किसी विषय में संघ-सरकार और उसकी इकाई (संघान्तरित राज्य) की सरकार में मत-भेद उपस्थित हो तो उसका निपटारा संघ-न्यायालय करता है। इसके विपरीत, एकात्मक शासन-पद्धति में सब शासन-कार्य केन्द्र से होता है; प्रान्तीय सरकारों या स्थानीय संस्थाओं को जो अधिकार दिये जाते हैं, वे केवल सुभीते की दृष्टि से; केन्द्रीय सरकार जब चाहे, उन्हें वापिस ले सकती है। इस शासनपद्धति में एक केन्द्रीय सरकार, एक केन्द्रीय विधान मंडल और एक केन्द्रीय न्यायालय की शक्ति प्रमुख होती है। प्रान्तीय या स्थानीय संस्थाएँ इनके अधीन तथा इनके नियंत्रण में काम करती हैं।

बाह्य दृष्टि से संघात्मक—यद्यपि भारतीय संविधान में फेडरेशन शब्द का उपयोग न होकर 'युनियन' का उपयोग हुआ है,* उस पर विचार करने से उसे वाह्य दृष्टि से संघात्मक ही कहना अधिक उपयुक्त होगा। बात यह है कि यहाँ संघ और राज्यों की सरकारें अलग-अलग हैं। दोनों के अधिकार अलग-अलग बंटे हुए हैं और अपने-अपने क्षेत्रों में दोनों ही स्वतंत्र हैं। दोनों के अधिकारों को तीन सूचियों के अंतर्गत स्पष्ट रूप से बांट दिया गया है। संघ और राज्यों के अधिकारों का अतिक्रमण करनेवाले कानून अवैध हैं, और संघ तथा राज्यों की अनुमति के बगैर संविधान में परिवर्तन करना सम्भव नहीं है। उच्चतम न्यायालय की स्थापना भी संघ और राज्यों के विवादों का निर्णय करने के लिये कर दी गई है।

भारत में संविधान का संघात्मक स्वरूप उपयोगी समझा जाने के कारण निम्नलिखित है।—

(१) देश की विशालता। भारत एक विशाल देश है; जनसंख्या और क्षेत्रफल की दृष्टि से इसे कभी-कभी महाद्वीप कह दिया जाता है। इतने बड़े देश का शासन-प्रबन्ध केन्द्रीय सरकार द्वारा कुशलता पूर्वक और सुचारु रूप से होना सम्भव न था।

(२) विभिन्न हितों की रक्षा। भारत में प्रादेशिक विभिन्नता पर्याप्त मात्रा में है। प्रत्येक राज्य की अलग-अलग समस्याएँ और अलग-अलग हित हैं। एकात्मक सरकार के द्वारा इतने हितों का सांमजस्य बिठाना और समस्याओं का हल निकालना सम्भव न था। स्थानीय प्रश्नों का हल राज्यों की ही सरकारें सुचारु रूप से कर सकती हैं।

---

* संविधान के सरकारी प्रकाशन में 'यूनियन' का अनुवाद संघ किया गया है।

(३) सांस्कृतिक विकास और भाषा की उन्नति। देश के विभिन्न भागों में भाषा, साहित्य, सङ्गीत तथा दूसरी कलाओं की उन्नति और सांस्कृतिक विकास के लिए जितना प्रयत्न और कार्य राज्यों की सरकार कर सकती हैं, उतना केन्द्र द्वारा नहीं हो सकता; क्योंकि बहुत सी चीजें तो ऐसी हैं, जिन्हें केन्द्र भली भाँति समझ भी न सकेगा और समझ भी जाय तो उचित व्यवस्था न कर सकेगा।

(४) लोकतंत्रात्मक दृष्टिकोण। बड़े देश के लिए संघात्मक संविधान, एकात्मक संविधान की तुलना में, अधिक लोकतंत्रात्मक होता है। भारत में राज्य-सूची के विषयों सम्बन्धी कानून बनाने के लिए लगभग एक लाख व्यक्तियों पीछे एक प्रतिनिधि राज्यों की विधान सभा में होगा और संघ सूची के विषयों का कानून बनाने के लिए तो लगभग साढ़े छः लाख जनता का एक प्रतिनिधि लोकसभा में होगा। एकात्मक शासन-पद्धति में संपूर्ण विषयों का निर्णय करने के लिए केन्द्र के ही प्रतिनिधि होते, अर्थात् समस्त विषयों का निर्णय लोक-सभा के सदस्य करते, जहाँ प्रत्येक सदस्य लगभग साढ़े छः लाख जनता का प्रतिनिधित्व करता है। इससे स्पष्ट है कि संघात्मक संविधान जनता को शासन-प्रबन्ध में भाग लेने का अधिक अवसर प्रदान करता है। इसमें विकेन्द्रीकरण की नीति अपनाने का अधिक अवसर मिलता है। भारत में ग्राम-पंचायतों को स्थानीय स्वराज्य की इकाई माना गया है।

एकात्मक राज्य के गुणों का समावेश—ऊपर कहा गया है कि भारत की शासन-पद्धति का स्वरूप संघात्मक है। परन्तु यह बात ध्यान में रखने की है कि यहां संघ की स्थापना एकात्मक राज्य की स्थापना के बाद हुई है, जब कि अन्य संघ-राज्यों में पहले कई अलग-अलग राज्य थे और उन्होंने मिल कर पीछे संघ-राज्य स्थापित किया। फिर, भारतीय संघ संविधान में एकात्मक शासनपद्धति के गुणों का भी समावेश है।

संघ और राज्यों—दोनों के लिए केवल एक संविधान। संयुक्तराज्य अमरीका आदि में राज्यों को संघ के अन्तर्गत रहते हुए अपना संविधान बनाने की स्वतंत्रता है। वे उसमें समय-समय पर सुविधानुसार परिवर्तन भी कर सकते हैं। इसके विपरीत, भारत में समस्त राज्यों का संविधान संविधान-सभा के द्वारा ही बनाया गया है। राज्यों के विधान-मंडल को उसमें संशोधन अथवा परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है।

संघ राज्य की एकरूपता। संसार के संघीय शासनपद्धति वाले देशों की आंतरिक इकाइयों अर्थात् राज्यों अथवा प्रान्तों में कानून, दण्ड-विधि, नागरिक अधिकारों, नौकरियों और आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी विभिन्नताएँ हैं, परन्तु भारतीय संविधान में इस भेद को निम्नलिखित व्यवस्थाओं द्वारा दूर कर दिया गया है :—

(१) समस्त संघ-राज्य में केवल एक नागरिकता,

(२) समस्त संघ-राज्य में, विधि (कानून), दण्ड-विधान तथा अर्थ सम्बन्धी मामलों में एकरूपता,

(३) सम्पूर्ण संघ-राज्य में एक प्रकार की ही न्याय-व्यवस्था की स्थापना,

(४) समस्त भारत के लिए अखिल भारतवर्षीय आधार पर राज्य की नौकरियाँ,

(५) सम्पूर्ण भारत के लिए एक (हिन्दी) ही राजभाषा।

'एक नागरिकता' को कुछ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। इसका अर्थ यह है कि भारतीय संघ की नागरिकता अलग और उसकी विविध इकाइयों अर्थात् राज्यों की नागरिकता अलग न होकर, यहाँ सारे राष्ट्र की नागरिकता एक ही है; कोई राज्य अपने नागरिकों को कोई विशेष राजनैतिक, आर्थिक या व्यापारिक अधिकार प्रदान नहीं कर सकता। यह स्पष्ट ही है कि इकहरी नागरिकता देश को शक्ति और एकता प्रदान करनेवाली होती है।

कानूनीपन और कठोरता की कमी। संघात्मक संविधान में, संघ सरकार और राज्यों की सरकारों में अधिकारों का विभाजन होता है। इस विभाजन सम्बन्धी विवादों का निर्णय न्यायपालिका द्वारा किया जाता है (विधान-मण्डलों द्वारा नहीं)। इससे संविधान में कानूनीपन बहुत हो जाता है। भारतीय संविधान में इसे कम करने के लिए संघ और राज्यों के कानून बनाए जाने के विषयों की दो सूचियों (संघ-सूची और राज्य-सूची) के अतिरिक्त एक समवर्ती सूची और बनायी गयी है, जिसके विषयों पर संसद भी कानून बना सकेगी, और राज्यों के विधान-मंडल भी। यह सूची काफी बड़ी है, इसमें ४७ विषय हैं।

प्रायः संघ-संविधान बहुत कठोर होता है, उसमें परिवर्तन साधारण रीति से नहीं हो पाता। भारतीय संविधान में संशोधन करने की पद्धति सरल रखी गयी है। इस पर विशेष प्रकाश आगे डाला जायगा।

सांसद (पार्लिमेंटरी) पद्धति—भारतीय संविधान के स्वरूप में, उसके संघात्मक होने के अतिरिक्त, दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यहां संघ में तथा उसके राज्यों में सांसद पद्धति की सरकारें स्थापित की गयीं हैं। इस पद्धति के लक्षण ये होते हैं:—

(क) शासन सम्बन्धी सब कार्य प्रधान शासक (बादशाह या राष्ट्रपति आदि) के नाम से किया जाता है। वह वैधानिक शासक होता है; वास्तव में राज्य की कार्यकारिणी शक्ति उसमें निहित नहीं होती, उसे सब कार्य अपनी मन्त्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार करना होता है।

(ख) मन्त्री नाममात्र को प्रधान शासक के द्वारा चुने जाते हैं, परन्तु वे ऐसे ही व्यक्ति होते हैं, जिनका विधान-मंडल में बहुमत या सब से अधिक समर्थन होता है। मंत्रिपरिषद् अपने कार्य के लिए विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी होती है। मन्त्री विधान-सभा के सदस्य होते हैं, और उसी समय तक अपने पद पर रह सकते हैं, जब तक उन्हें विधान-सभा का विश्वास प्राप्त हो। यदि किसी समय मंत्रिपरिषद् को यह अनुभव

हो कि विधान-सभा का उस पर विश्वास नहीं है तो उसे त्याग-पत्र दे देना होता है।

(ग) मंत्रि-परिषद् का विधान-सभा के प्रति उत्तरदायित्व सामूहिक होता है। यदि किसी मंत्री की किसी विषय पर विधान-सभा में हार हो जावे तो वह समस्त मन्त्रि-परिषद् की हार होगी और उस दशा में सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद को त्यागपत्र देना होगा। किसी मन्त्री द्वारा उपस्थित किया हुआ प्रस्ताव समस्त मन्त्रिपरिषद् का ही प्रस्ताव समझा जाता, चाहे उस पर मन्त्रियों में आपस में विचार-विनिमय हुआ हो या न हुआ हो। सामूहिक उत्तरदायित्व के अन्तर्गत यह बात भी है कि यदि मन्त्रिपरिषद् ने अपना कोई निश्चय कर लिया है तो समस्त मन्त्रियों को उसका समर्थन करना चाहिए। यदि कोई मन्त्री इस निर्णय से असंतुष्ट है तो उसे त्याग-पत्र दे देना चाहिए।

(घ) प्रधान-मन्त्री मन्त्रिपरिषद का नेता होता है। नीति सम्बन्धी मामलों में उसका निर्णय सर्वमान्य होता है। मन्त्रिपरिषद् की ओर से उसे कोई भी मत व्यक्त करने की स्वतन्त्रता होती है, और वह मत सम्पूर्ण मन्त्रिपरिषद् का ही समझा जाता है।

सांसद सरकार खासकर इन सिद्धान्तों के आधार पर कार्य करती है :—बहुमत दल का शासन सब को मान्य होता है। अल्पमत वालों को बहुमत दल के निर्णय मान्य होते हैं; हाँ, उन्हें अधिकार है कि वे वैधानिक उपायों से बहुमत को अपने मत का समर्थक बनावें और अगले निर्वाचन में विजयी होकर पदारूढ़ हों अर्थात् अपनी सरकार का संगठन करें। नीति-विभिन्नता के आधार पर राज्य में अलग-अलग दलों का निर्माण होता है। शासन-सत्ता सदा किसी एक दल के हाथ न रह कर समय-समय पर हस्तान्तरित होती रहती है; हर समय वह उस दल में निहित रहती है, जिसका विधान-सभा सम्बन्धी अन्तिम निर्वाचन में बहुमत रहा हो।

[सांसद पद्धति के विरूद्ध, अध्यक्षात्मक पद्धति होती है। इसमें कार्यपलिका पूर्णरूप से स्वतंत्र होती है; वह अपने कार्यों के लिए विधान-सभा के प्रति उत्तरदायी नहीं होती। उसके अनुसार राज्य का प्रधान नाम-मात्र का शासक नहीं होता, उसके हाथ में वास्तविक शासन-शक्ति होती है।]

भारत में सांसद पद्धति की उपयुक्तता—भारतीय संविधान-निर्माताओं को कई कारणों से सांसद पद्धति अपनायी। पहले तो यह कि इसी पद्धति से देश काफी परिचित है, उसे अन्य प्रकार की शासन-पद्धतियों का कोई विशेष अनुभव नहीं है। दूसरे, सांसद सरकार ही विधान-मंडल और कार्यपालिका में शान्ति की स्थापना करती है। तीसरे, इस पद्धति में उत्तरदायित्व अधिक है। इस उत्तरदायित्व का पालन सामयिक तथा दैनिक दोनों प्रकार से होता है। दैनिक उत्तरदायित्व का पालन संसद के सदस्यों द्वारा अविश्वास के प्रस्ताव, काम-रोको प्रस्ताव, प्रश्नों, भाषणों और वादविवाद के रूप में होता है। और, सामयिक उत्तरदायित्व का पालन प्रति पाँचवें वर्ष अथवा इससे पहले होता है।

(२)
संविधान की विशेषताएँ

भारतीय संविधान-निर्माताओं ने अन्य राज्यों के संविधानों से कई आवश्यक बातें ली हैं। इसलिए यहाँ के संविधान में अन्य किसी संविधान की अपेक्षा अधिक विशेषताएँ हैं। यहाँ उनमें से मुख्य-मुख्य पर प्रकाश डाला जाता है।

१—संविधान की विशालता—भारत का संविधान संसार के सब लिखित संविधानों से बड़ा है। इसकी विशालता का अनुमान तो इसी से लग सकता है कि जब कि संयुक्तराज्य अमरीका के संविधान में ७, केनाडा के संविधान में १४७, आस्ट्रेलिया के संविधान में १२८, और

दक्षिणी अफ्रीका के संविधान में १५३ अनुच्छेद (धाराएँ) हैं, भारतीय संविधान में ३९५ अनुच्छेद और ८ अनुसूची या परिशिष्ट हैं। इसके विशाल होने के कुछ कारण निम्नलिखित हैं—

क—भारतीय संविधान में संघ के शासन-यंत्र के साथ ही साथ राज्यों (इकाइयों) के शासन-यंत्र का भी समावेश है, और ये राज्य, जैसा कि आगे बताया जायगा, एक ही तरह के नहीं हैं।

ख—कबायली और अनुसूचित दोनों प्रकार के निवासियों तथा पिछड़े लोगों के हित की व्यवस्था की गई है।

ग—संविधान में नीति-निर्देशक तत्व तथा मूल अधिकारों का विवरण दिया गया है।

घ—कुछ धाराएँ अन्तर्कालीन व्यवस्था के लिए रखी गयी हैं।

च—संविधान द्वारा बनाई हुई विविध संस्थाओं की कार्य-प्रणाली के नियमों का भी संविधान में समावेश कर दिया गया है; यह इसलिए कि जल्दी ही कुछ कठिनाइयों का सामना न करना पड़े।

तथापि यह कहा जा सकता है कि भारतीय संविधान आवश्यकता से अधिक बड़ा है, और उसमें कुछ ऐसी बातों का भी समावेश है, जिनके सम्बन्ध में संसद साधारण कानून बना सकती थी। फिर, जटिलता के कारण यह संविधान जन-साधारण की समझ के बाहर है।

२—शक्तिशाली केन्द्र—भारतीय संविधान की यह एक बड़ी विशेषता है कि संघात्मक संविधान होते हुए भी शक्तिशाली केन्द्र की स्थापना की गयी है। कुछ लोगों को इससे असन्तोष हो सकता है। पर स्वाधीनता की रक्षा के लिए ऐसा करना आवश्यक था, और एकता के बिना स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती। एकता बनाए रखने के लिए यह आवश्यक था कि संघ-सरकार का राज्यों पर नियंत्रण रहे और संसद को राज्यों के विधान-मंडलों की अपेक्षा अधिक अधिकार हों। संविधान में जहाँ यह व्यवस्था है कि संसद राष्ट्रपति पर अभियोग लगा

कर और उसे प्रमाणित कर हटा सकती है, किसी राज्य की विधान-सभा गवर्नर को नहीं हटा सकती। गवर्नर केन्द्र का आदमी होगा, उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा की जायगी, नियुक्ति (या बरखास्तगी) में लोक-प्रतिनिधियों का कुछ हाथ न होगा। फिर भी गवर्नर को बहुत अधिकार दिये गये हैं। इसके अतिरिक्त, केन्द्र को शक्तिशाली बनाने के लिए तीन अन्य उपाय काम में लाए गए हैं। प्रथम तो संकट काल में संघ सरकार को राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने का अधिकार दिया है। दूसरे, अवशिष्ट अधिकार सम्बन्धी विधि बनाने का अधिकार केन्द्रीय विधान मंडल यानी संसद को है। तीसरे, समवर्ती सूची के अन्तर्गत दिए हुए विषयों में प्राथमिकता और प्रधानता संघ सरकार द्वारा निर्मित विधियों को दी गई है। उपरोक्त तीन उपायों द्वारा केन्द्र को लगभग उतनी ही शक्ति प्रदान की गई है, जितनी केन्द्र को एकात्मक पद्धति की शासन-प्रणाली में होती।

यही नहीं, संविधान में संघ को अविभाज्य बना दिया है; किसी भी राज्य को संघ से पृथक् हो जाने अथवा अपना संविधान स्वयं बना लेने का अधिकार नहीं है।

३—संकट काल में संघ-शासन का एकात्मक रूप— अन्य देशों के संघीय संविधान सदैव संघीय ही रहते हैं, कभी एकात्मक नहीं होते, परन्तु भारतीय संविधान में यह बात नहीं है। यह संविधान आवश्यकतानुसार संघीय तथा एकात्मक हो सकता है। यद्यपि भारतीय संविधान संघ-शासनपद्धति पर आधारित है, इसकी रचना इस प्रकार की गई है कि सङ्कट-कालीन स्थिति में सारी संघ-शासन-प्रणाली को एकात्मक किया जा सकता है। उस स्थिति में राष्ट्रपति असाधारण-अधिकार-सम्पन्न होता है और राज्यों की आन्तरिक स्वतंत्रता समाप्त कर सकता है। वह विधि (कानून)-निर्माण तथा शासन सम्बन्धी सारे कार्य

४–संशोधन की सरलता—संविधान में संशोधन संसद ही कर सकती है। संशोधन की व्यवस्था सरल है, और वह यह है कि संशोधन के लिए विधेयक संसद के किसी भी सदन में उपस्थित किया जा सकेगा। यदि यह विधेयक दोनों सदनों में कुल सदस्य-संख्या के बहुमत से और उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई बहुमत से पास हो जाय तो संविधान में संशोधन पास समझा जायगा। इस स्थल पर यह उल्लेखनीय है कि यदि क और ख वर्ग के स्वायत्त राज्यों से सम्बन्धित निम्नलिखित विषयों में कोई संशोधन करना हो तो ऐसे राज्यों के आधे से अधिक विधान-मंडलों की स्वीकृति प्राप्त होने पर ही वह संशोधन राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उपस्थित किया जा सकेगा :—

(१) राष्ट्रपति का निर्वाचन,
(२) राष्ट्रपति के निर्वाचन की रीति,
(३) संघ की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार,
(४) क वर्ग के राज्यों की कार्यपालिका शक्ति का विस्तार,
(५) ग वर्ग के राज्यों में उच्च न्यायालय की स्थापना,
(६) संघ की न्यायपालिका,
(७) राज्यों के उच्च न्यायालय,
(८) संघ और राज्यों के विधायी सम्बन्ध,
(९) संघ की, राज्य की, और समवर्ती सूचि,
(१०) संसद में राज्यों का प्रतिनिधित्व,
(११) संविधान में संशोधन-प्रक्रिया।

संविधान में संशोधन की प्रक्रिया संघीय शासनपद्धति के सिद्धान्तों के अनुसार है।

५—'धर्म-निर्पेक्षता'—भारत में 'धर्म-निर्पेक्ष' राज्य की स्थापना की गयी है। 'धर्म-निर्पेक्ष' शब्द अँगरेजी के 'सेक्यूलर' शब्द की जगह काम में लाया जाता है, जिसका अर्थ वास्तव में 'धर्म-रहित' नहीं है, वरन् 'मत-रहित' या 'साम्प्रदायिक विचार बंधनमुक्त' है। अस्तु, धर्म-निर्पेक्ष राज्य कोई नास्तिक या ईश्वर-विहीन राज्य नहीं है; वह ऐसा राज्य नहीं है, जिसमें धार्मिक प्रवृत्ति के लोगों को वहिष्कृत, अछूत या प्रतिगामी समझा जाय। यह सोचना भी ठीक नहीं है कि धर्म-निर्पेक्ष राज्य में धर्म का आदर नहीं होता। ऐसे राज्य का मुख्य लक्षण ही यह है कि उसमें सब धर्मों का आदर होता है। हाँ, वह राज्य स्वयं किसी धर्म विशेष को प्रधानता अथवा सहायता प्रदान नहीं करेगा। उसकी दृष्टि में राज्य के समस्त नागरिक, भले ही वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों, बराबर होंगे। धर्म आदि के आधार पर किसी व्यक्ति अथवा संस्था को कोई सहायता प्रदान नहीं की जावेगी। धर्म को राज्य व्यक्तिगत विश्वास की वस्तु मानता है और वह किसी के धार्मिक कृत्यों में बाधा नहीं डालेगा। वस्तुतः राज्य को धर्म-निर्पेक्ष घोषित करने का कारण भारत में अनेक मत-मतान्तरों का होना है। यदि एक धर्म को राज्य कुछ सहायता प्रदान करता है तो दूसरे धर्म भी सहायता की मांग कर सकते हैं; और किस धर्म को कितनी सहायता प्रदान की जावे, यह विवाद-ग्रस्त प्रश्न है। इन सब झगड़ों का अन्त करने के लिए राज्य को धर्म-निर्पेक्ष घोषित किया गया है।

स्मरण रहे कि धर्म-निर्पेक्ष राज्य में अल्पसंख्यकों के लिए राज्य की ओर से कोई असुविधा नहीं होती, और उनसे समानता का व्यवहार होता है। पर इसका यह अर्थ भी नहीं कि उनके हितों के वास्ते बहुसंख्यकों के हितों का बलिदान किया जाय। कुछ लोग भ्रमवश ऐसा समझते हैं कि यदि हिन्दू वास्तव में धर्म-निर्पेक्ष राज्य में विश्वास करते हैं तो उन्हें अपनी धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक प्रथाओं और परम्पराओं का स्वतन्त्र रूप से प्रयोग नहीं करना चाहिए; हाँ अल्पसंख्यकों को ऐसा

करने की छूट अवश्य होनी चाहिए। यह भी कहा जाता है कि सामाजिक और सांस्कृतिक मामलों में जो दृष्टिकोण अल्पसंख्यकों के हित या दृष्टिकोण से मेल नहीं खाते, वे धर्म-निर्पेक्ष नहीं होते। यह धारणा बिलकुल गलत है। धर्म-निर्पेक्ष राज्य में यदि अल्पसंख्यकों को राज्य की ओर से कोई असुविधा नहीं होती तो बहुसंख्यकों को क्यों होने लगी !

६—नागरिकों के मूल अधिकार—आधुनिक संविधानों में नागरिकों के मूल अधिकारों का वर्णन संविधान का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। संसार के प्रायः सभी लिखित संविधानों में इसका वर्णन है। भारतीय संविधान में जो मूलाधिकार हैं, उनका आधार श्रेष्ठतर लोकतन्त्र की भावना ही है। इनके बारे में खुलासा एक अलग अध्याय में लिखा जायगा।

७—राज्य के नीति-निर्देशक तत्व—संविधान में राज्य की नीति का आधार क्या हो, इस पर प्रकाश डाला गया है। नीति-निर्देशक तत्वों के पीछे कोई वैधानिक सत्ता नहीं है, इनको किसी भी न्यायालय द्वारा पालन नहीं कराया जा सकता। तथापि इनका अपना महत्व है। इनका विवेचन आगे किया गया है।

८—राष्ट्र-मंडल की सदस्यता—भारत सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न और लोकतंत्रात्मक गण राज्य होते हुए भी राष्ट्रमंडल का सदस्य है, यह बात बहुतों को अजीब मालूम होती है। स्मरण रहे कि अनेक राजनीतिज्ञों ने प्रथम योरपीय महायुद्ध (सन् १६१४—१८) के समय यह अनुभव किया कि 'साम्राज्य' शब्द से दूसरों का शोषण करने और उन्हें पराधीन बनाने की भावना व्यक्त होती है। इसलिए ब्रिटिश साम्राज्य का उल्लेख समानता-सूचक 'ब्रिटिश राष्ट्रमंडल' नाम से किया जाने लगा। सन् १६४७ में ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के कई एशियाई भागों ने स्वतंत्रता प्राप्त करली। बर्मा तो स्वतन्त्र होने के साथ ही ब्रिटिश राष्ट्रमंडल से अलग हो गया। इधर भारत और

पाकिस्तान स्वतन्त्र राज्य हुए, और सीलोन (लंका) भी। इन स्वतन्त्र राज्यों को ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में बना रखने के लिए अक्तूबर १६४८ में यह निश्चय किया गया कि ब्रिटिश राष्ट्रमंडल के नाम में से 'ब्रिटिश' शब्द निकाल दिया जाय और भविष्य में इसे केवल 'राष्ट्रमंडल' कहा जाया करे। भारत अपनी संविधान-सभा के निश्चयानुसार स्वतन्त्र लोकतन्त्र राज्य है और अपने इस रूप को रखते हुए राष्ट्रमण्डल का सदस्य है। उसकी ब्रिटिश मुकुट (ताज) या बादशाह के प्रति राजभक्ति नहीं है। इस प्रकार भारत पूर्ण स्वाधीन लोकतन्त्र गणराज्य होते हुए भी राष्ट्र-मण्डल का सदस्य बना है।

स्वतंत्र न्यायपालिका आदि—नागरिकों के अधिकारों की रक्षा और संविधान के संरक्षण के लिए स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायालय की आवश्यकता प्रत्येक राज्य में होती है। भारतीय संविधान के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र और निष्पक्ष न्यायपालिका की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया है। इसके लिए निम्नलिखित व्यवस्था की गई है —

१—राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों की नियुक्ति न्यायपालिका के अधिकारियों के परामर्श से करेगा। प्रत्येक न्यायाधीश की पदावधि संविधान द्वारा निश्चित है, इससे पूर्व वह संविधान में दी गई व्यवस्था के अनुसार दुराचरण सिद्ध होने पर, ह[illegible] हटाया जा सकेगा।

२—न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निश्चित कर दिया गया है उनके वेतन, पेन्शन भत्तों तथा विशेष सुविधाओं को कार्यपालिका या विधान-मंडल द्वारा कम नहीं किया जा सकता।

३—उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय को अपने कर्मचारियों की भर्ती तथा तत्सम्बन्धी नियमों का निर्माण करने का अधिकार है।

४—न्यायाधीशों को किसी न्यायालय में वकालत करने का अधिकार नहीं है।

५—उच्चतम न्यायालय अथवा उच्च न्यायालय के किसी भी न्यायाधीश के उन कार्यों के विषय में जो उनके कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में होंगे, संसद अथवा राज्यों के विधान-मन्डल में विचार नहीं हो सकेगा।

इस भांति हमारे संविधान ने जहाँ तक हो सका है, न्यायपालिका को प्रभाव से मुक्त रखने की चेष्टा की है। अधीन न्यायालयों को भी अनुचित प्रभाव से मुक्त रखने का प्रयत्न किया गया है।

संविधान के अन्तर्गत न्यायापालिका के अतिरिक्त कुछ अन्य स्वतंत्र संस्थाएँ भी रखी है। इनमें प्रधान तीन हैं :—

१—भारत का नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक।

२—निर्वाचन-कमीशन

३—लोकसेवा-कमीशन

नियन्त्रक-महालेखा परीक्षक का कार्य संघ-सरकार और राज्यों की सरकार की आय-व्यय जाँच करना होगा। निर्वाचन-कमीशन का कार्य निष्पक्ष निर्वाचन संपन्न करना होगा और लोक-सेवा कमीशन का कार्य देश के लिए श्रेष्ट कर्मचारियों का चुनाव करना होगा। संविधान द्वारा इन तीनों संस्थाओं के स्वतन्त्र और निष्पक्ष रहने की पूर्ण व्यवस्था की गई है।

सघ-शासन के स्वरूप का नक्शा—भारतीय शासन का वर्तमान स्वरूप नक्शे में इस प्रकार दर्शाया जा सकता है (अगला पृष्ठ देखिए) :—

नये संविधान के अनुसार शासन-पद्धति (केन्द्रीय)
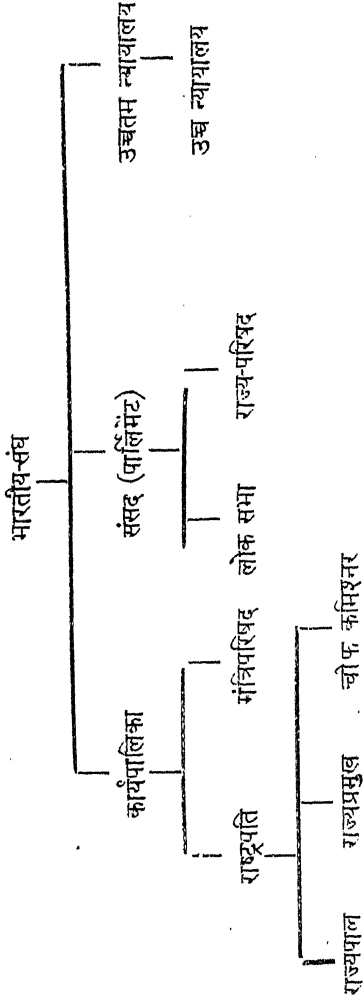
[सङ्घ के राज्यों का शासन-तन्त्र आगे अलग नक्शे में दिखाया जायगा ।]

नवाँ अध्याय

भारतीय नागरिकता

किसी स्वतन्त्र राष्ट्र का नागरिक होना गौरव की बात है। नागरिकता स्वयं एक अधिकार है, जिसपर नागरिक के दूसरे अधिकार निर्भर होते हैं।

—राममूर्ति एम० ए०

अगले अध्याय में हम इस बात का विचार करेंगे कि संविधान द्वारा भारतीय नागरिकों को क्या-क्या मूल अधिकार प्राप्त हैं। पर उन अधिकारों का आधार भारतीय नागरिकता है। इसलिए पहले यह जान लेना चाहिए कि भारतीय नागरिक कौन-कौन व्यक्ति हैं या हो सकते हैं; तथा कौन-कौन व्यक्ति नहीं हैं, अथवा नहीं हो सकते।

भारतीय नागरिक कौन हैं?—साधारणतया यह प्रश्न अनावश्यक या आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकता है कि भारतीय नागरिक कौन हैं। जो लोग किसी देश में रहते आए हैं, वे वहाँ से नागरिक माने जाते हैं। तथापि देश में कुछ आदमी भिन्न-भिन्न समय से बाहर के आए हुए होते हैं, तथा देश के कुछ आदमी विदेशों में गए हुए होते हैं। राज्य में इन लोगों की स्थिति निर्धारित करने तथा इनकी राज्य के निवासियों से न्यूनाधिक भिन्नता दर्शाने के लिए कुछ नियमों का होना आवश्यक है। भारतीय संविधान में इस विषय पर प्रकाश नहीं डाला गया कि जो व्यक्ति भारतीय नागरिक नहीं है, वह यहां की नागरिकता कैसे प्राप्त कर सकता है, अथवा किन दशाओं में भारतीय नागरिक अपनी नागरिकता से वंचित किया जा सकता है। इन विषयों के आवश्यक कानून बनाने का अधिकार संसद या पार्लिमेंट को दे दिया गया है।

संविधान में केवल यह बताया गया है कि भारतीय नागरिकों के तीन वर्ग होंगे :—

१—भारत के निवासी संविधान लागू होने के दिन (२६ जनवरी १६५०) से भारत में निवास करनेवाले व्यक्ति और (क) जो बालक भारत में जन्म लेगा, या (ख) जिसके माता या पिता भारतीय भूमि में पैदा हुए होंगे, या (ग) जो संविधान लागू होने के पाँच वर्ष पहले से भारत में रह रहा होगा और जिसने किसी विदेशी राष्ट्र की नागरिकता न अपनाली होगी—वे सब लोग भारत के नागरिक माने जायेंगे।

इस प्रकार भारतीय नागरिकता का आधार त्रिमुखी अर्थात् जन्म वंश तथा निवास है। [संयुक्तराज्य अमरीका में नागरिकता का आधार केवल जन्म है। किन्तु भारत में, जन्म अतिरिक्त नागरिक का स्थायी निवास भी भारत में होना चाहिए।]

२—नागरिकों का दूसरा वर्ग उन लोगों का है, जो पाकिस्तान से भारत में आए हैं। पाकिस्तान से आनेवालों को दो श्रेणियों में बाँटा गया है :—(क) वे जो १६ जुलाई १६४८ से पूर्व भारत में आये। (ख) वे जो १६ जुलाई १६४८ के पश्चात् भारत में आए।

जो लोग १६ जुलाई १६४८ से पूर्व भारत में आए वे लोग भारत के नागरिक हैं, बशर्ते कि—(अ) उनका या उनके माता या पिता अथवा उनके पितामह या पितामही का जन्म अविभाजित भारत में हुआ हो, (जैसा सन् १६३५ के शासन-विधान में दिया है), और (आ) आवास की तिथि से साधारणतः वे भारतीय प्रदेश में रह रहे हों।

जो लोग १६ जुलाई १६४८ के पश्चात् भारत में आये हैं, वे लोग भारत के नागरिक हैं, बशर्ते कि—(क) उनका या उनके माता या पिता अथवा उनके पितामह या मातामह का जन्म अविभाजित भारत में

लिए विधि बनाने की पूर्ण शक्ति प्रदान की गई है। ऊपर बताई हुई सारी व्यवस्थाएँ तथा शर्तें संसद की इस शक्ति को तनिक भी मर्यादित नहीं करतीं।

नागरिकता की व्याख्या करते समय भारत के विभाजन के फल-स्वरूप जो जनसंख्या की अदला-बदली हुई, उनका पर्याप्त ध्यान रखा गया है। इससे इस प्रकार की व्यवस्था की गई है कि जिससे पाकिस्तान से जो शरणार्थी यहाँ आए हैं और भारत में ही बसना चाहते हैं, उन्हें भारतीय नागरिकता प्राप्त हो जाय। जो मुसलमान यहाँ से एक बार पाकिस्तान जाकर फिर लौटे हैं, उन्हें भी भारतीय नागरिकता प्रदान करने से वंचित नहीं किया गया है।

नागरिकता सम्बन्धी विविध दृष्टिकोण—नागरिकता के सम्बन्ध में विविध विचारकों के अलग-अलग दृष्टिकोण होते हैं। संविधान सभा में नागरिकता सम्बन्धी वाद विवाद का मुख्य विषय भारत-विभाजन के बाद पाकिस्तान से आने वाले शरणार्थियों का तथा समुद्र-पार रहनेवाले बहुत से भारतीयों का प्रश्न था। पं० ठाकुरदास भार्गव ने भारतीय नागरिकता सम्बन्धी इन धाराओं की कड़ी आलोचना की थी। उन्होंने शरणार्थियों का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि "मैं चाहता हूँ कि किसी भी व्यक्ति को, जो शरणार्थी के रूप में यहाँ आया है, भारतीय नागरिकता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए। इसके विपरीत जो अपनी इच्छा से यह नारा लगाते हुए भारत छोड़कर पाकिस्तान गए कि 'हंसकर लिया है पाकिस्तान—लड़कर लेंगे हिन्दुस्तान' उनको इस देश के नागरिक बनने की अनुमति नहीं मिलनी चाहिए।"

डा० पंजाबराव देशमुख का मत था कि संविधान भारत की नागरिकता को अत्यन्त सस्ती कर देगा। भारतीय नागरिक होने के लिए एक शर्त यह है कि नागरिक की जन्मभूमि भारत होनी चाहिए। इसका अर्थ यह है कि यदि एक पति और पत्नी अपनी यात्रा के सिलसिले में भारत

से गुजरते समय बम्बई रुकते हैं और रुकने के कुछ ही घन्टों के बाद स्त्री एक बच्चे को जन्म देती है, तो वह बालक न केवल अपने माता-पिता की नागरिकता का उत्तराधिकारी होगा, वरन् वह भारत का भी नागरिक होगा। एक अन्य धारा के अनुसार भारत में पाँच वर्ष तक निवास करनेवाला व्यक्ति भारतीय नागरिक हो सकता है। किन्तु इसके विपरीत, अमरीका में २०, २५ वर्ष तक रहने पर भी भारतीयों को नागरिकता नहीं मिल पाई है। दक्षिण अफ्रीका, मलाया, बर्मा, तथा अन्य देशों में भारतीयों की स्थिति के बारे में सबको ज्ञान है। संसार में कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ इतनी आसानी से नागरिकता प्राप्त की जा सकती है। श्री देशमुख का मत था कि नागरिकता उसी को प्रदान की जानी चाहिए जो भारत का निवासी हो, जो भारतीय माता-पिता की सन्तान हो अथवा जो नागरिकता सम्बन्धी विधि के अंतर्गत अंगीकृत किया गया हो, तथा प्रत्येक हिन्दू या सिक्ख भारत का नागरिक हो, बशर्तें कि उसने किसी अन्य देश की नागरिकता न स्वीकार करली हो। यह मत स्वीकार नहीं हुआ।

इकहरी नागरिकता—स्मरण रहे कि भारतीय संघ में इकहरी नागरिकता की व्यवस्था है; अर्थात् यहाँ संघ के विविध राज्यों द्वारा नागरिकों को कुछ अलग-अलग विशेषाधिकार नहीं हैं। संयुक्तराज्य अमरीका आदि में प्रत्येक राज्य का व्यक्ति अपने राज्य का नागरिक अलग होता है, और संघ का अलग। वहाँ अपने राज्य की नागरिकता के आधार पर उसे उस राज्य में कुछ राजनैतिक, आर्थिक, व्यापारिक आदि विषयों में प्राथमिकता तथा प्रधानता मिलती है। भारत में यह बात नहीं है। उदाहरण के लिए यहाँ बम्बई राज्य के निवासियों को उस राज्य में उतने ही अधिकार होंगे, जितने वहाँ रहने वाले मद्रासियों या बिहारियों आदि को। इस प्रकार हमारा नागरिकता सम्बन्धी कानून चौंतीस करोड़ भारतीयों को एक सूत्र में गठित होने में सहायता प्रदान करता है।

दसवाँ अध्याय

मूल अधिकार

मानव अधिकारों की जितनी विशद घोषणा भारतीय संविधान के अन्तर्गत की गयी है, उतनी अब तक के किसी संविधान में नहीं की गयी।......मूल अधिकारों का पूर्ण नियमन करके, इस भरोसे पर रहने के बजाय कि पुलिस-अधिकार के सिद्धान्त की विवेचना करके भारत का उच्चतम न्यायालय राज्य को संकट से बचाएगा, संविधान-निर्माताओं ने राज्य को ही इन मूल अधिकारों को सीमित रख सकने की अनुमति दी है।

—एस० एन० मुकर्जी

पिछले अध्याय में यह बताया गया कि भारतीय नागरिक कौन होते हैं। किसी स्वतंत्र राष्ट्र का नागरिक होना स्वयं एक बहुत बड़ी बात है। नागरिकता के आधार पर उसे विविध अधिकार प्राप्त होते हैं, जिनसे वह अपना उत्तरोत्तर विकास करने के साथ, अपने आप को राज्य या समाज के लिए अधिकाधिक उपयोगी बना सकता है। इस अध्याय में हम नागरिकों के मूल अधिकारों का विचार करेंगे। पहले यह जानना आवश्यक है कि 'मूल अधिकार' का अर्थ क्या है।

मूल अधिकार किसे कहते हैं?—प्रजातंत्र राज्य में सारी शक्ति जनता के हाथ में निहित होती है, अतः प्रत्येक नागरिक को बड़े-बड़े अधिकार प्राप्त होते हैं। वह ग्राम-पंचायत, जिला-बोर्ड, म्युनिसपल बोर्ड, अपने राज्य (प्रान्त) की विधान-सभा के तथा संसद या पार्लिमेंटके चुनाव में भाग ले सकता है और जिसे चाहे, अपना प्रतिनिधि बनाने के लिए,

मत दे सकता है । वह स्वयं उक्त संस्थाओं के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता है, पंचायत के पंच सरपंच से लेकर विधान-सभा या संसद का सदस्य और मंत्री तक हो सकता है । इसी तरह वह बड़े-बड़े वेतन-भोगी पदों का अधिकारी हो सकता है । हाँ, इन सबके लिए निर्धारित योग्यता अपेक्षित होती है । आवश्यक योग्यता होने पर ही कोई नागरिक प्रभाव और प्रभुता के पद प्राप्त कर सकता है । जिस नागरिक में निर्धारित योग्यता नहीं है, उसे ऐसे पदों पर पहुँचने का अधिकार नहीं होता । किन्तु कुछ अधिकार ऐसे होते हैं, जिनके उपयोग के लिए कोई खास योग्यता आवश्यक नहीं होती; राज्य के सभी नागरिको को वे अधिकार सुलभ होते हैं । राज्य की ओर से यह गारंटी दी जाती है कि प्रत्येक नागरिक उन अधिकारों से लाभ उठा सकेगा । ऐसे सामान्य अधिकार संविधान की भाषा में मूल अधिकार कहलाते हैं । अनेक प्रजातंत्रवादी राज्यों के संविधानों में मूल अधिकारों की घोषणा कर दी गई है । भारत के नए संविधान में भी मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया है; उनके ही सम्बन्ध में यहाँ विचार किया जाता है ।

भारतीय संविधान में मूल अधिकार—भारतीय संविधान-निर्माताओं ने यह प्रयत्न किया है कि मूल अधिकारों द्वारा जनता को लोकतंत्र के यथेष्ट लाभ पहुँचा जायें; जनता को वे सारी स्वतंत्रताएँ एवं सुविधाएँ प्रदान की जावें, जो उन्हें उच्च और नैतिक जीवन की ओर प्रवृत करें । अन्य देशों में यदि मूल अधिकारों का अपहरण किसी विधि द्वारा होता है तो उच्चतम न्यायलय को उसे अवैध करार देना होता है परन्तु भारतीय संविधान में यह व्यवस्था है कि संसद या किसी राज्य के विधान-मंडल द्वारा निर्मित विधि मूल अधिकारों के विपरीत हो तो वह स्वयं ही अवैध होगी ।

संविधान में निम्नलिखित मूल अधिकार दिए गए हैं—

(१) समानता अधिकार ।

(२) स्वतंत्रता का अभिकार ।

(३) शोषण के विरुद्ध अधिकार।
(४) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार।
(५) संस्कृति और शिक्षा सम्बन्धी अधिकार।
(६) संपत्ति का अधिकार।
(७) संविधानिक उपचारों का अधिकार।

अब हम प्रत्येक मूल अधिकार पर पृथक्-पृथक् विचार करते हैं।

समानता का अधिकार—राज्य की ओर से धर्म, जाति, वर्ण, लिङ्ग के आधार पर नागरिकों में कोई भेदभाव नहीं किया जायगा। सबको समान समझा जायगा। धर्म, जाति या वर्ण-विशेष का अनुयायी होने के कारण किसी नागरिक पर कोई अयोग्यता या बंधन नहीं लगाया जायगा। सार्वजनिक उपयोग के लिए जो होटल या जलपान-गृह या मनबहलाव के स्थान हैं, वहाँ वह बे रोक-टोक जा सकेगा। इसी प्रकार वह कुएँ, तालाब, सड़क, घाट, पार्क आदि का इस्तेमाल भी कर सकेगा, बशर्ते कि ये चीजें जनता के उपयोग के लिए हों। किसी को यह कहने का अधिकार न होगा कि तुम मुसलमान हो या चमार-भंगी हो, इसलिए इस कुएँ से पानी नहीं भर सकते। राज्य की नौकरियों में अथवा राज्य की ओर से चलाए जाने-वाले अन्य कामधंधों में लगने के लिए सब को समान सुविधा रहेगी। केवल धर्म, जाति, वर्ण, लिंग या जन्मस्थान के आधार पर कोई किसी सरकारी पद के अयोग्य नहीं समझा जायगा।

अस्पृश्यता का अन्त—नागरिक समानता के सम्बन्ध में यहाँ एक बड़ी बाधा अस्पृश्यता रही है। अब नये संविधान द्वारा इसका सदा के लिए अंत कर दिया गया है। अब कानून की दृष्टि में कोई भी व्यक्ति अस्पृश्य या अछूत नहीं होगा। यह नियम कर दिया गया है कि कोई आदमी किसी दूसरे व्यक्ति को अस्पृश्य न समझे और न उसे अस्पृश्य मानकर व्यवहार करे। यदि किसी को अछूत मान कर कोई बंधन, अयोग्यता या रोक-टोक लगाई जायगी, तो यह एक अपराध समझा जायगा

और ऐसा करनेवाले को दण्ड दिया जायगा। संविधान की यह धारा बहुत ही महत्वपूर्ण और क्रान्तिकारी है। अस्पृश्यता भारतीय समाज का एक बड़ा अभिशाप रहा है। ऐसे व्यक्तियों की संख्या लाखों में नहीं करोड़ों में है, जो अछूत समझे जाते रहे हैं, और जिनके हाथ का स्पर्श किया हुआ भोजन और पानी ग्रहण करना पाप समझा जाता रहा है। म० गांधी ने उनके उद्धार के लिए सम्पूर्ण देश में जो हरिजन-आन्दोलन चलाया, उसका व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा और लोगों में अस्पृश्यता की दूषित घातक प्रथा को समाप्त कर देने की भावना बढ़ती गई। उसी का फल है कि स्वतंत्र होते ही हमारे नेताओं ने इसे मिटा दिया।

पदवियों एवं उपाधियों का निषेध—संविधान में पदवियों एवं उपाधियों की प्राप्ति को निषिद्ध ठहराया है। ऐसा करने में मुख्य विचार यह है कि विशेष प्रकार की पदवियाँ देना असमानता का द्योतक है। विदेशी शासन में इन पदवीधारियों का कटु अनुभव रहा है, इस लिए भी पदवियों का अन्त किया गया। संविधान में कहा गया है कि राज्य सेना या विद्या सम्बन्धी उपाधि के सिवाय, और कोई खिताब प्रदान नहीं करेगा। भारत का कोई भी नागरिक किसी विदेशी राज्य से कोई उपाधि स्वीकार नहीं करेगा।

उपाधियों और पदवियों का निषेध करके संविधान-निर्माताओं ने समानता ही की स्थापना नहीं की, वरन् विदेशियों द्वारा भारतीय राजद्रोहियों को प्रलोभन देने की प्रवृत्ति का अन्त कर दिया है। भारतीय इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब कि विदेशियों ने इस प्रकार के प्रलोभन देकर भारत को बहुत हानि पहुँचायी है।

स्वतंत्रता का अधिकार—प्रत्येक राज्य में उसके नागरिकों के उत्कर्ष और उत्थान के लिए यह आवश्यक है कि नागरिकों को लेखन, भाषण, विचार करने की स्वतंत्रता हो, उन्हें पूर्ण आश्वासन हो कि उनके प्राण सुरक्षित हैं, और राज्य अकारण ही उनकी दैहिक स्वतंत्रता का

अपहरण नहीं कर सकता। जहाँ इस प्रकार की स्वतंत्रता नहीं होती, वहाँ नागरिक अंध-विश्वासी और अल्पज्ञ हो जाते हैं। उन्हें नई-नई विचार-धाराओं, आविष्कारों आदि का ज्ञान नहीं होता, और वे अपनी रीति-रस्मों तथा कार्य-प्रणाली आदि में आवश्यक सुधार या प्रगति नहीं कर पाते। इस लिए आधुनिक सभ्य देशों के संविधानों में स्वतंत्रता संबन्धी अधिकारों को विशेष महत्व दिया जाता है।

भारतीय संविधान में स्वतन्त्रता सम्बन्धी अधिकार के अन्तर्गत निम्नलिखित स्वतंत्रताएँ प्रदान की गई है:—

(१) भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता।
(२) शान्तिपूर्वक, बिना हथियार लिए सभा करने की स्वतंत्रता।
(३) संस्था, परिषद् या सङ्घ निर्माण करने की स्वतन्त्रता।
(४) भारत के राज्य-क्षेत्र में अबाध आने जाने की स्वतन्त्रता।
(५) भारत के राज्य-क्षेत्र के किसी भाग में निवास करने और बस जाने की स्वतन्त्रता।
(६) सम्पत्ति कमाने, रखने और व्यय करने की स्वतन्त्रता।
(७) कोई आजीविका व्यापार या कारबार करने की स्वतन्त्रता।
(८) अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के विषय में संरक्षण।
(९) प्राण और शारीरिक स्वाधीनता का संरक्षण।
(१०) बन्दीकरण और निरोध से संरक्षण।

भाषण आदि की स्वतंत्रता—संविधान ने सब नागरिकों को स्वतंत्रता का समान अधिकार प्रदान किया है। सब को अपना विचार प्रकट करने और भाषण देने की स्वतंत्रता हैं। नागरिकों को किसी जगह एकत्रित होकर सलाह-मशविरा करने का अधिकार है। वे अपनी सभा, समितियाँ, संघ कायम कर सकते हैं। देश के अन्दर स्वतंत्रतापूर्वक एक स्थान से दूसरे स्थान से को आ-जा सकते हैं, भारत के किसी भाग में जाकर बस सकते हैं। वे सम्पत्ति प्राप्त कर सकते हैं, रख सकते

हैं और जब चाहें हस्तान्तरित कर सकते हैं। वे कोई भी काम धंधा या रोजगार स्वतंत्रता-पूर्वक कर सकते हैं। हाँ, सार्वजनिक हित में आवश्यक होने पर, राज्य कभी-कभी इन अधिकारों के उपयोग पर कुछ बंधन लगाएगा।

अपराधों के लिए दोष-सिद्धि के विषय में संरक्षण— भारतीय सङ्घ में किसी भी व्यक्ति को तब तक दण्ड न दिया जायगा, जब तक वह किसी ऐसे कानून का भङ्ग न करे, जिसे भङ्ग करने से वह दंड का भागी होता हो। दण्ड भी उस सीमा तक ही दिया जा सकेगा, जितना कि अपराध करने के समय विधि द्वारा निर्धारित हो। किसी अपराधी पर उसी अपराध के लिए दुबारा मुकदमा नहीं चलाया जायगा और एक अपराध के लिए दो बार दण्डित नहीं किया जा सकेगा। अभियुक्त को अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य न किया जा सकेगा। बहुधा पुलिस किसी व्यक्ति को व्यर्थ ही अपराधी सिद्ध करने के लिए यह प्रयत्न करती है कि वह अपना अपराध स्वयं स्वीकार कर ले। संविधान द्वारा नागरिकों को पुलिस की ज्यादतियों से संरक्षण प्रदान किया गया है। प्रत्येक अपराधी पर मुकदमा भी चलाया जायगा और दण्ड भी दिया जायगा। यह वाक्यांश संविधान में इस कारण दिया गया है कि यदि किसी अपराधी पर विभागीय कार्यवाही की जा चुकी हो तो वह यह कह कर मुक्त न हो सके कि उसे दण्ड मिल चुका है। ऐसे अभियुक्त पर विधि के अनुसार मुकद्दमा चलाया जायगा और दण्ड भी दिया जायगा।

प्राण और शारीरिक स्वाधीनता की रक्षा; बन्दीकरण और निरोध से संरक्षण—शारीरिक स्वतंत्रता संबन्धी अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है। इसे स्वतंत्रता सम्बन्धी अधिकारों की आत्मा कहा जा सकता है। यदि कभी शासक-वर्ग या राज्य स्वेच्छाचारी हो जाय और दमन-नीति का आश्रय लेले तो वह उन नागरिकों को, जो उसके आलोचक हों अथवा उनकी नीति के विरोधी हों, बन्दी-गृह में डलवा सकता है और

उन्हें प्राणों से भी वंचित कर सकता है। इस प्रकार की स्थिति से नागरिकों को संरक्षण देने के हेतु संविधान द्वारा नागरिकों को अधिकार दिया गया है कि किसी भी व्यक्ति के प्राण अथवा स्वाधीनता का हरण कानून द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसार ही किया जा सकेगा। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस अधिकार के द्वारा भारत में विधि-विहित शासन की स्थापना की गई है। इस अधिकार की उद्देश्य-पूर्ति के लिए संविधान में कहा गया है :—

(क) प्रत्येक व्यक्ति जो गिरफ्तार किया जायगा, उसे उसकी गिरफ्तारी का कारण बतलाये बगैर, हवालात में नहीं रखा जायगा और उसे उसकी इच्छा के अनुसार वकील से परामर्श करने एवं उसको अपनी पैरवी के लिए नियुक्त करने का अधिकार होगा।

(ख) प्रत्येक व्यक्ति जिसे गिरफ्तार किया गया है, और हवालात में रखा गया है, उसे हवालात से मजिस्ट्रेट के न्यायालय तक की यात्रा के आवश्यक समय को छोड़कर, ऐसी हवालत से २४ घंटे के अन्दर निकटतम मजिस्ट्रेट के न्यायालय में उपस्थित किया जायगा और उसे मजिस्ट्रेट की आज्ञा के बगैर, इस अवधि (२४ घंटे) से अधिक हवालात में न रखा जायगा।

उपरोक्त उपबन्ध दो प्रकार के व्यक्तियों के संबन्ध में लागू नहीं होंगे :—

(१) जो व्यक्ति उस समय भारत के अन्यदेशीय शत्रु हों।

(२) जो व्यक्ति किसी नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत बन्दी हों।

नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत नजरबन्द किया हुआ व्यक्ति भी तीन माह से अधिक बन्दीगृह में न रखा जा सकेगा बशर्ते कि 'नजरबन्दी कानून परामर्शदात्री समिति' तीन मास पूर्व ऐसी राय न दे दे कि उसका अधिक समय तक बन्दी रखना आवश्यक है। इस समिति में ऐसे ही व्यक्ति होंगे, जो किसी उच्च न्यायालय (हाईकोर्ट) के न्यायाधीश

हैं, रह चुके हैं अथवा होने की योग्यता रखते हैं। इस नियम के भी अपवाद हैं। इस सम्बन्ध में संसद विधि द्वारा उन परिस्थितियों का निश्चय कर सकती है, जिनके अन्तर्गत किसी वर्ग विशेष के मामले, जिनमें किसी व्यक्ति को बन्दी किया गया है, तीन से अधिक मास तक नजरबन्द रखा जा सकता है। संसद विधि द्वारा यह भी निर्धारित कर सकती है कि अधिक से अधिक कितनी अवधि के लिए किसी व्यक्ति को नजरबन्द रखा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति को, जिसे नजरबन्दी कानून के अन्तर्गत बन्दी किया जायगा, जल्दी से जल्दी बताया जायगा कि वह क्यों नजरबन्द रखा गया है और उसे उस आज्ञा के विरुद्ध प्रतिवाद करने का शीघ्र और पूर्ण अवसर दिया जायगा। अधिकारी वर्ग ऐसे तथ्य बताने के लिए बाध्य नहीं होंगे, जो जनहित के विरुद्ध हों।

ऊपर कहा गया है कि संविधान के अनुसार 'किसी व्यक्ति को अपने प्राण अथवा दैहिक स्वाधीनता से विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया को छोड़कर अन्य प्रकार से बंचित न किया जायगा'। इन शब्दों ने न्यायालय के अधिकार को बहुत सीमित कर दिया है और संसद के अधिकार को बहुत व्यापक। इसका व्यवहारिक रूप यह होगा कि न्यायालय को किसी व्यक्ति के संबध में जिसे गिरफतार किया जायगा अथवा नजरबन्द किया जायगा, केवल यह देखना होगा कि उसे विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अंतर्गत गिरफ्तार किया गया है या नहीं। न्यायालय को विधि के गुण-दोष की परीक्षा करने का अधिकार नहीं होगा। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि न्यायालयों को विधि के औचित्य और अनौचित्य पर विचार करने का अधिकार नहीं होगा। हाँ, संविधान के अनुरूप न होने की दशा में वे किसी विधि को अवैध या शून्य करार दे सकते हैं। अस्तु, जहाँ तक शारीरिक स्वाधीनता और नजरबन्दी के सम्बन्ध में न्यायालय के सामने संसद को प्रधानता की गई है, उस सीमा तक संविधान

प्रजातंत्र के आदर्श के विरूद्ध है, और नागरिक स्वतंत्रता को अपहरण करता है।

शोषण के विरुद्ध अधिकार—इस अधिकार द्वारा भारतीय समाज की दो बुराइयों को दूर करने का प्रयत्न किया गया है:—

(१) मनुष्यों का क्रय-विक्रय

(२) बेगार और जबर्दस्ती काम लेना

भविष्य में कोई भी व्यक्ति मनुष्यों का क्रय-विक्रय न कर सकेगा और बेगार तथा जबर्दस्ती से काम भी न ले सकेगा। यदि वह ऐसा करने का प्रयत्न करेगा तो दण्ड का भागी होगा। हाँ, इस संबन्ध में राज्य को सार्वजनिक कार्यों के लिए अनिवार्य सेवा लेने में कोई रुकावट उपस्थित न होगी। भारत में दास-प्रथा और मनुष्यों का क्रय-विक्रय किसी न किसी रूप में आधुनिक युग में विद्यमान रहा है। मद्रास में देवदासी प्रथा तथा राजस्थान में बांदी प्रथा इसी का रुपान्तर है। इस प्रथा से व्यभिचार की मात्रा बढ़ती है, स्त्रियों का क्रय-विक्रय किया जाता है और समाज में नारी का सम्मान घटता है।

संविधान द्वारा मानव क्रय-विक्रय का अन्त करके इस बुराई को निर्मूल करने का प्रयत्न किया गया है। भारत में गावों में बेगार की प्रथा बहुत व्यापक है, इसके कारण लाखों व्यक्तियों का आर्थिक शोषण हो रहा है और वे लोग दासता का जीवन बिताने के लिए बाध्य होते हैं। भारत की अछूत जातियों से खेती में जमीदारों एवं जगीरदारों द्वारा बेगार ली जाती रही है। इस अधिकार को स्वीकार करके एक महान कार्य किया गया है, परन्तु केवल अधिकार की स्वीकृति मात्र से इस बुराई का अन्त न होगा, इसके लिए संसद को एवं राज्यों के विधान-मण्डलों को आवश्यक विधि-निर्माण करने चाहिए। देवदासी-प्रथा नष्ट करने के लिए मद्रास-सरकार ने उचित विधि का निर्माण कर दिया है।

चौदह वर्ष से कम अवस्था के बच्चों से किसी कारखाने या खदान में काम नहीं लिया जायगा और न उन्हे ऐसे कार्यों में लगाया जायगा, जिन्हें करने में खतरा हो। भारतीय बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हुए यह अवस्था १६ वर्ष होती तो अच्छा था। स्त्रियों को भी खानों और कारखानों में रात्रि के समय काम लेना वर्जित होना चाहिए, क्योंकि इससे उनका स्वास्थ्य बिगड़ता है, जिसका प्रभाव भावी सन्तति पर पड़ना अवश्यम्भावी है।

धार्मिक स्वतन्त्रता—संविधान के द्वारा भारत एक धर्म-निर्पेक्ष ('सेक्यूलर') राज्य घोषित कर दिया गया है। राज्य में किसी भी धर्म को प्राधीनता नहीं दी जावेगी, सब धर्म राज्य की दृष्टि में समान होंगे। किसी धर्म विशेष के अनुयायियों के प्रति विशेष उदारता अथवा कठोरताका व्यवहार नहीं किया जायगा। समस्त नागरिकों को सदाचार, स्वास्थ्य एवं सार्वजनिक शांति तथा राज्य के अन्य नियमों का पालन करते हुए किसी भी धर्म को मानने, प्रचार करने और उस पर आचरण करने की स्वतंत्रता प्राप्त होगी। सिक्खों के लिए कृपाण धारण करना उनकी स्वतन्त्रता का ही एक अंग माना जायगा। इसलिए उसको धारण करने पर कोई प्रतिबंध नहीं लगाया जावेगा। यदि किसी धार्मिक कृत्य के साथ आर्थिक, राजनैतिक अथवा राजस्व संबन्धी कोई कार्य शामिल होगा तो राज्य को अधिकार होगा कि विधि (कानून) बनाकर उस कार्य का नियमन करे या उस पर कोई रोक लगावे। राज्य को समाज के कल्याण और सुधार के लिए हिन्दुओं की सार्वजनिक धर्म-संस्थाओं को सब हिन्दुओं के लिए खोलने का अधिकार होगा। सिक्ख, जैन और बौद्ध लोगों पर भी वही नियम लागू होंगे, जो अन्य हिन्दुओं पर हैं। किसी भी धर्म या संप्रदाय को यह अधिकार होगा कि धार्मिक दान आदि संबन्धी, अथवा धार्मिक कार्यों के लिए, संस्थाएँ स्थापित करे और चलाए, धर्म संबन्धी सब मामलों का प्रबन्ध अपने

हाथ से करें और चल या अचल सम्पत्ति प्राप्त करे और रखे। विधि (कानून) के अनुसार वह ऐसी संपति का प्रबन्ध भी कर सकता है। किसी धर्म अथवा संप्रदाय विशेष की उन्नति या हित के लिए लगाए हुए कर को देने के लिए किसी को बाध्य नहीं किया जायगा। सरकारी स्कूल या कालेज में धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था न की जावेगी; परन्तु यह व्यवस्था उस स्कूल या कालेज पर लागू न होगी, जिसका प्रबन्ध तो राज्य करता हो परन्तु वह किसी धार्मिक संस्था द्वारा स्थापित की गई हो। यदि ऐसी शिक्षा संस्था में जिन्हें सरकार की ओर से कुछ सहायता मिलती हो, धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था होगी तो किसी को उसमें भाग लेने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकेगा। यदि किसी जाति या सम्प्रदाय की अपनी अलग संस्था है, तो संस्था के घन्टों के अतिरिक्त दूसरे समय में धार्मिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जा सकती है।

नागरिकों को धर्म-प्रचार कार्य में सहिष्णुता तथा सद्गुणों का परिचय देना आवश्यक है। अपने धर्म के अनुयायियों को बढ़ाने के लिए पर-धर्म-निन्दा या बलात् धर्म-परिवर्तन विधि के अन्तर्गत दण्डनीय होगा। राज्य को हिन्दू संस्थाओं तथा मन्दिरों को समस्त हिन्दुओं के लिए खोलने का अधिकार है; यह इसलिए किया गया है कि अस्पृश्य और अनुसूचित जातियों को भी धार्मिक स्वतन्त्रता का उपभोग करने का सुयोग हासिल हो सके। इससे जो कानून राज्यों अथवा प्रान्तों ने इस सम्बन्ध में संविधान बनने से पूर्व बनाये थे, उन्हें भी लागू किया जा सकेगा।

संस्कृति और शिक्षा संबन्धी अधिकार—भारतीय संविधान-निर्माताओं ने यदि एक ओर भारतीय जनता की एकता को सुदृढ़ करने का प्रयत्न किया है तो दूसरी ओर वे लोग भारतीय जनता की विभिन्नताओं को भूले नहीं है। उन्होंने भारत के विविध भागों के निवासियों की प्रतिभा को विकसित होने का अवसर देने का भी ध्यान रखा। इस

प्रकार कठोर एकता नहीं, वरन् मधुर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों की शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी हितों की रक्षा की व्यवस्था की गई है। यदि भारत के किसी भाग में नागरिकों का ऐसा वर्ग है, जिसकी अपनी भाषा, लिपि और संस्कृति है तो उसे अधिकार होगा कि उनकी रक्षा करे। दूसरे शब्दों में, उसकी भाषा या लिपि अथवा संस्कृति को मिटाने का प्रयत्न नहीं किया जायगा, और न किसी को करने दिया जायगा। कुछ लोगों का मत है और एक दृष्टि यह अच्छा भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र में एक भाषा और एक संस्कृति का विकास किया जाना चाहिए। दर्जनों प्रकार की भाषाएँ, लिपियों का प्रचलन राष्ट्र की एकता में बाधक होता है। किन्तु अपनी भाषा और संस्कृति का लोगों को इतना अधिक मोह होता है कि वे उसे छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते। यदि एकता के विचार से उनसे अपनी भाषा या संस्कृति को छोड़ देने के लिए कहा जाय तो उनमें बड़ा असन्तोष पैदा हो जाता है। अतः प्रजातन्त्र राज्य में यही उचित समझा जाता है कि अल्पसंख्यकों की भाषा, लिपि और संस्कृति को सुरक्षित रहने दिया जाय। किसी सरकारी शिक्षा-संस्था में किसी अल्पसंख्यक जाति के लोगों की भर्ती के सम्बन्ध में भेद-भाव नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए सभी अल्पसंख्यक वर्गों को यह अधिकार होगा कि वे अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करें और उनका प्रबन्ध करे। शिक्षा-संस्थाओं को सहायता देते समय ऐसे स्कूल-कालेजों का भी राज्य की ओर से ध्यान रखा जायगा।

साम्पत्तिक अधिकार—जीवन में सम्पत्ति की बड़ी आवश्यकता होती है। उसके बिना न तो कोई रोजगार-धंधा हो सकता है और न परिवार का पालन-पोषण ही किया जा सकता है। अतः संविधान ने सभी नागरिकों को समान रूप से यह अधिकार दिया है कि वे अपने पास सम्पत्ति रख सकें। उनकी सम्पत्ति की रक्षा की जिम्मेदारी राज्य पर होगी। कोई भी

व्यक्ति कानून के अधिकार के बिना, अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायगा; अर्थात् राज्य किसी की संपत्ति को मनमाने तौर से अपने अधिकार में न कर सकेगा। यदि राज्य कभी सार्वजनिक कार्य के लिए किसी की चल या अचल संपत्ति को कब्जे में करना चाहेगा तो वह ऐसा किसी विधि के अंतर्गत करेगा। सार्वजनिक उपयोग के लिए ली गई ऐसी संपत्ति तब तक किसी विधि के द्वारा अधिकार में न ली जा सकेगी, जब तक कि वह विधि उस संपत्ति की क्षतिपूर्ति यानी मुआवजे की व्यवस्था न करती हो। इस प्रकार की विधि मुआवजे की रकम निश्चित करेगी ही, वह उन सिद्धान्तों का भी निरूपण करेगी, जिनके आधार पर मुआवजा दिया जानेवाला है। यही नहीं, सम्पत्ति लेने का कानून उस समय तक प्रभावी नहीं होगा, जब तक उसे राष्ट्रपति की अनुमति न मिल जाय।

सम्पत्ति लेने-न-लेने या मुआवजे सम्बन्धी प्रश्नों पर अन्तिम निर्णय संसद का होगा। मुआवजे के औचित्य या परिमाण के सम्बन्ध में न्यायालय को विचार करने का अधिकार नहीं है। न्यायालय में मुआवजे के कानून के विरूद्ध तभी विचार हो सकता है, जब कि उस कानून से संविधान की उपेक्षा होती हो। संविधान में यह प्रयत्न किया गया है कि ऐसे मामलों के लिए अनावश्यक मुकदमेबाजी न हो। यह व्यवस्था जमींदारी-उन्मूलन को ध्यान में रखकर की गई है। इस प्रकार इस समय उत्तर प्रदेश, बिहार आदि में जमींदारी-उन्मूलन-विधि के अंतर्गत जो व्यवस्था की जा रही है और इन राज्यों के विधान मंडलों ने क्षतिपूर्ति के जो सिद्धान्त स्थिर किए हैं, वे अवैध नहीं ठहराये जा सकते।

संपत्ति संबन्धी अधिकार के संबन्ध में कई विचार हैं। समाजवादी लोग इस व्यवस्था से अत्यन्त असंतुष्ठ हैं। श्री दामोदरस्वरूप का प्रस्ताव था—"व्यक्तिगत संपत्ति और आर्थिक व्यवसाय और उनके उत्तराधिकार को सीमित किए जाने, कर लगाये जाने, प्राप्त किए जाने तथा उसके समाजीकरण किए जाने की व्यवस्था हो, किन्तु विधि के अनुसार। यह

विधि द्वारा निश्चित किया जायगा कि किन मामलों में और किस सीमा तक संपत्ति के स्वामी को क्षति पूर्ति दी जायेगी।"

जमींदार तथा पूँजीपतियों का कहना था कि यह व्यवस्था अनुचित है। संपत्तिशाली वर्ग को उसकी संपत्ति से, पूर्ण मुआविजा दिए वगैर वंचित करना घोर अन्यान्य है।

संविधान-निर्माताओं ने मध्यम मार्ग ग्रहण किया। एक ओर व्यक्तिगत सम्पत्ति पर व्यक्तियों के अधिकार को सुरक्षित रखा और दूसरी ओर सम्पत्ति पर समाज के अधिकार को भी मान्य किया।

संविधानिक उपचारों का अधिकार—संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का यदि राज्य या नागरिक अतिक्रमण करें तो उनकी रक्षा की व्यवस्था कैसे हो? संविधान में मूल अधिकारों के उल्लेख मात्र से ही नागरिक उन का उपयोग नहीं कर सकते। संविधान द्वारा इन अधिकारों की रक्षा के लिए व्यवस्था की जानी आवश्यक है। भारतीय संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि उपर्युक्त मूल अधिकार यथेष्ट रूप में सब को सुलभ हों। उच्चतम न्यायालय ऐसी हिदायतें या आज्ञाएँ जारी करेगा कि मूल अधिकार ठीक-ठीक कार्यान्वित किए जाँय। संविधान ने उच्चतम न्यायालय को हमारे मूल अधिकारों का संरक्षक बनाया है। यदि संसद का बनाया कोई कानून या सरकार का कोई नियम किसी मूल मूल अधिकार के, या संविधान के किसी आदेश के विरुद्ध पड़ता हो तो उच्चतम न्यायालय को अधिकार है कि वह न्याय के हित में उसे अवैध घोषित करदे।

संसद को यह अधिकार है कि वह उच्चतम न्यायालय के इस अधिकार को दूसरे स्थानीय न्यायालयों को भी देदे, जिससे मूल अधिकारों पर आघात होने की दशा में सभी नागरिको को उच्चतम न्यायालय जाने की आवश्यकता न रहे, वे अपनी सुविधानुसार स्थानीय न्यायालयों की

सहायता ले सकें। मूल अधिकारों के उल्लंघन सम्बन्धी दंड-विधि की रचना करने का अधिकार संसद को ही है, राज्यों के विधान-मंडलों को नहीं। संसद की यह भी अधिकार है कि मूल अधिकारों की रक्षा के लिए अन्य आवश्यक कानून बनाए।

अस्थायी रोक—मूल अधिकारों की व्यवस्था साधारण अर्थात् शान्ति काल के लिए है। युद्ध या विप्लव आदि की स्थिति में नागरिकों को इन अधिकारों का उपयोग नहीं करने दिया जा सकता। ऐसे सङ्कट की स्थिति में, जिसकी घोषणा राष्ट्रपति करेगा, ये अधिकार देश या उसके किसी भाग में निर्धारित समय के लिए अमल में आने से रोक दिए जायँगे; हाँ, संकट दूर होते ही यह रोक हटा ली जायगी।

सेना और मूल अधिकार—सेना में अनुशासन की बहुत आवश्यकता रहती है। इसलिए संसद को अधिकार है कि सशस्त्र सेना या सार्वजनिक शान्ति की रक्षक सेना के सम्बन्ध में इन अधिकारों को उस सीमा तक कम या समाप्त कर दें, जहाँ तक ऐसा करना सैनिकों के कर्तव्यों का ठीक तरह पालन किए जाने के लिए आवश्यक हों।

विशेष वक्तव्य—मूल अधिकारों पर नजर डालने से यह स्पष्ट हो जाता है, कि जहाँ एक ओर इनका निर्माण व्यापक दृष्टिकोण से किया है, दूसरी ओर कि उनके उपभोग के सम्बन्ध में काफी बन्धन भी सार्वजनिक हित के नाम पर लगा दी गई हैं। इससे मूल अधिकारों का महत्व कुछ घट गया है।

इस सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि परम्पराओं और प्रथाओं का महत्व बहुत होता है। संविधान में किसी अधिकार के होने से या न होने से लोक कल्याण पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि इसका कि उनका व्यवहार किस प्रकार किया जाता है। शासक वर्ग और जनता को अपने अधिकारों के साथ कर्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिए।

ग्यारहवाँ अध्याय

राज्य के नीति-निर्देशक तत्व

मैं यह स्वीकार नहीं कर सकता कि नीति-निर्देशक तत्वों का, कानून में, बंधनकारी बल न होने से, वे व्यर्थ हैं। इन तत्वों की स्थिति उन आदेश-पत्रों के समान है, जो सन् १९३५ के शासन-विधान के अन्तर्गत ब्रिटिश सरकार द्वारा गवर्नर-जनरल और गवर्नरों के लिए जारी किए जाते थे; केवल अन्तर यही है कि ये तत्व विधान-मंडल एवं कार्यकारिणी के लिए आदेश-पत्र हैं, जिनके आधार पर उन्हें भविष्य में देश का शासन करना है।'

—डा० भीमराव अम्बेडकर

मूल अधिकारों और नीति-निर्देशक तत्वों में अन्तर— नागरिकों के मूल अधिकारों के विषय में लिख चुकने पर, अब हम राज्य के नीति-निर्देषक तत्वों का विचार करते हैं। पहले यह जान लेना चाहिए कि इन दोनों में क्या अन्तर है। जैसा पहले कहा गया है, मूल अधिकारों की पीठ पर विधि या कानून का बल होता है; अगर किसी नागरिक के किसी मूल अधिकार पर आघात हो तो वह न्यायालय का दरवाजा खटखटा सकता है। न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह राज्य को उस मूल अधिकार की रक्षा के लिए प्रेरित करे; राज्य इसकी अवहेलना नहीं कर सकता। इसके विपरीत नीति-निर्देशक तत्वों के पीछे कानून का बल नहीं होता। यह राज्य की इच्छा पर निर्भर होता है कि वह इनमें सूचित आदेशों का पालन करे या न करे। न्यायालय, राष्ट्रपति अथवा अन्य कोई भी शक्ति राज्य को इन आदेशों के अनुसार चलने को बाध्य नही

कर सकती; हाँ इनसे राज्य को अपना कर्तव्य पालन करने की दिशा का ज्ञान होता है।

नीति-निर्देशक तत्वों का लक्ष्य—संविधान में कहा गया है कि 'राज्य अपनी शक्ति भर इस प्रकार की प्रभावशाली सामाजिक व्यवस्था की स्थापना एवं रक्षा करने का प्रयत्न करेगा, जिससे सार्वजनिक कल्याण की वृद्धि हो और समस्त नागरिकों एवं राष्ट्रीय संस्थाओं को सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय प्राप्त हो सके।' यह धारा अस्पष्ट एवं बहु-अर्थी है। इससे यह पता नहीं लगता कि राज्य किन सिद्धान्तों के आधार पर उपरोक्त प्रकार की सामाजिक व्यवस्था करेगा; वह व्यवस्था पूँजीवादी सिद्धान्तों पर आधारित होगी अथवा समाजवादी या साम्यवादी सिद्धान्तों पर।

नीति-निर्देशक तत्व; आर्थिक व्यवस्था—संविधान में जो नीति-निर्देशक तत्व दिए गए हैं, उन्हें चार वर्गों में बांटा जा सकता है:—

१—आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व।

२—सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति।

३—शासन सुधार।

४—अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति।

आर्थिक व्यवस्था सम्बन्धी तत्व ये हैं:—

(१) नर और नारी सभी नागरिकों को जीविका के पर्याप्त साधन समान रूप से प्राप्त करने का अधिकार हो।

(२) समुदाय की भौतिक संपत्ति का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार हो कि सामूहिक हित सर्वोत्तम रूप से हो*

---

* भारत सरकार ने आंशिक रूप से उद्योगों के राष्ट्रीकरण की नीति घोषित की है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन का भी निश्चय किया गया है।

(३) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन के साधनों का सर्वसाधारण के लिए अहितकर केन्द्रीकरण न हो।

(४) पुरुषों और स्त्रियों दोनों का समान कार्य के लिए समान वेतन हो।

(५) श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों के स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो, तथा आर्थिक आवश्यकता से विवश होकर नागरिकों को ऐसे रोजगारों में न लगना पड़े जो उनकी आयु या शक्ति के अनुकूल न हों।

(६) शैशव और किशोर अवस्था का शोषण से तथा नैतिक और आर्थिक पतन से संरक्षण हो।

(७) राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर यह प्रयत्न करेगा कि सब आदमी अपनी योग्यतानुसार काम पा सकें, शिक्षा प्राप्त कर सकें, एवं बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी, तथा अन्य ऐसी अवस्थाओं में, जब किसी कारणवश अपनी जीविका कमाने में असमर्थ हों; राज्य की ओर से सहायता प्राप्त कर सकें।

(८) राज्य इस बात का पूर्ण प्रयत्न करेगा और ऐसे नियम-निर्माण करेगा, जिनसे व्यक्तियों को मानवोचित दशाओं में ही कार्य करना पड़े। स्त्रियों को प्रसूति अवस्था में सहायता प्राप्त हो सके, इस बात का भी राज्य पूर्ण प्रयत्न करेगा।

(९) राज्य प्रयत्न करेगा कि कृषि और उद्योगों में लगे हुए समस्त श्रमिकों को निर्वाह-योग्य मजदूरी मिल सके; वे अपना जीवन-स्तर ऊँचा रख सकें, अवकाश के समय का पूर्ण उपभोग कर सकें। इसके साथ ही साथ राज्य उनका सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी जीवन उन्नत करने का प्रयत्न करेगा। राज्य गावों में कुटीर उद्योगों को वैयक्तिक अथवा सहकारी आधार पर बढ़ाने का प्रयत्न करेगा।

(१०) राज्य कृषि और पशुपालन को आधुनिक वैज्ञानिक ढङ्ग से संगठित करने का प्रयत्न करेगा और गायों, बछड़ों तथा अन्य दुधारू और वाहक ढोरों की नस्ल की रक्षा तथा सुधार का और उनके बध को समाप्त करने का प्रयत्न करेगा।

सामाजिक और शिक्षा सम्बन्धी उन्नति—सामाजिक और शैक्षणिक उन्नति सम्बन्धी नीति-निर्देशक तत्व निम्नलिखित हैं :—

(१) राज्य जनता के दुर्बलतर विभागों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित आदिम जातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।

[हमारे ये करोड़ों भाई चिर काल से उपेक्षित रहे हैं, इनकी उन्नति किए बिना राष्ट्र का उत्थान नहीं हो सकता।]

(२) राज्य देश भर के नागरिकों के लिए एक समान व्यवहार-संहिता बनाने का प्रयत्न करेगा।

[इस समय कुछ कानून तो सब नागरिकों के लिए समान रूप से हैं, और कुछ में हिन्दू, मुसलमान आदि का विचार है।]

(३) राज्य संविधान लागू होने से १० वर्ष की अवधि के अन्दर १४ वर्ष की आयु तक के समस्त बालकों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयत्न करेगा।

[प्रजातंत्र राज्य के लिए समस्त नागरिकों को प्रारंभिक शिक्षा होना आवश्यक है। भारत में यह शिक्षा अभी शैशवावस्था में ही है।]

(४) राज्य अपने लोगों के आहार-पुष्टितल और जीवनस्तर को ऊँचा करने एवं लोगों के स्वास्थ्य-सुधार के कर्तव्य को अपने प्राथमिक और प्रधान कर्तव्यों में से मानेगा। स्वास्थ्य के लिए हानिकर मादक द्रव्यों तथा मादक औषधियों के सेवन का निषेध करने का प्रयत्न करेगा, किन्तु चिकित्सा के उद्देश्य से इनका उपयोग किया जा सकेगा।

[भारत में साधारण नागरिक का खाने-पीने तथा-रहने सहने का जीवन-स्तर कितना नीचा है और मद्यपान से खासकर मजदूरों को कितनी हानि पहुँच रही है, यह स्पष्ट ही है ।]

(५) राज्य का दायित्व होगा कि वह प्रत्येक स्मारक, कलात्मक या ऐतिहासिक अभिरूचि के प्रत्येक स्थान या वस्तु को, जिसे संसद ने राष्ट्रीय महत्व का घोषित कर दिया हो, दूषित होने, नष्ट होने, स्थानान्तर किए जाने या बाहर भेजे जाने से बचाये ।

[इन स्मारकों व स्थानों तथा वस्तुओं को सुरक्षित रखने के लिए कानून बनाने का कार्य संसद करेगी ।]

शासन-सुधार—दो नीति-निर्देशक तत्व ऐसे हैं, जिनसे शासन का स्तर ऊँचा होने में सहायता मिलेगी :—

(१) राज्य इस बात का प्रयत्न करेगा कि ग्राम-पंचायतों का अधिक ग्रामों में संगठन हो और उन्हें ऐसे अधिकार प्रदान किए जावें, जिनसे वे स्वायत्त शासन की इकाइयों के रूप में कार्य कर सकें ।

[महात्मा गांधी का मत था कि शासन के सम्बन्ध में अधिक से अधिक विकेन्द्रीकरण की नीति बर्ती जानी चाहिए और ग्राम-पंचायतों का संगठन करके ग्रामों को आत्म-निर्भर बना देना चाहिए ।]

(२) राज्य न्यायपालिका को कार्यकारिणी से पृथक् करने का प्रयत्न करेगा ।

[इसका उद्देश्य यह है कि न्यायाधीश प्रत्येक मामले की सुनवाई स्वतंत्र और निष्पक्ष रूप से कर सके, उस पर न किसी का दबाव हो और न हस्तक्षेप । जिला-मजिस्ट्रेट और उसके नीचे के अधिकारियों को शासन और न्याय दोनों प्रकार के अधिकार होने से बहुधा ठीक न्याय नहीं हो पाता ।]

अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति—इसके लिए राज्य अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति और सुरक्षा की उन्नति के लिए निम्नलिखित

बातों का प्रयत्न करेगा:— (क) राष्ट्रों के बीच न्याय और सम्मान पूर्ण सम्बन्धों को बनाये रखने का, (ख) संगठित लोगों के, एक दूसरे से व्यवहारों में अन्तर्राष्ट्रीय विधि और संधि-बन्धनों के प्रति आदर बढ़ाने का, और (ग) अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को मध्यस्थता द्वारा निपटाने का।

प्राचीन काल में भारतीयों ने इतनी उन्नति की थी और विश्व को शान्ति का ऐसा सुन्दर मार्ग दिखाया था कि सारे संसार में उसकी प्रतिष्ठा और आदर था। दूर-दूर के देशों तक उसका प्रभाव फैला हुआ था। शताब्दियों के बाद जब भारत स्वतंत्र हुआ है तो इस आकांक्षा का पैदा होना स्वाभाविक ही है कि वह संसार में फिर सम्मान का स्थान प्राप्त करे। भारत का आदर्श 'वसुधैव कुटुम्बकम्' रहा है, वह साम्राज्यवाद और शोषण में नहीं, वरन् सहयोग और शान्ति में विश्वास रखता है और चाहता है कि अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष और वैमनस्य के सब कारण दूर हो जायं ताकि सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण और हित-साधन के लिए सम्मिलित प्रयत्न किया जा सके। योरप और अमरीका के अधिकांश राजनीतिज्ञों का दृष्टिकोण इतना स्वार्थ-पूर्ण और संकुचित है कि उनसे स्थायी विश्वशान्ति की स्थापना की आशा नहीं की जा सकती। महात्मा गांधी ने अहिन्सा का जो मार्ग दिखाया है, उसी पर चलकर संसार सुखी हो सकता है। इसी लिए भारत ने सब गुटवन्दियों से अलग रहने और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों को युद्ध के बजाय मध्यस्थता द्वारा निपटाने के प्रयत्न करने का निश्चय किया है।

विशेष वक्तव्य—जैसा पहले कहा गया है, ये नीति-निर्देशक तत्व राज्य के लिए दिशा-दर्शक हैं। राज्य का कानूनी नहीं, नैतिक कर्तव्य है कि वह इनके अनुसार कार्य करे। जिस सीमा तक संघ के राज्य और स्थानीय संस्थाएँ इन के आदेशों का पालन करेंगी उसी सीमा तक राज्य नागरिकों की दृष्टि में सफल समझा जायगा।

बारहवाँ अध्याय

निर्वाचन

जिन व्यक्तियों को जनता चुनेगी, यदि वे सुयोग्य और चरित्रवान हुए तो वे इस दोषपूर्ण संविधान से भी भलाई कर सकेंगे; और यदि उनमें ये गुण न हुए तो यह संविधान देश की सहायता न कर सकेगा।

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

बालिग मताधिकार इस देश के जीवन में पहली बार लागू हो रहा है। यह एक बहुत बड़ा प्रयोग है। किसी भी प्रयोग की सिद्धि के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आ ही जाती हैं। कठिनाइयों के भय से प्रयोग को छोड़ देना गलत काम है।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

लोकतंत्रात्मक शासन में निर्वाचन का महत्व—नये संविधान के अनुसार भारत एक लोकतंत्रात्मक गण-राज्य है। लोकतंत्र का अर्थ है जनता का राज्य। सर्वोच्च सत्ता अब जनता के हाथ में निहित हो गयी है। देश का शासन अब जनता की इच्छा के अनुसार होगा। लोकतंत्र को 'जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का राज्य' कहा गया है। जनता से अभिप्रायः कुछ खास व्यक्तियों से नहीं होता, चाहे वे कितने ही उच्च घराने या जाति के हों, या कितने ही धनवान या प्रतिष्ठित क्यों न हों। वह तो राष्ट्र के सब व्यक्तियों की, गांव वालों की तथा नगर वालों की, होती है। जनता की भावनाओं, आवश्यकताओं या आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति किस प्रकार हो? शासन का कार्य निरंतर चौबीसों घन्टे चलता है

और यदि समस्त जनता केवल इसी कार्य में अपना सब समय देदे तो राष्ट्र के अन्य विविध कार्य कैसे चलें! लोगों को अपने भोजन-वस्त्र निवास, शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति भी तो करनी होती है। प्राचीन काल में जब राज्य छोटे-छोटे होते थे (यहाँ तक कि उनका क्षेत्र एक नगर और कुछ गांवों तक परिमित होता था, और उन्हें नगर-राज्य कहा जाता था,) और नागरिक प्रत्यक्ष रूप से कानून बनाने आदि का काम करते थे, तब भी वास्तव में समस्त जनता शासन-कार्य में भाग नहीं लेती थी। पीछे राज्यों के बड़े और विस्तृत हो जाने पर एवं उनकी जन-संख्या बहुत बढ़ जाने पर यह काम शान्ति तथा सुगमता से होना असम्भव हो गया।

तब प्रतिनिधि-प्रणाली का आविष्कार हुआ। यह सोचा गया कि राज्य के प्रत्येक भाग (ग्राम या नगर) के समस्त नागरिक कानून बनाने में योग देने के बजाय अपना यह अधिकार कुछ चुने हुए सज्जनों को देदें, जो उनकी ओर से आवश्यक कानून बनावें, और शासन-कार्य किया करें। ऐसे चुने हुए सज्जन 'प्रतिनिधि' कहलाने लगे। इस प्रकार लोकतंत्रात्मक शासन में चुनाव या निर्वाचन का महत्व स्पष्ट है। इसे एक प्रकार से उसका प्राण ही कहा जा सकता है। अब लोकतंत्र या जनतंत्र का अर्थ है, प्रतिनिधि तंत्र।

भारत में मताधिकार का विकास—ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि भारत में बहुत ही प्राचीन काल में लोकतंत्रात्मक गण-राज्य स्थापित किये गये थे तथा निर्वाचन पद्धति को अपनाया गया था। परन्तु पीछे जाकर यहां क्रमशः एकतंत्रात्मक शासनपद्धति प्रचलित हो गई। और, उसके बाद तो यह देश ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ही शिकार हो गया। अंगरेजी शासन में यहाँ बहुत समय तक निर्वाचन प्रथा की कोई बात ही नहीं थी। यहां तक कि सन् १६१६ से पहले साधारण जनता को प्रत्यक्ष निर्वाचन द्वारा किसी विधान-सभा

में कोई प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न था। उक्त वर्ष के शासन-सुधारों से जनता को प्रत्यक्ष चुनाव द्वारा कुछ प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया गया, परन्तु निर्वाचन के लिए योग्यता की ऐसी कड़ी शर्तें लगा दी गयी थीं कि उन्हें साधारण श्रेणी के क्या, मध्यम श्रेणी के भी अधिकांश नागरिक पूरी नहीं कर सकते थे। इस प्रकार मताधिकार केवल उच्च और धनी लोगों तक ही परिमित था। सन् १६१६ के शासन-विधान के अनुसार कुल जनसंख्या के ३ प्रतिशत भाग को ही मत देने का अधिकार मिला था। सन् १६३५ में जब प्रान्तीय स्वराज्य की योजना बनी, मताधिकार बढ़ा, पर १४ प्रतिशत जनता ही निर्वाचकों की सूची में आयी।

वयस्क मताधिकार—नये संविधान ने निर्वाचन के सम्बन्ध में क्रान्तिकारी कदम उठाया है। उसमें कहा गया है कि लोक-सभा तथा प्रत्येक राज्य की विधान-सभा के लिए निर्वाचन व्यस्क मताधिकार के आधार पर होंगे; अर्थात् प्रत्येक व्यक्ति, जो भारत का नागरिक है तथा २१ वर्ष से कम आयु का नहीं है, और अनिवास, चित्त-विकार, अपराध अथवा भ्रष्ट या अवैध आचरण के आधार पर अयोग्य नहीं ठहरा दिया गया है, ऐसे किसी निर्वाचन के लिए मतदाताओं में अपना नाम लिखाने को हकदार होगा। इसके साथ ही यह भी स्वीकार किया गया है कि केवल धर्म, मूलवंश (नस्ल), जाति, लिंग या इनमें से किसी के आधार पर कोई व्यक्ति किसी निर्वाचक-सूची में शामिल किए जाने के लिए अयोग्य न होगा।

संविधान के अन्तर्गत प्राप्त अधिकारों के आधार पर भारतीय संसद् ने मतदाताओं के लिए जो अयोग्यताएँ ठहरायी हैं, वे इस प्रकार हैं :—

(क) जो भारत का नागरिक न हो, अथवा

(ख) जो किसी सक्षम (अधिकार-युक्त) न्यायालय द्वारा चित्त-विकृत घोषित कर दिया गया हो, अथवा

(ग) वर्तमान समय के लिए किसी भी विधि द्वारा निर्वाचनों में भ्रष्ट या अवैध आचार के आधार पर अयोग्य कर दिया गया हो।

यदि इनमें से कोई भी अयोग्यता निर्वाचक-सूची बन जाने के पश्चात् भी किसी व्यक्ति पर लागू होगी तो उसका नाम निर्वाचक-सूची में से निकाल दिया जायेगा।

कुछ और भी बन्धन हैं। जैसे कोई भी व्यक्ति एक से अधिक निर्वाचन-क्षेत्र की निर्वाचक-सूची में अपना नाम नहीं लिखा सकता, और न एक ही व्यक्ति एक ही क्षेत्र में एक से अधिक बार अपना नाम लिखा सकता है। यह आवश्यक है कि जिस क्षेत्र की निर्वाचक सूची में उसने अपना नाम लिखाया है, उस क्षेत्र में योग्यता-काल में साधारणतया १८० दिन से कम न रहा हो और योग्यता-तिथि को उसकी आयु २१ वर्ष से कम न हो।

एक महान प्रयोग—संसार के इतिहास में यह पहला ही अवसर है, जब क्षेत्रफल, जनसंख्या आदि की दृष्टि से भारत जैसे महान राष्ट्र में वयस्क मताधिकार को केन्द्रीय विधान सभा (संसद) के निर्वाचन में स्थान दिया गया है। इस महत्वपूर्ण निश्चय द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव करने का अवसर दिया गया है कि उसका भी देश के शासन में उचित भाग है। देश के समस्त वयस्क व्यक्तियों को यानी करीब ५० प्रतिशत लोगों को मताधिकार मिल गया है। पहले मतदाता के लिए संपत्ति, शिक्षा, आय, पद, उपाधि आदि योग्यता आवश्यक थी। संविधान द्वारा इस प्रकार के समस्त अप्रजातांत्रिक बन्धनों को समाप्त कर दिया गया है।

[अगला निर्वाचन जो सन् १९५१ में होगा, उसमें देश की लगभग आधी जनता यानी लगभग १७ करोड़ व्यक्ति मतदाता होंगे। संसार में अभी तक किसी देश में इतने बड़े पैमाने पर निर्वाचन नहीं हुआ है। ऐसे निर्वाचन का प्रबंध करना सरल कार्य नहीं है।]

भारतीय जनता ने वयस्क मताधिकार, बिना विशेष परिश्रम पा लिया है, जब कि योरप अमरीका आदि के उन्नत देशों को इसके लिए अनेक आन्दोलन करने पड़े हैं, और इस समय भी वहां कई देशों में स्त्रियों को यह अधिकार प्राप्त नहीं है इंगलैंड में स्त्रियों को दीर्घकालीन संघर्ष के बाद यह सन् १६२८ में जाकर मिला। भारतीय नारियों ने इसे पुरुषों के साथ ही आसानी से पा लिया है। निस्संदेह भारतीय संविधान की यह व्यवस्था बहुत महत्वपूर्ण है।

संयुक्त निर्वाचन; कुछ अपवाद—नये संविधान में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली भी समाप्त कर दी गई, जो राष्ट्रीयता की घातक थी। देश के नागरिक अब भारतीय संघ के नागरिक होने के नाते मतदान करेंगे, हिन्दू और मुसलमान होने के नाते नहीं। प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक निर्वाचक-नामावली होगी और कोई भी व्यक्ति, धर्म, जाति, उपजाति अथवा लिंग भेद के कारण मतदान के अधिकार से वञ्चित नहीं किया जायगा।

अब सांप्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को अवश्य समाप्त कर दिया गया है और सब निर्वाचन संयुक्त-निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार होंगे। परन्तु अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एँग्लो-इन्डियनों आदि अल्पसंख्यकों के लिए कुछ स्थान लोकसभा में, उनकी जनसंख्या के आधार पर, सुरक्षित रखे गये हैं।

एंग्लो-इन्डियनों के लिए यह व्यवस्था की गयी है कि यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि इस समुदाय को लोकसभा में यथेष्ट प्रतिनिधित्व प्राप्त नहीं हो सका है तो वह इस समुदाय में से दो सदस्य तक मनोनीत कर सकेगा, इससे अधिक नहीं।

स्वायत्त राज्यों के विधान-मण्डल में अनुसूचित जनजातियों के लिये स्थान सुरक्षित रखे जाँयगे। राज्यों की विधान-सभाओं में इनका प्रतिनिधित्व उनकी जन-संख्या तथा राज्य की विधान-सभाओं की कुल

सदस्य-संख्या के अनुपात से होगा। यदि राज्य के राज्यपाल या राज-प्रमुख का यह मत हो कि राज्य की विधान-सभा में एंग्लो-इन्डियन समुदाय का पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं है तो वह उचित संख्या में उस समुदाय के सदस्य मनोनीत कर सकेगा।

अनुसूचित जातियों व जनजातियों एवं एंग्लो-इन्डियनों को इस प्रकार के जो विशेष संरक्षण प्रदान किए हैं, वे संविधान लागू होने के १० वर्ष तक (२६ जनवरी १९६० तक) ही लागू होंगे।

निर्वाचन-कमीशन—संविधान के अंतर्गत एक निर्वाचन-कमीशन की व्यवस्था की गई है। इसका कार्य संसद और प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल के लिए, तथा राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति पदों के लिए निर्वाचक-नामावली तैयार करना, और सब निर्वाचनों का संचालन करना होगा। निर्वाचनों में जो झगड़े या विवादग्रस्त प्रश्न उपस्थित होंगे, उनका निर्णय करने के लिए यह कमीशन पंच-अदालतों की नियुक्ति करेगा। इस कमीशन में एक मुख्य कमिश्नर और आवश्यकतानुसार अन्य कमिश्नर होंगे। इनकी नियुक्ति, संसद द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के विधान-मंडलों के चुनाव में निर्वाचन-कमिश्नरों को सहायता प्रदान करने के लिए प्रादेशिक कमिश्नर होंगे, उनकी नियुक्ति भी राष्ट्रपति करेगा।

निर्वाचन-कमिश्नरों की सेवा आदि के सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार राष्ट्रपति को है, परन्तु वह मुख्य निर्वाचन-कमिश्नर को उसी दशा में, तथा उसी रीति से हटा सकेगा, जैसे उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को हटाया जाता है। अन्य निर्वाचन-कमिश्नर मुख्य निर्वाचन-कमिश्नर के परामर्श बिना, अपने-अपने पद से नहीं हटाए जासकेंगे।

निर्वाचक-सूची—जैसा पहले कहा गया है। संसद के प्रत्येक सदन अथवा किसी राज्य के विधान-मण्डल के एक या दोनों सदनो के निर्वाचन के लिए प्रत्येक प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्र के लिए एक साधारण

निर्वाचक-नामावलि होगी तथा कोई भी व्यक्ति धर्म, मूलवंश (नस्ल), जाति, लिंग के आधार पर ऐसी नामावलि में सम्मिलित किए जाने के लिए अपात्र न होगा और ऐसे किसी निर्वाचन-क्षेत्र के लिए किसी विशेष निर्वाचक-नामावलि में सम्मिलित किये जाने का दावा न करेगा।

उपर्युक्त नियमों को ध्यान में रख कर प्रत्येक निर्वाचन के अवसर पर देश में संसद (तथा राज्य के विधान मंडलों) द्वारा निर्वाचक सूचियाँ बनायी जाती हैं। प्रत्येक नागरिक को, जो पहले बताए हुए नियमों के अनुसार मतदाता हो सकता है, चाहिए कि वह अपना नाम सूची में देखले; यदि उसका नाम सूची में न हो तो समुचित समय पर आपत्ति उठा कर उसमें अपना नाम दर्ज कराले।

निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन—निर्वाचन सम्बन्धी एक विषय जिसके लिए कानून बनाना होता है, निर्वाचन-क्षेत्रों का विभाजन है। यह कानून बनाने का अधिकार संसद को है। प्रत्येक राज्य को भी अपने विधान-मण्डलों के सम्बन्ध में ऐसे विषयों सम्बन्धी नियम बनाने का अधिकार होगा, जिनके सम्बन्ध में संसद ने विधि द्वारा कुछ नियम न बनाए हों। राज्य या संसद द्वारा निर्वाचन सम्बन्धी बनाई हुई विधि के सम्बन्ध में, जिनके अन्तर्गत निर्वाचन-क्षेत्रों की सीमा निश्चित करना या निर्वाचन क्षेत्रों के स्थान बांटना है, किसी न्यायालय में कोई आपत्ति न की जा सकेगी।

निर्वाचन-क्षेत्रों को ठीक तरह से विभाजित करना कुछ आसान काम नहीं है। हमारे देश में आर्थिक, सामाजिक आदि कई प्रकार की विभिन्नताएँ हैं। इसलिए प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र की सीमा निर्धारित करते हुए इन दृष्टियों से विचार किया जाना जरूरी है :—

१—आर्थिक हित, २—देहाती और शहरी हित, ३—भाषा, रहन-सहन और संस्कृति की एकता, ४—भौगोलिक एकता, ५—शासकीय सुविधाएं। इन सब बातों का ध्यान रखना बहुत कठिन है। निर्वाचन-

क्षेत्र-निर्धारण समिति के यथेष्ट सावधान रहने पर भी इस विषय में कुछ गलतियाँ होनी सम्भव है। इसलिए आवश्यक है कि वे इस सम्बन्ध में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं से परामर्श लेते हुए काम करें।

मताधिकार का उपयोग—संविधान द्वारा वयस्क मताधिकार की व्यवस्था होने से सर्व-साधारण जनता को राजनैतिक शक्ति तो प्राप्त हो गयी है, पर इसका लाभ तभी है, जब इसका यथेष्ट उपयोग हो। प्रत्येक मतदाता को चाहिए कि उसे विधान-सभा के निर्माण में भाग लेने का जो कार्य सौंपा गया है, उसे वह अपना मत देकर पूरा करे। भारत में बहुत से मतदाता या निर्वाचक निर्वाचन के समय मत देने के लिए नहीं जाते। उदाहरण के लिए मद्रास, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बंगाल, पंजाब तथा आसाम—इन छः प्रान्तों में सन् १६२० में केवल २६ प्रतिशत निर्वाचकों ने अपने मताधिकार का उपयोग किया, १६२३ में ४०, और १६२६ में ४४ प्रतिशत ने। मताधिकार के उपयोग की इस कमी का एक मुख्य कारण यह रहा है कि यहाँ विधान-सभाएँ प्रायः सत्ता-हीन थीं। तथापि जनता की राजनैतिक विषयों में उपेक्षा चिन्तनीय है। सन् १६३७ में जब देश में राजनैतिक जागृति काफी बढ़ी हुई थी, ५५ फीसदी से अधिक मतदाताओं ने अपने मताधिकार का उपयोग नहीं किया था। अब भारत स्वतंत्र हो गया है और हमें नये संविधान को अमल में लाना है, सब मताधिकारियों को अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए।

निर्वाचन निस्पक्ष हों—मताधिकार के उपयोग होने के समान, वरन् उससे भी अधिक महत्व का विषय यह है कि निर्वाचन निस्पक्ष हो, और मत योग्य उम्मेदवार को ही दिए जायँ। प्रायः जिस दल (पार्टी) का शासन होता है, उसी दल के उम्मेदवारों की ओर सरकारी कर्म-चारियों का झुकाव हुआ करता है; वे उनके साथ कुछ रियायतें करने

तथा उन्हें कुछ सुविधाएँ देने की सोचा करते हैं। यह अनुचित है। चुनाव-अधिकारियों को चाहिए कि निर्भय होकर अपना कर्तव्य पालन करें। कोई दल जीते या कोई दल हारे, उन्हें इसकी चिन्ता न करनी चाहिए। वे किसी नागरिक को यह कहने का अवसर न दें कि चुनाव में अधिकारियों ने मतदाताओं पर अनुचित प्रभाव या दबाव डाला।

नागरिकों का कर्तव्य—इस प्रसङ्ग में अधिकारियों की तरह, जनता का भी बहुत उत्तरदायित्व है। कुछ राजनैतिक दल, उम्मेदवार या उनके एजन्ट निर्वाचकों से जाति या धर्म (सम्प्रदाय) आदि के नाम पर अपील करते हैं, वे उन्हें आर्थिक या अन्य प्रलोभन देते हैं, और मारपीट करने या अन्य हानि पहुँचाने का डर दिखाते हैं। कुछ लोग तो इन निन्दनीय कामों पर ऐसे उतर आते हैं कि निर्वाचन शान्ति-पूर्वक नहीं होने पाते। नागरिकों को चाहिए कि मतदाताओं के अपने अधिकार का उपयोग करने में किसी प्रकार बाधक न हों, और उन्हें भरसक सहायता दें।

आजकल राज्यों के बड़े होने के कारण निर्वाचन-क्षेत्र भी बड़े बड़े होते हैं। भारत के राज्यों की विधान-सभाओं के चुनाव के लिए एक-एक निर्वाचन क्षेत्र में चालीस हजार से पचास हजार तक निर्वाचक होंगे। और केन्द्रीय विधान सभा (लोकसभा) के लिए तो ४ लाख से ५ लाख तक होंगे। ऐसी दशा में यह आशंका रहती है कि मतदाता, उम्मेदवार की योग्यता को जाने बिना ही, केवल प्रचार से प्रभावित होकर अपना मत दें। प्रचार में ऐसे खर्चीले ढंग काम में आने लगे हैं कि जिन व्यक्तियों तथा राजनैतिक दलों के पास धन तथा आने-जाने के साधन अधिक होते हैं, उनकी ही जीत की आशा अधिक होती है। प्रायः उम्मेदवार और राजनैतिक दल चुनाव के समय जनता के सामने झूठे वायदे करते और 'सब्ज बाग' दिखाया करते हैं। इन बातों में कोई सार नहीं होता, ये तो

मतदाताओं को फँसाने की चालें होती हैं। निर्वाचकों इनसे सतर्क रहना और खूब सोच समझ कर मत देना चाहिए।

मतदाताओं का उत्तरदायित्व—ऊपर कहा गया है कि मतदाताओं को अपने अधिकार का उपयोग करना चाहिए और अधिकारियों तथा जनता को उनके कर्तव्य-पालन में किसी प्रकार बाधक न होना चाहिए। पर कोई बाहरी बाधा न होने पर भी मतदाता अपना मत देने में गलती कर सकता है, और उसकी गलती से अयोग्य व्यक्ति विधान-सभा का सदस्य चुना जा सकता है। इसका दुष्परिणाम सब नागरिकों को कई वर्ष (अगले निर्वाचन) तक भुगतना पड़ता है। इस प्रकार मतदाता पर यह उत्तरदायित्व है कि वह योग्य उम्मेदवार को ही मत दे; योग्य का अर्थ यह कि वह विधान-सभा में अपना कर्तव्य अच्छी तरह पालन कर सके, किसी विषय पर विचार करते समय उसका दृष्टिकोण साम्प्रदायिक या स्वार्थमय न हो, उसमें लोकसेवा की भावना हो। बहुत से मतदाता इस आवश्यक बात की अवहेलना करके अपने यार-दोस्त, या अपनी जाति-बिरादरी या सम्प्रदाय वाले उम्मेदवार को मत दे देते हैं। केन्द्रीय निर्वाचन में अपने राज्य के उम्मेदवार को, और राज्य सम्बन्धी निर्वाचन में अपने जिले के उम्मेदवार की, सफलता चाहते हैं। भावों की ऐसी संकीर्णता का परित्याग किया जाना चाहिए।

मतदाताओं की शिक्षा—लोकतत्र की सफलता बहुत-कुछ नागरिकों की योग्यता पर निर्भर है। अभी यहां केवल १८ प्रतिशत जनता शिक्षित है। संविधान के अनुसार राज्य ऐसा प्रयत्न करनेवाला है कि सन् १९६० तक, चौदह वर्ष तक की आयु के सब बालकों के लिए निश्शुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था हो जाय। किन्तु साक्षरता ही काफी नहीं है। हमारे नागरिकों को यथेष्ट राजनैतिक शिक्षा भी मिलनी चाहिए। इस ओर अभी बहुत कम ध्यान दिया जाता है। जैसा कि हमने अपनी

'निर्वाचन पद्धति' में कहा है, निर्वाचन के समय उम्मेदवार या उसके एजंट या मित्र आदि तरह-तरह की सूचनाएँ या लेख छपवाते, भाषण दिलाते, तथा अन्य आन्दोलन करते हैं। परन्तु जनसाधारण में इस विषय के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए कुछ विशेष प्रयत्न नहीं किया जाता। इस विषय की जानकारी के लिए पाठकों को सामयिक पत्र-पत्रिकाओं के कुछ लेखों से ही सन्तोष करना पड़ता है; अच्छे उपयोगी ग्रन्थों का प्रायः अभाव है। निर्वाचन-सम्बन्धी शिक्षा का कार्य कुछ व्यक्तियों और संस्थाओं को अपने ऊपर विशेष रूप से लेना चाहिए, वे बारहों महीने लेखों, भाषणों ट्रेक्टों तथा ग्रन्थों द्वारा इस कार्य को करती रहें। अच्छा हो, प्रत्येक गाँव या ग्राम समूह में तथा प्रत्येक नगर में एक-एक निर्वाचक-सभा की स्थापना हो। इन सभाओं का उद्देश्य अपने-अपने क्षेत्र के निर्वाचकों में नागरिक समस्याओं और आवश्यकताओं को जाति-गत या साम्प्रदायिक दृष्टि से न देखकर, उनके सम्बन्ध मे विशुद्ध नागरिक दृष्टिकोण रखने की प्रवृत्ति बढ़ाना, होना चाहिए। यह कार्य बहुत-कुछ मौखिक या जबानी तौर से भी हो सकता है। खासकर जब कि भारतवर्ष में वियासी फीसदी आदमी लिखना पढ़ना नहीं जानते, यहाँ निर्वाचकों की शिक्षा के लिए व्याख्यान, उपदेश, कथा कहानी, और शिक्षाप्रद प्रहसन, नाटक, सिनेमा आदि का विशेष उपयोग होना चाहिए।

मतदान पद्धति; 'एकल संक्रमणीय मत'—अब मत देने की पद्धति के सम्बन्ध में विचार करें। समय-समय पर कई प्रकार की चुनाव-प्रणालियों का आविष्कार और चलन हुआ। इनके गुण-दोषों का विचार हमारी 'निर्वाचन-पद्धति' पुस्तक में किया गया है। यहाँ हम 'एकल संक्रमणीय मत प्रणाली' का परिचय देते हैं, जो नये संविधान में राष्ट्रपति और राज्यपरिषद् के चुनाव के लिये निर्धारित की गयी है, और संभव है संसद् के कानून द्वारा अन्य निर्वाचनों के लिए भी निर्धारित की जाय। इस प्रणाली के अनुसार प्रत्येक मतदाता को यह सूचित करने का अवसर

दिया जाता है कि वह सब उम्मेदवारों में, सबसे अधिक किसे पसन्द करता है, और उससे कम किसे; और इसी प्रकार तीसरे और चौथे आदि नम्बर पर किसे पसन्द करता है। जिस उम्मेदबार को वह सबसे अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '१' लिख देता है; जिस उम्मेदवार को वह दूसरे नम्बर पर पसन्द करता है, अर्थात् शेष उम्मेदवारों में से जिसे वह सबसे अधिक पसन्द करता है, उसके नाम के आगे '२' लिख देता है। इसी प्रकार मतदाता '३', '४', '५', संख्या उन उम्मेदवारों के नाम के सामने लिख देता है, जिन्हें वह इस क्रम से पसन्द करता है। इस प्रकार मतदाता यह सूचित कर सकता है कि सर्व-प्रथम उसके मत का उपयोग किस उम्मेदवार के लिए हो, और यदि उस उम्मेदवार को उसके मत की आवश्यकता न हो (वह उम्मेदवार अन्य मतदाताओं के मतों से ही चुन लिया जाय) तो उस मत का उपयोग किस दूसरे उम्मेदवार के लिए हो; और यदि दूसरे उम्मेदवार को भी उस मत की जरूरत न हो तो किस तीसरे या चौथे उम्मेदवार के लिए उसका उपयोग किया जाय।

उम्मेदवारों की सफलता का हिसाब लगाने के लिए पहले यह देखा जाता है कि किसी उम्मेदवार को कम-से-कम कितने मतों की आवश्यकता है। मतों की इस संख्या को 'कोटा,' 'पर्याप्त संख्या' या 'आनुपातिक भाग' कहते हैं। इसे समझने के लिए कल्पना करो, किसी निर्वाचन-क्षेत्र से दो उम्मेदवारों को चुना जाना है और वहाँ सौ मतदाता हैं तो जिन उम्मेद-वारों को ३४—३४ मत मिल जायँगे, वे सफल हो जायँगे; क्योंकि तीसरे को यदि शेष सब मत भी मिल जायँ तो उसके प्राप्त मतों की संख्या अधिक-से-अधिक ३२ होगी। इस प्रकार इस दशा में पर्याप्त संख्या कुल मतों की तिहाई अर्थात् ३३ से एक अधिक है। निदान, कुल मतों को निर्वाचित होने वाले प्रतिनिधियों की संख्या में एक जोड़ कर, उस से भाग देने से, तथा भजनफल में एक जोड़ देने से 'पर्याप्त संख्या' मालूम

हो जाती है।

इस बात को सूत्र रूप में इस प्रकार कह सकते हैं :—

$$\text{पर्याप्त संख्या} = \frac{\text{मत संख्या}}{\text{प्रतिनिधि संख्या} + १} + १$$

जो उम्मेदवार प्रथम पसन्द के इतने मत प्राप्त कर लेते हैं, जो पर्याप्त संख्या के समान या उससे अधिक हों, वे निर्वाचित घोषित कर दिए जाते हैं। इन चुने हुए व्यक्तियों के जितने मत पर्याप्त संख्या से अधिक होते हैं, उन्हें 'सरप्लस' अथवा फाजिल या अतिरिक्त मत कहा जाता है यह मत अपर्याप्त संख्या के मत वाले उम्मेदवारों में, (एक निर्धारित हिसाब से) बांटे जाते हैं। यदि ऐसा करने पर आवश्यकतानुसार उम्मेदवार निर्वाचित नहीं होते तो पर्याप्त संख्या से कम मत वाले उम्मेदवारों में से जिसके मत सब से कम होते हैं, उसे असफल घोषित करके, उसके प्राप्त मतों का उपयोग उन उम्मेदवारों के लिए किया जाता है, जिनके लिए वे मत दूसरी पसन्द में रखे गए हों। यह क्रिया उस समय तक होती रहती है, जब तक कि जितने प्रतिनिधियों को निर्वाचित करना है, उतने निर्वाचित न हो जायँ।

इस प्रणाली में यह लाभ रहता है कि मतदाता का कोई मत व्यर्थ नहीं जाता, अर्थात् ऐसा नहीं होता कि उसका उपयोग न हो; और, वह मत किसी ऐसे व्यक्ति को भी नहीं मिलता, जिसे उसकी आवश्यकता न हो।

उम्मेदवार की योग्यता; डा० भगवानदास का मत— आधुनिक लोकतंत्रों के संविधानों में एक बड़ा दोष यह होता है कि उनमें उम्मेदवार की यथेष्ट योग्यता निर्धारित नहीं की जाती। हम यह आशा लगाए हुए थे कि भारत के नये संविधान में यह अभाव नहीं रहेगा। खेद है कि यह आशा पूरी नहीं हुई। राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने भी इस

बात पर दुख प्रगट किया है कि संविधान में विधान-सभा के सदस्यों के लिए किसी भी प्रकार की उच्च योग्यता का आग्रह नहीं किया गया।

सुप्रसिद्ध विचारक डा० भगवानदास का बहुत समय से यह मत रहा है कि—

"उम्मेदवार में निम्नलिखित योग्यता (गुण) होनी चाहिए:—

(क) समाज के इन चार मुख्य धर्मों (कार्यों) में से किसी एक का वह विशिष्ट अनुभवी हो—(१) ज्ञान विज्ञान, (२) शासन-कार्य (रक्षा और प्रबन्ध कर्म) (३) धन धान्योत्पादन अर्थात् कृषि, शिल्प, वाणिज्य-व्यापारादि, (४) शरीर श्रम (मजदूरी)।

(ख) सामाजिक जीवन के किसी विभाग में उसने अच्छा काम किया हो, और सद्‌बुद्धि (ईमानदारी, नेकनीयती) और लोक-हितैषिता का सुयश कमाया हो।

(ग) उसके पास इतना अवकाश हो कि धर्म-सभा (विधान-सभा) के काम को अच्छी तरह कर सके और जीविका साधन अथवा धन-संचय के कार्यों से निवृत्त हो चुका हो, पर ऐसी निवृत्ति अनिवार्य न हो।

"धर्म-सभा (विधान सभा) के किसी सदस्य को कोई नकदी पुरस्कार या वेतन, सभा का काम करने के बदले में न दिया जाय पर उस कार्य के लिए उसका जो कुछ विशेष व्यय हो—यथा सफर-खर्च, मकान का किराया आदि—वह सब उसको सरकारी खजाने से, राष्ट्र-कोष से, दिया जाय, और विशेष सम्मान के चिह्न भी उसको दिए जायँ।"

विशेष वक्तव्य—यही व्यवस्था उत्तम है कि कोई व्यक्ति न तो स्वयं किसी संस्था का सदस्य होने के लिए उम्मेदवार बने, और न अपने पक्ष में मत माँगने के लिए स्वयं अथवा अपने एजंटों द्वारा मतदाताओं के दरवाजे खटखटाए। यदि बहुत से निर्वाचक उससे उम्मेदवार होने की

तेरहवाँ अध्याय

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति

राष्ट्रपति राज्य का प्रधान है, कार्यपालिका का नहीं; वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है, शासन नहीं।

—डा० भीमराव अम्बेडकर

संविधान में कोई इस तरह का आयोजन नहीं है, जिससे राष्ट्रपति को मंत्रियों की सलाह माननी ही पड़े, पर यह आशा की जाती है कि एक ऐसी परम्परा इस देश में भी स्थापित हो जायगी, जिससे राष्ट्रपति का स्थान केवल वैधानिक रह जाय।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

नये संविधान सम्बन्धी साधारण बातों का विचार कर चुकने पर अब हम शासन सम्बधी विषयों का व्योरेवार वर्णन करते हैं। संघ का सर्वोच्च अधिकारी उसका राष्ट्रपति होगा। वह निर्वाचित होता है। वैधानिक प्रधान होते हुए भी उसके अधिकार और कार्यक्षेत्र विस्तृत हैं, इसके सम्बन्ध में खुलासा आगे लिखा जायगा।

राष्ट्रपति का निर्वाचन—राष्ट्रपति के निर्वाचन की पद्धति कुछ जटिल है, इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। उसका निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक-मंडल करेगा, जिसमें दो प्रकार के सदस्य होंगे :—

(क) संसद के दोनों सदनों के निर्वाचित सदस्य।

(ख) राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्य।

[संसद और विधान-सभाओं के नामजद सदस्यों को निर्वाचन में मत देने का अधिकार नहीं होगा।]

पहले प्रकार के मतदाताओं के कुल मतों की संख्या उतनी ही होगी, जितनी दूसरे प्रकार के मतदाताओं के कुल मतों की; अर्थात् दोनों प्रकार के निर्वाचकों के कुल मतों की संख्या बराबर होगी। उदाहरणार्थ यदि सब राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों को, राष्ट्रपति के निर्वाचन में ३,००,६५३ मत देने का अधिकार है तो संसद की दोनों सभाओं के निर्वाचित सदस्य भी कुल मिला कर इतने ही मत दे सकेंगे। परन्तु दोनों प्रकार के निर्वाचकों में से प्रत्येक द्वारा दिये जाने वाले मतों की संख्या बराबर नहीं होगी। किसी राज्य की विधान-सभा के सदस्य को कितने मत प्राप्त होंगे, यह जानने की रीति निम्नलिखित उदाहरण से ज्ञात हो जायगी। बम्बई की जनसंख्या २०८,४९,८४० है और यहाँ की विधान-सभा में निर्वाचित सदस्य २०८ हैं (एक सदस्य एक लाख जनता का प्रतिनिधि है) राज्य की कुल जनसंख्या को २०८ से भाग देने से १,००,२३९ भागफल आया, उसमें १००० का भाग देने से जो भाग-फल आए (भागफल में आधे से कम को छोड़ देते हैं, और आधे से अधिक को एक मान लेते हैं), उतने ही मत बम्बई की विधान-सभा के सदस्य को राष्ट्रपति के निर्वाचन में प्राप्त होंगे। उपर्युक्त हिसाब से यह मत-संख्या १०० होती है। स्मरण रहे कि बड़े राज्य की विधान-सभा के सदस्य को, छोटे राज्य की विधान-सभा के सदस्य की अपेक्षा अधिक मत देने का अधिकार होगा, क्योंकि वह छोटे राज्य की विधान सभा के सदस्य की अपेक्षा अधिक जन-संख्या का प्रतिनिधित्व करता है।

संसद की दोनों सभाओं के निर्वाचित सदस्यों में से प्रत्येक कितने मत दे सकता है, इसका हिसाब इस प्रकार लगाया जाता है। सब राज्यों की विधान-सभाओं के निर्वाचित सदस्यों के कुल मतों की संख्या को संसद की दोनों सभाओं के निर्वाचित सदस्यों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर यदि संसद की दोनों सभाओं के निर्वाचित सदस्यों को ३,००,६५३ मत देने का अधिकार हो और निर्वाचित सदस्यों की

संख्या ५००+२३८=७३८ हो तो प्रत्येक सदस्य को ३,००,६५३÷७३८ अर्थात् ४०७ मत देने का अधिकार होगा।

दोनों प्रकार के निर्वाचकों से प्राप्त मतों को जोड़कर राष्ट्रपति के निर्वाचन का फल निकाल लिया जावेगा। राष्ट्रपति का निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व प्रणाली के अनुसार होगा। मत-गणना एकल-संक्रमणीय-मत पद्धति * के अनुसार की जायगी, और मतदान सर्वथा गुप्त होगा।

कुछ राजनीतिज्ञों का, जिनमें प्रोफेसर शाह का नाम मुख्य है, मत था कि राष्ट्रपति का निर्वाचन इस प्रकार अप्रत्यक्ष रूप से न होकर प्रत्यक्ष मताधिकार के आधार होना चाहिए। परन्तु व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण उनका मत स्वीकार न किया जा सका। भारत में प्रौढ़ मताधिकार होने से लगभग अठारह करोड़ मतदाता होंगे, इतने व्यक्तियों के मतदान की व्यवस्था करना कुछ सरल कार्य नहीं है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति केवल वैधानिक प्रधान है, उसका निर्वाचन परोक्ष होने से कोई विशेष सैद्धान्तिक हानि भी नहीं।

अन्तर्कालीन व्यवस्था—संविधान २६ जनवरी १९५० से प्रयोग में आया। उस समय संसद के दोनों सदनों और राज्यों की विधान-सभाओं का संगठन संविधान के अनुसार नहीं था। इस लिए राष्ट्रपति का निर्वाचन उपरोक्त रीति से नहीं किया जा सकता था। संविधान में इस अन्तर्कालीन अवधि यानी नवीन निर्वाचन होने तक के लिए राष्ट्रपति चुनने का अधिकार तत्कालीन संसद को दिया गया; उसने डा० राजेन्द्रप्रसाद को चुना।

राष्ट्रपति निर्वाचित होने के लिए योग्यता—राष्ट्रपति पद पर निर्वाचित होने के लिए उम्मेदवार के लिए आवश्यक है कि (१)

---

* यह पद्धति पिछले अध्याय में समझाई जा चुकी है।

वह भारत का नागरिक हो (२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो और (३) लोकसभा का सदस्य निर्वाचित होने की योग्यता रखता हो। इसके साथ ही यह भी आवश्यक होगा कि वह भारत सरकार अथवा किसी राज्य की सरकार या किसी ऐसे स्थानीय या अन्य अधिकारी के अधीन, जिस पर इन सरकारों में से किसी का भी नियंत्रण हो, कोई लाभ का पद ग्रहण न करता हो। संघ के राष्ट्रपति, उप-राष्ट्रपति, किसी राज्य के राज्यपाल (गवर्नर) या राजप्रमुख, संघ अथवा किसी राज्य के मंत्री पर उपरोक्त प्रतिबंध लागू न होगा। ये व्यक्ति राष्ट्रपति के पद के लिए खड़े हो सकेंगे।

राष्ट्रपति निर्वाचित होने वाला व्यक्ति संसद के किसी सदन का या किसी राज्य के विधान मंडल का सदस्य नहीं रह सकेगा। यदि निर्वाचन से पूर्व कोई व्यक्ति इनमें से किसी का सदस्य था तो निर्वाचित होने की तिथि से उसकी सदस्यता समाप्त हो जायगी। इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति अन्य किसी आर्थिक लाभ का पद ग्रहण नहीं कर सकेगा। [यह प्रतिबंध इस लिए रखा गया है कि राष्ट्रपति पर देश के पूंजीपति आदि अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए अपना प्रभाव न डाल सकें।]

जो व्यक्ति राष्ट्रपति है अथवा रह चुका है, वह राष्ट्रपति के पद के लिए पुनः कितनी ही बार निर्वाचित हो सकेगा। [इस व्यवस्था में साधारण दृष्टि से कोई दोष प्रतीत नहीं होता, तथापि इस से तानाशाही की उत्पत्ति हो सकती है। अच्छा होता, जो व्यक्ति एक बार राष्ट्रपति रह चुके, उसे दुबारा यह पद मिलने की व्यवस्था न कर, दूसरे व्यक्तियों को इस पद की प्राप्ति का अधिक अवसर दिया जाता।]

राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा शपथ—राष्ट्रपति का मासिक वेतन १०,००० रु० होगा। इसके अतिरिक्त उसे राज्य की ओर से रहने के लिए निवास स्थान निश्शुल्क दिया जायगा। राष्ट्रपति को भत्ते आदि

की सुविधाएँ उस प्रकार की दी जावेंगी जैसा कि संसद विधि द्वारा निश्चित करे। संसद के इस विषय की विधि निर्माण करने से पूर्व तक राष्ट्रपति को वे सब सुविधाएँ आदि प्रदान की जावेंगी, जो पहले गवर्नर जनरल को दी जाती रही थीं। राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता तथा अन्य सुविधाएँ उसके कार्यकाल में नहीं घटाई जा सकेंगी।

राष्ट्रपति अपना पद ग्रहण करने से पूर्व भारत के मुख्य न्यायाधिपति के सामने निर्धारित रूप में शपथ ग्रहण करके उस पर हस्ताक्षर करेगा। शपथ का आशय यह होगा कि मैं अपनी पूर्ण योग्यता से संविधान और विधि की रक्षा करूँगा और भारत की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।

राष्ट्रपति का कार्यकाल (पदावधि)—साधारण दशा में राष्ट्रपति का कार्यकाल उसके पदग्रहण की तिथि से पांच वर्ष का होगा। इसमें निम्नलिखित दशाओं में अन्तर भी पड़ सकता है :—

(क) राष्ट्रपति पाँच वर्ष की अवधि के अन्दर त्यागपत्र देकर अपने पद से हट सकता है। इस प्रकार का त्यागपत्र वह उप-राष्ट्रपति को संबोधित करके और उस पर अपने हस्ताक्षर करके देगा। उपराष्ट्रपति इस त्यागपत्र की सूचना लोकसभा के अध्यक्ष को देगा।

(ख) राष्ट्रपति यदि संविधान का उल्लंघन करे तो उस पर पाँच वर्ष की अवधि के अन्तर्गत ही महाभियोग लगाकर उसे अपने पथ से हटाया जा सकता है। राष्ट्रपति पर महाभियोग लगाने का अधिकार संसद के किसी भी सदन को है। जो सदन राष्ट्रपति पर महाभियोग लगायेगा, उसे इस आशय के संकल्प को उपस्थित करने के १४ दिवस पूर्व ही लिखित सूचना देनी होगी और उस सूचना पर सदन के कम-से-कम चौथाई सदस्यों के इस आशय के सूचक हस्ताक्षर होंगे कि वे सदन में इस प्रकार के महाभियोग का संकल्प उपस्थित करना चाहते हैं। जब संकल्प को सदन के दो-तिहाई से अधिक सदस्य मतप्रदान करके पास

कर देंगे तो वह दूसरे सदन में जाँच और अनुसंधान के लिए भेज दिया जायगा। दूसरा सदन इस दोषारोप का अनुसंधान करेगा। राष्ट्रपति को स्वयं या अपने प्रतिनिधि को इस अनुसंधान में उपस्थित रखने का अधिकार होगा। यदि इस सदन में भी दोषारोप को सिद्ध करने वाला संकल्प दो-तिहाई बहुमत से पास हो जाता है तो राष्ट्रपति उसी तिथि से अपने पद से अपदस्थ समझा जायगा। महाभियोग सम्बन्धी संसद के निर्णय की अपील किसी भी न्यायालय में न हो सकेगी। और, राष्ट्रपति के कार्य-काल समाप्त होने से पूर्व ही नवीन राष्ट्रपति का निर्वाचन कर लिया जायगा।

यदि राष्ट्रपति की मृत्यु, त्यागपत्र, अथवा उस पर महाभियोग साबित होने पर, कार्यकाल की समाप्ति के पूर्व ही उसका स्थान रिक्त हो जावे तो जल्दी से जल्दी, छः मास के अन्दर ही, नया राष्ट्रपति निर्वाचित कर लिया जायगा और नव निर्वाचित राष्ट्रपति का कार्यकाल पांच वर्ष ही होगा। जब तक नवीन राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं होगा, उपराष्ट्रपति ही राष्ट्रपति का कार्य करेगा।

(ग) राष्ट्रपति की मृत्यु से उसका पदरिक्त हो सकता है।

(घ) राष्ट्रपति अपने पद पर, अपना कार्यकाल समाप्त होने पर भी, उस समय तक बना रहेगा जब तक कि उसका नवीन उत्तराधिकारी उसका पद ग्रहण नहीं कर लेता।

राष्ट्रपति के अधिकार—संसार के समस्त संघ-शासन-प्रणाली वाले देशों के प्रधानों की तुलना में भारतीय संघ के राष्ट्रपति के अधिकारों का क्षेत्र कहीं अधिक है। ये अधिकार दो प्रकार के हैं:—देश की साधारण स्थिति में, और संकट काल में। साधारण स्थिति सम्बन्धी अधिकारों के पाँच भेद किए जा सकते हैं। इस प्रकार राष्ट्रपति को कुल मिलाकर निम्नलिखित छः प्रकार के अधिकार हैं —

१—कार्यपालिका सम्बन्धी अर्थात् शासन सम्बन्धी अधिकार।

२—विधायनी शक्ति अर्थात् कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार।

३—वित्तीय अर्थात् अर्थ सम्बन्धी अधिकार।

४—न्याय सम्बन्धी अधिकार।

५—राष्ट्रपति के विशेषाधिकार।

६—संकटकालीन अधिकार।

(१) कार्यपालिका संबन्धी अधिकार—संघ की कार्यपालिका शक्ति राष्ट्रपति में निहित होगी; इस शक्ति के क्षेत्र में वे समस्त विषय होंगे, जिनके सम्बन्ध में संसद को विधि निर्माण करने का अधिकार है और ऐसे अधिकार भी होंगे जो भारत सरकार को किसी संधि या समझौते के आधार पर प्राप्त हुए हैं। राष्ट्रपति देश की समस्त सेनाओं का प्रधान है और इस नाते उसे युद्ध की घोषणा करने और सन्धि करने का भी अधिकार है। राष्ट्रपति देश का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिए नियम निर्माण करेगा और मंत्रियों के कार्य का विभाजन भी करेगा। संघ के कार्यपालिका सम्बन्धी सब कार्य राष्ट्रपति के नाम पर होंगें।

संघ के सारे प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा ही होगी। इन अधिकारियों के संबन्ध में प्रसंगानुसार आगे प्रकाश डाला जायगा। भारतीय संघ का प्रधानमंत्री तथा उसकी सलाह से अन्य मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के राज्यपालों, राजप्रमुखों, उच्चतम न्यायालयके न्यायाधीशों की, निर्वाचन-कमिश्नरों की, राज्य परिषद के १२ सदस्यों की और आडीटर जनरल, एटार्नी जनरल तथा अन्य अनेक पदाधिकारियों की भी नियुक्ति राष्ट्रपति ही करेगा।

(२) कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार राष्ट्रपति को संसद के अधिवेशन को आमंत्रित करने, उसे स्थगित करने तथा संसद को भंग करने का अधिकार है।

संसद के दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत विधेयक यानी बिल राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए उसके संमुख उपस्थित किए जाने चाहिएँ। उसकी

स्वीकृति के बगैर, वे विधि (कानून) न बन सकेंगे। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह धन-विधेयक को छोड़कर किसी भी विधेयक पर अपनी स्वीकृति देने से इन्कार कर दे। परन्तु यदि ऐसा विधेयक संसद के दोनों सदनों द्वारा संशोधन करके या बगैर संशोधन किए दुबारा पास कर दिया जाय तो राष्ट्रपति को उस पर स्वीकृति देनी ही होगी। सब प्रकार के धन-विधेयक और अर्थ विधेयक संसद में राष्ट्रपति की सिफारिश के बगैर प्रस्तावित न किये जा सकेंगे।

किसी भी समय जब संसद का अधिवेशन न हो रहा हो, राष्ट्रपति को अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी करने का अधिकार होगा और इस अध्यादेश का प्रभाव वैसा ही होगा, जैसा संसद द्वारा स्वीकृत अधिनियमों (एक्ट) का। इस प्रकार के समस्त अध्यादेश संसद के सामने रखे जायंगें। ये संसद के अधिवेशन के आरम्भ होने की तिथि से छः सप्ताह तक ही जारी रहेंगे और तत्पश्चात रद्द हो जायगें। यदि संसद छः सप्ताह बीतने के पूर्व ही इनको रद्द करने के संबन्ध में प्रस्ताव पास दे तो ये उससे पूर्व भी रद्द हो जावेंगे। ऐसे अध्यादेश उन्हीं विषयों के सम्बन्ध में जारी किये जा सकेंगे, जिन पर संसद को विधि-निर्माण करने का अधिकार है।

राष्ट्रपति को राज्यों के विधान-मंडलों के सम्बन्ध में निम्नलिखित अधिकार हैं—

१—राज्यों के विधान-मंडलों द्वारा स्वीकृत निम्नलिखित विषयों सम्बन्धी विधि राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिए रखी जावेंगी और उसकी स्वीकृति प्राप्त होने पर ही अमल में आ सकेंगी—(अ) राज्य द्वारा सम्पत्ति प्राप्त करने के लिए बनाई हुई विधि, (आ) वे विधि जो ऐसे विषयों पर बनाई गई हैं, जिन पर संसद भी विधि बना सकती है और जिनका संसद की विधियों से विरोध हो, तथा (इ) जिन वस्तुओं को संसद ने नागरिकों के जीवन के लिए आवश्यक ठहराया हो, उनके क्रय-विक्रय पर कर लगाने वाली विधि।

२—किसी राज्य के अन्दर या दूसरे राज्यों के साथ व्यापार आदि पर प्रतिबंध लगाने वाले विधेयकों को राज्य की विधान-सभा में प्रस्तुत करने के पहले राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक होगी।

३—संकट की उद्घोषणा द्वारा राष्ट्रपति राज्य के विधान-मंडलों के अधिकार अपने हाथ में लेकर संसद् को सौंप सकता है।

(३) वित्त या अर्थ सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह प्रत्येक आर्थिक वर्ष के प्रारंभ में एक आर्थिक विवरण, जिसमें संघ को उस वर्ष की अनुमानित आय-व्यय का ब्योरा हो, संसद् के सन्मुख रखे। संसद् से किसी भी मद के लिए धन की मांग राष्ट्रपति की सिफारिश पर ही की जा सकती है।

राष्ट्रपति को आय-कर से प्राप्त रकम को संघ तथा राज्यों के बीच वितरण करने का अधिकार है। उसे जूट के निर्यात-कर से प्राप्त आय का कुछ भाग आसाम, बिहार, उड़ीसा तथा पश्चिमी बंगाल को उनके हिस्से के रूप में देने का अधिकार है। राष्ट्रपति को एक वित्तायोग (अर्थ कमीशन) नियुक्त करने का अधिकार है, जो राज्यों की सहायता तथा करों की आय-वितरण के सम्बन्ध में व्यवस्था करेगा, ऐसा कमीशन संविधान लागू होने के दिन (२६ जनवरी १९५०) से दो वर्ष के अन्दर नियुक्त कर देना होगा। इसके पश्चात् प्रति पाँच वर्ष के उपरांत नये कमीशन की नियुक्ति की जाया करेगी।

(४) न्याय सम्बन्धी अधिकार—राष्ट्रपति को क्षमा-प्रदान करने का अधिकार है। इस अधिकार के अंतर्गत वह निम्नलिखित अवस्थाओं में किसी दण्ड-प्राप्त व्यक्ति को पूर्ण रूप से क्षमा कर सकता है, उसके दण्ड को कुछ काल के लिए स्थगित कर सकता है, दण्डाज्ञा को रुकवा सकता है और दण्ड को कम भी कर सकता है—(क) जब दण्ड सैनिक-न्यायालय ने दिया हो। (ख) जब दंड संघ के किसी

कानून का उल्लंघन करने के लिए दिया गया हो, (ग) जब मृत्यु-दंड दिया गया हो।

(५) राष्ट्रपति के विशेषाधिकार—राष्ट्रपति अपने शासन सम्बन्धी और राजकीय कार्यों के लिये न्यायालय के समक्ष उत्तरदायी न होगा। उसके विरुद्ध उसके कार्यकाल में किसी भी न्यायालय में कोई कार्यवाही न की जा सकेगी। उसकी गिरफ्तारी के लिए वारंट जारी न किया जा सकेगा। उसके विरुद्ध, उसके द्वारा व्यक्तिगत रूप से किये गये किसी कार्य के सम्बन्ध में, कोई दीवानी कार्यवाही उस समय तक नहीं की जायगी, जब तक कि उसे दो माह पूर्व लिखित सूचना न दी गयी हो।

(६) संकटकालीन अधिकार—राष्ट्रपति को संकटकाल का सामना करने के लिए बहुत वृहत् और प्रभावपूर्ण अधिकार प्रदान किए गए हैं। संकट तीन प्रकार के हो सकते हैं (क) युद्ध या युद्ध की संभावना अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न संकट। (ख) राज्यों में संविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की स्थिति से उत्पन्न संकट। (ग) आर्थिक संकट।

(क) युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति के समय—राष्ट्रपति को यदि किसी समय यह विश्वास हो जाय कि भारत या उसके किसी भाग की सुरक्षा युद्ध, वाह्य आक्रमण अथवा आन्तरिक अशान्ति से संकट में है तो वह संकटकाल की घोषणा करके समस्त देश का अथवा देश के किसी भाग का शासन अपने हाथ में ले सकता है। वह सङ्कटकाल की घोषणा उस दशा में भी करने का अधिकारी होगा, जब उसे विश्वास हो जाय कि निकट भविष्य में युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति से देश की सुरक्षा का खतरा उत्पन्न हो सकता है। [इस घोषणा को राष्ट्रपति कभी भी दूसरी घोषणा द्वारा रद्द कर सकता है।] ऐसी घोषणा घोषित होने के पश्चात् संसद के दोनों सदनों के सन्मुख रखी जायगी और दो मास तक लागू रहेगी, यदि इसी बीच संसद ने उस पर स्वीकारात्मक सम्मति

दे दी तो वह दो मास के पश्चात् भी लागू रहेगी। यदि इस प्रकार की घोषणा उस समय की गयी, जब कि लोकसभा भङ्ग कर दी गई हो या वह दो मास की अवधि के भीतर ही भङ्ग हो जाय और लोकसभा के भङ्ग होने से पूर्व इस घोषणा पर उसकी स्वीकृति न प्राप्त हो सके और केवल राज्य-परिषद की स्वीकृति प्राप्त हो तो घोषणा नई लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के दिवस से ३० दिन तक लागू रहेगी और उसके बाद रद्द हो जावेगी। परन्तु यदि नई लोकसभा इस ३० दिन के अन्दर ही उस पर स्वीकारात्मक सम्मति दे दे तो वह उसके बाद भी लागू रहेगी।

संकटकाल की घोषणा के द्वारा राष्ट्रपति भारत के संघीय संविधान को एकात्मक रूप में बदल सकेगा। जब तक यह घोषणा लागू रहेगी तब तक (१) संसद को राज्यों के सूची में दिए हुए विषयों पर सारे देश अथवा उसके किसी भी भाग के लिए विधि निर्माण करने का अधिकार होगा और किसी राज्य द्वारा बनाई हुई ऐसी विधि, जो इस घोषणा-काल में संसद द्वारा निर्मित विधि के विरुद्ध होगी, अवैध या शून्य समझी जावेगी। (२) संघ सरकार किसी भी राज्य को आदेश दे सकेगी कि वह अपनी कार्यपालिका शक्ति का किस प्रकार प्रयोग करे। (३) घोषणा-काल में निम्नलिखित मूल-अधिकार स्थगित रहेंगे— (अ) भाषण और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, (आ) शान्ति-पूर्वक, बिना हथियार के सभा करने की स्वतन्त्रता, (इ) समुदाय और संघ बनाने की स्वतन्त्रता, (ई) भारत की भूमि में किसी स्थान में रहने या बसने की स्वतन्त्रता, (उ) संपत्ति प्राप्त करने, रखने तथा बेचने की स्वतन्त्रता, और (ऊ) किसी भी व्यवसाय-पेशा अथवा व्यापार करने की स्वतन्त्रता। (४) राष्ट्रपति को अधिकार होगा कि मूल अधिकारों को कार्यान्वित करने के लिए किसी व्यक्ति को उच्चतम तथा अन्य न्यायालयों में जाने के अधिकार को स्थगित कर दे। (५) राष्ट्र-

पति को यह भी अधिकार होगा कि संघ और राज्यों के बीच राजस्व-वितरण के सम्बन्ध के प्रार्थना पत्र-स्वीकार न करे।

यह कहा जा सकता है कि युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति से उत्पन्न संकट का सामना करने के ये अधिकार बहुत ही वृहत् और व्यापक हैं। यह आशा की जाती है कि राष्ट्रपति इनका उपयोग मंत्रि परिषद के परामर्श से ही करेगा, परन्तु संविधान में ऐसा कोई बन्धन नहीं रखा गया है।

(ख) राज्यों में संविधानिक तंत्र के विफल हो जाने की दशा में—यदि राष्ट्रपति को किसी राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख की सूचना मिले कि राज्य में संविधान के अनुसार शासन-कार्य चलाना असंभव हो गया है और उसे यह विश्वास हो जाय कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, तो वह घोषणा द्वारा (१)—उस राज्य के विधान-मण्डल एवं उच्च न्यायालय के अधिकारों को छोड़कर राज्य के समस्त कार्य और अधिकारों को अपने हाथ में ले सकता है। (२) यह आदेश दे सकता है कि उस राज्य के विधान-मंडल का काम संसद द्वारा या उसके आदेश से किया जायगा। इस घोषणा को राष्ट्रपति कभी भी दूसरी घोषणा द्वारा रद्द कर सकता है।

यह घोषणा संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो मास तक लागू रहेगी; परन्तु यदि इस बीच में संसद ने उसे स्वीकार कर लिया तो वह दो मास के पश्चात भी लागू रहेगी। संसद द्वारा स्वीकृत किए जाने के बाद यह घोषणा छः मास रहेगी बशर्ते कि इसे छः मास के पूर्व ही रद्द न कर दिया जाय। यदि संसद छः मास के बाद भी इसे स्वीकार करती जाय तो इस प्रकार की घोषणा अधिक से अधिक तीन वर्ष तक लागू रह सकेगी। यदि इस प्रकार की घोषणा कभी ऐसे समय पर की गयी जब कि लोकसभा भंग कर दी गई हो या उसका भंग दो मास की अवधि के भीतर ही हो जाय और भंग होने से पहले लोकसभा की स्वीकृति उस पर प्राप्त न हो सके और केवल राज्य-परिषद की स्वीकृति प्राप्त हो, तो

घोषणा नई लोकसभा के प्रथम अधिवेशन के दिन से ३० दिन तक लागू रहेगी और उसके बाद रद्द हो जायगी; परन्तु यदि ३० दिन की अवधि के भीतर ही लोकसभा उसे स्वीकार कर ले तो वह उसके बाद भी लागू रहेगी। इसी प्रकार की व्यवस्था उस समय काम में लायी जावेगी जब घोषणा दोनों सभाओं में पास हो जाय और लोकसभा इसके पश्चात् छः मास के अन्दर भंग हो जावे।

स्मरण रहे कि ऐसी घोषणा करने के लिए राष्ट्रपति को राज्यपाल या राजप्रमुख की सूचना की प्रतीक्षा करने की आवश्यकता नहीं है, वह स्वयं ही ऐसी घोषणा कर सकता है। किसी राज्य में संविधानिक तंत्र सफल रूप से चल रहा है या नहीं, इसका निर्णय राष्ट्रपति करेगा। संविधान द्वारा संघ सरकार को राज्यों की सरकार को जो निर्देश देने का अधिकार है, यदि उन का पालन ठीक प्रकार से न हो तो राष्ट्रपति का यह मानना विधि-संगत होगा कि राज्य में संविधान-तंत्र असफल हो चुका है और वह इस आशय की घोषणा करके उस राज्य का शासन अपने हाथ में ले सकेगा। इस प्रकार राष्ट्रपति को राज्यों को दबाने के बड़े बृहत् और प्रबल अधिकार प्राप्त हैं।

सन् १९३५ के संविधान के अनुसार ऐसी परिस्थिति में गवर्नर को यह अधिकार था कि वह राज्य के विधान-मंडल का कार्य अपने हाथ में ले ले। नये संविधान में यह अधिकार राज्यपालों या उनकी कार्यपालिका को न देकर संसद को दिया गया है। यहाँ यह न भूलना चाहिए कि संसद में उस राज्य का भी प्रतिनिधित्व होता है। इस प्रकार यह व्यवस्था इस विचार से की गई है कि संविधानिक तंत्र के असफल होने की दशा में उस राज्य के सम्बन्ध में विधि-निर्माण सारे देश के प्रतिनिधियों द्वारा होना चाहिए, न कि केवल उस राज्य के प्रतिनिधियों द्वारा।

संसद इस स्थिति में विधि-निर्माण का अधिकार राष्ट्रपति, राज्यपाल या अन्य किसी अधिकारी को भी दे सकती है। इस प्रकार कार्यपालिका

किसी राज्य के सम्बन्ध में विधि-निर्माण तभी कर सकेगी जब कि संसद उसे ऐसा करने का अधिकार प्रदान कर दे ।

यह निर्विवाद है कि उपरोक्त अधिकारों का प्रयोग बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए, अन्यथा राज्यों की आन्तरिक स्वतंत्रता नष्ट हो जावेगी। संविधान-निर्माताओं ने यह आशा प्रकट की कि राष्ट्रपति संकट की घोषणा बहुत सोच-विचार करके करेगा।

(ग) वित्तीय अर्थात् आर्थिक संकट--यदि राष्ट्रपति को यह विश्वास हो कि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई है, जिसमें भारत की आर्थिक स्थिरता एवं साख को खतरा है तो वह इस आशय की घोषणा कर सकेगा। [यह घोषणा बाद में किसी भी दूसरी घोषणा से रद्द की जा सकेगी।] यह घोषणा संसद के दोनों सदनों के सामने रखी जायगी और दो माह तक लागू रहेगी। परन्तु यदि इस बीच में संसद ने उसे स्वीकार कर लिया तो वह दो माह के बाद भी लागू रहेगी। यदि ऐसी घोषणा उस समय की गयी जब कि लोकसभा भंग कर दी गयी हो या वह दो माह के भीतर भंग हो जाय और उसके भंग होने के पहले घोषणा पर स्वीकृति प्राप्त न हो सके तो वही व्यवस्था काम में लायी जायगी, जो युद्ध अथवा आन्तरिक अशान्ति के संकट की घोषणा के लिए निर्धारित है।

जब तक यह घोषणा लागू रहेगी, राष्ट्रपति और संघ की सरकार किसी भी राज्य को आर्थिक मामलों में निश्चित सिद्धान्तों का पालन करने का निर्देश दे सकेगी। इन निर्देशों के अन्तर्गत राष्ट्रपति (१) सरकारी नौकरों का वेतन कम करने (२) राज्यों के विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत धन-विधेयक तथा वित्त या अर्थ विधेयक को अपनी स्वीकृति के लिए रोक रखने का आदेश दे सकता है।

राष्ट्रपति के अधिकारों की आलोचना—राष्ट्रपति के अधिकारों के विवेचन से यह स्पष्ट हो गया है कि उसके सम्पूर्ण अधिकारों का वर्गीकरण दो भागों में किया जा सकता है :—

(१) जिनका उपयोग वह देश की साधारण दशा और दैनिक शासन में करेगा।

(२) जिनका उपयोग वह संकट उपस्थित होने पर करेगा।

देश के दैनिक और साधारण शासन में राष्ट्रपति मंत्रि-परिषद के पारमर्श के अनुसार ही कार्य करेगा और व्यर्थ के हस्तक्षेप नहीं करेगा। यदि वह ऐसा करना भी चाहे तो वह व्यावहारिक न होगा, क्योंकि मंत्रि-परिषद लोकसभा के प्रति संयुक्त रूप से उत्तरदायी होगी और मंत्रि-परिषद को लोकसभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त होगा। यदि राष्ट्रपति देश के दैनिक शासन में ऐसे मंत्रि-परिषद के परामर्श की अवहेलना करता है तो मंत्रिपरिषद को वाध्य हो कर त्याग-पत्र देना होगा। मंत्रिपरिषद के पदरिक्त होने की दशा में राष्ट्रपति दूसरे मंत्रि-परिषद का निर्माण करना चाहेगा। ऐसा करने में राष्ट्रपति सफल न हो सकेगा, क्योंकि लोकसभा का बहुमत तो उस मंत्रि-परिषद को प्राप्त था, जिसने वाध्य हो कर अपना पदरिक्त किया।

असाधारण परिस्थितियों में जब देश की शान्ति और सुरक्षा आदि के लिए संकट उपस्थित हो तो राष्ट्रपति का अपने विवेक से कार्य करने का अधिकार उचित ही है, अन्यथा कोई उपाय तुरन्त कार्यान्वित न किया जा सकेगा। विचार-विमर्श और वाद-विवाद में बहुत अधिक समय निकल जाना स्वाभाविक है और इसके फल-स्वरूप राष्ट्र पर गम्भीर विपत्ति भी आ सकती है। यह आशा की जाती है कि संकट-कालीन स्थिति में राष्ट्रपति राष्ट्र के हित को सर्वोपरि रखकर अपने कर्तव्य का सर्व-श्रेष्ठ तरीके से पालन करेगा, और वह अपने कर्तव्य का पालन इस बात को भी ध्यान में रखकर करेगा कि सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता का विश्वास उस पर है।

राष्ट्रपति के वृहत् और प्रभावपूर्ण अधिकारों को देखकर यह आशंका होती है कि वह कभी भी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करके अधिनायक

(तानाशाह) बन सकता है। इस स्थिति से बचाव करने के लिए राष्ट्रपति पर संसद द्वारा महाभियोग लगाकर उसे अपदस्थ करने की व्यवस्था रखी गई है। यह व्यवस्था भी राष्ट्रपति को अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने पर प्रतिबंध लगाती रहेगी।

राष्ट्रपति और गवर्नर-जनरल के अधिकारों की तुलना— राष्ट्रपति के अधिकारों का विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रपति को संविधान के अन्तर्गत करीब-करीब वही अधिकार प्रदान किए गए हैं जो सन् १६३५ के अधिनियम (एक्ट) के अन्तर्गत गवर्नर जनरल को प्राप्त थे। राष्ट्रपति के संकटकालीन अधिकारों और गवर्नर जनरल के अध्यादेश जारी करने के अधिकारों में बहुत साम्य है। अन्तर केवल इतना है कि नवीन संविधान में संसद को प्रधानता दी गई है, जब कि गवर्नर जनरल के विशेषाधिकारों के सम्मुख तत्कालीन केन्द्रीय विधान-मंडल की शक्ति नगन्य थी। यह भेद होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति और संघ की कार्यपालिका के सम्बन्ध में नवीन संविधान वस्तुतः सन् १६३५ ई० के अधिनियम का परिवर्तित रूप है। यहाँ यह न भूलना चाहिए कि सन् १६३५ के अधिनियम के अन्तर्गत राज्य की प्रभुता ब्रिटेन की संसद में थी और अब राज्य की प्रभुता जनता में स्थित है। गवर्नर जनरल ब्रिटिश पार्लिमेंट के प्रति उत्तरदायी हुआ करता था। वह भारतीय हितों की अपेक्षा ब्रिटेन के हितों को कहीं अधिक महत्व देता था। राष्ट्रपति भारतीय जनता का प्रतिनिधि है और भारतीय जनता का हित ही उसके लिए सर्वोपरि है। उस समय यदि गवर्नर जनरल अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता था तो यहाँ का तत्कालीन केन्द्रीय विधान-मंडल उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकता था, परन्तु यदि आज राष्ट्रपति संसद की इच्छा के विरुद्ध अपने अधिकारों का दुरुपयोग करे अथवा संविधान का अतिक्रमण करे तो संसद उस पर महाभियोग लगाकर उसे उसके पद से हटा सकती है। इस प्रकार कोई भी राष्ट्रपति, जो संविधान के शब्दों

और उसकी भावना को तथा अपनी प्रतिज्ञा को तनिक भी महत्व देगा, साधारण दशा में मंत्रिपरिषद के परामर्श के विरुद्ध कोई कार्य नहीं करेगा, क्योंकि मंत्रि-परिषद के परामर्श के विरुद्ध कार्य करने का अर्थ जनता की इच्छा के विरुद्ध कार्य करना होगा।

उपरोक्त सब बातों से यह निष्कर्ष निकालना सर्वथा भूल होगी कि साधारण दशा में राष्ट्रपति वैधानिक प्रधान से अधिक कुछ नहीं होगा। यदि कोई असाधारण व्यक्तित्व वाला व्यक्ति राष्ट्रपति के पद पर आरूढ़ हो तो वह निश्चित रूप से मंत्रि-परिषद के निर्णयों को प्रभावित करने में समर्थ होगा। इसका अर्थ यह है कि राष्ट्रपति संघ के अधिकार-क्षेत्र के समस्त मामलों को बहुत कुछ अपनी इच्छानुसार करा सकेगा। संविधान द्वारा संघ का अधिकार-क्षेत्र अत्यन्त विशाल है। राष्ट्रपति को प्रधान मंत्री की नियुक्ति का भी अधिकार होगा और यदि संसद में किसी समय दो से अधिक राजनैतिक दल होंगे और भाग्यवश कोई एक राजनैतिक दल अपना निश्चित बहुमत लोकसभा में रखने में समर्थ न हुआ तो राष्ट्रपति को किसी भी दल के नेता को मंत्रि-परिषद के निर्माण करने के लिए निमंत्रित करने की स्वतन्त्रता होगी। इस प्रकार वह मंत्रि-परिषद के संगठन और शासन की नीति को स्थिर करने में एक बहुत बड़ी सीमा तक समर्थ होगा।

राष्ट्रपति के पद का महत्व—भारत का राष्ट्रपति साधारणतया वैधानिक प्रधान है, असली कार्यपालिका शक्ति तो मंत्रि-परिषद के हाथ में है। उसके अधिकारों की व्याख्या करते हुए डा० अम्बेडकर ने कहा था कि 'वह राज्य का प्रधान है, कार्यपालिका का नहीं, वह राज्य का प्रतिनिधित्व करता है शासन नहीं।' राष्ट्रपति की ऐसी स्थिति देखकर स्वभावतः यह प्रश्न उठ खड़ा होता है कि राष्ट्रपति के पद का क्या महत्व है। यदि संविधान में उसका पद न रखा जाता तो क्या कमी आ जाती?

राष्ट्रपति द्वारा जो महत्वपूर्ण कार्य संपादित किए जाते हैं, उनसे उसका महत्व स्पष्ट हो जायगा ।

राष्ट्र का प्रतीक—साधारण आदमी स्वभावतः व्यक्ति-पूजक होता है । इसीलिए जनता किसी व्यक्ति को ही राष्ट्र का प्रतीक मान कर अपना सम्मान प्रगट करती है । व्यावहारिक दृष्टि से यह आवश्यक भी है । राज्य के आदेशों, आज्ञाओं आदि का सर्व-साधारण तभी पालन करते हैं, जब ऐसा करना वे अपना कर्तव्य समझते हैं और उनके प्रति उनकी श्रद्धा होती है । इसीलिए समस्त आज्ञाएँ एवं अध्यादेश राष्ट्रपति के नाम से ही घोषित किए जाते हैं । राष्ट्र का प्रतीक होने से राष्ट्रपति अनजाने ही देश के नागरिकों में एकता, संगठन, त्याग, देश-प्रेम एवं अपने संविधान के प्रति आदर का भाव संचारित करता है ।

संक्रमण-काल में स्थायित्व—यदि कभी देश में दो से अधिक राजनैतिक दल हुए और किसी एक दल का संसद में स्पष्ट बहुमत न हुआ तो मंत्रिपरिषद समय-समय पर बदलेगी । एक मंत्रिपरिषद के त्याग-पत्र देने पर दूसरी मंत्रिपरिषद को निमंत्रित करने और कार्य-भार सम्हलवाने का कार्य राष्ट्रपति ही करेगा । यदि कभी बीच में कुछ समय तक मंत्रिपरिषद न बन पायी तो राष्ट्रपति ही देश का शासन-भार सम्हालेगा, और गृह-युद्ध अथवा आन्तरिक अशांति से देश की रक्षा करेगा । वह ऐसे समय राजनैतिक गतिरोध उत्पन्न होने की संभावना को भी हटा देगा । देश में निर्वाचन आदि के कार्यों को निष्पक्ष रूप से करवाने के लिए राष्ट्रपति का होना अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि वही एक ऐसा व्यक्ति है जो कार्यपालिका का प्रधान होते हुए भी राजनैतिक दलबन्दियों से ऊपर है । इस भांति राष्ट्रपति देश को संक्रमण काल में स्थायित्व प्रदान करने वाला है ।

लोकतंत्र का रक्षक—देश की राजनीति में कभी ऐसा भी अवसर आ सकता है, जब मंत्रिपरिषद को संसद के बहुमत का तो समर्थन प्राप्त

हो किन्तु देश की जनता का नहीं, यानी संसद् ही देश की जनता का उचित प्रतिनिधित्व न करती हो। ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति संपूर्ण देश का नेता होने के नाते संसद को भंग कर सकता है और नवीन निर्वाचन कराके नयी संसद का निर्माण कर सकता है। इस भांति राष्ट्रपति एक ओर तो लोकतंत्र की रक्षा करेगा और दूसरी ओर राज्य की रक्षा भी, आन्तरिक विद्रोह से, करने में समर्थ होगा।

संकट-काल में राष्ट्र का अधिनायक—युद्ध अथवा वाह्य आक्रमण की स्थिति में लोकतंत्रात्मक शासन उतना सफल सिद्ध नहीं होता, जितना कि अधिनायक का शासन। इस विचार से भारतीय संविधान में राष्ट्रपति को संकटकालीन अधिकारों से विभूषित किया गया है। ये अधिकार किसी अन्य अधिकारी को नहीं दिए जा सकते, क्योंकि राष्ट्रपति ही ऐसा व्यक्ति है, जिससे इन अधिकारों के दुरुपयोग की आशंका सबसे कम है।

अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधि—अन्तर्राष्ट्रीय जगत में राष्ट्र का प्रतिनिधित्व राष्ट्रपति ही करता है। उसकी वाणी राष्ट्र की वाणी है। युद्ध और संधि की घोषणा वही करेगा। प्रधान मंत्री भी यह कार्य कर सकता था, किन्तु अन्तर्राष्ट्रीय जगत की परिपाटी ऐसी है कि इस प्रकार के महत्वपूर्ण निश्चयों की घोषणा सब लोग राज्य के प्रधान से चाहते हैं, कार्यपालिका के प्रधान से नहीं।

भारत के संघात्मक संविधान में सांसद पद्धति की सरकार तथा एकात्मक और संघात्मक शासन-पद्धतियों के गुणों का समावेश राष्ट्रपति के पद को स्थापित करके ही किया जा सका है। एक प्रकार से कहा जा सकता है कि राष्ट्रपति ही संविधान का केन्द्र-विन्दु है, जिसके आधार पर संविधान द्वारा स्थापित समस्त संस्थाएँ अपना कार्य करेगीं। यदि उसी को निकाल दिया जाय तो फिर उनका आपस में सामंजस्य स्थापित करना असंभव होगा। भारतीय परिस्थितियों में ऐसे संविधान की कल्पना नहीं हो सकती, जिसमें राष्ट्रपति अथवा वैधानिक प्रधान का पद न हो।

उपराष्ट्रपति

भारतीय संघ का एक उपराष्ट्रपति होगा। उपराष्ट्रपति का निर्वाचन संसद के संयुक्त अधिवेशन में एकत्रित दोनों सदनों के सदस्यों द्वारा, आनुपातिक प्रतिनिधित्व के आधार पर, एकल हस्तान्तर-योग्य मत-पद्धति से होगा। मतदान सर्वथा गुप्त होगा। उपराष्ट्रपति होने के लिए किसी भी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यता होना आवश्यक है—

(१) वह भारत का नागरिक हो, (२) पैंतीस वर्ष की आयु पूरी कर चुका हो, (३) राज्य-परिषद् का सदस्य चुना जाने की योग्यता रखता हो, (४) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के अधीन अथवा उक्त सरकारों में से किसी के भी द्वारा नियंत्रित, किसी स्थानीय अथवा दूसरे अधिकारियों के अधीन, किसी लाभ के पद पर न हो। [राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, संघ के अथवा किसी राज्य के मंत्री के पद को लाभ का पद न समझा जावेगा और इन लोगों के उपराष्ट्रपति होने पर कोई प्रतिबन्ध न होगा।]

उपराष्ट्रपति संसद के किसी सदन का अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल का सदस्य नहीं हो सकता। उपराष्ट्रपति अपने पद के कारण, राज्य-परिषद् का सभापति होगा। उसका कार्य-काल पाँच वर्ष होगा। राष्ट्रपति का पद उसकी मृत्यु, पदत्याग अथवा पद से हटाये जाने के कारण रिक्त होने पर, उपराष्ट्रपति उस के पद का कार्य उसके शेष कार्यकाल तक नहीं, वरन् उस समय तक करेगा, जब तक नये राष्ट्रपति का निर्वाचन नहीं हो जाता। संविधान के अनुसार यह समय अधिक से अधिक छः माह होगा। यदि राष्ट्रपति अस्थायी रूप से, अस्वस्थता या अन्य किसी कारण वश अपना कार्य करने में असमर्थ हो तो उपराष्ट्रपति उसका पद-भार उस समय तक सम्हालेगा, जब तक राष्ट्रपति अपना काम फिर से न करने लगे।

उपराष्ट्रपति अपने कार्य-काल के अन्दर, राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर, अपना पद त्याग सकेगा। राज्य-परिषद भी उसे अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव बहुमत से पास करके उसके पद से अलग कर सकती है। ऐसे प्रस्ताव पर लोकसभा की स्वीकृति आवश्यक है और इस आशय का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए १४ दिन की सूचना देना आवश्यक होगा।

उपराष्ट्रपति के कार्य-काल की समाप्ति के कारण रिक्त हुए स्थान की पूर्ति के लिए, उसका कार्य-काल समाप्त होने से पूर्व ही निर्वाचन कर लिया जावेगा। उपराष्ट्रपति की मृत्यु, पद-त्याग या अपदस्थ किए जाने पर अथवा किसी अन्य कारण से रिक्त हुए पद की पूर्ति के लिए, यथा-सम्भव शीघ्र, और छः मास बीतने से पूर्व, निर्वाचन कर लिया जायगा और नव निर्वाचित उपराष्ट्रपति पाँच वर्ष पर्यन्त अपने पद पर बना रहेगा।

राष्ट्रपति और उपराष्ट्रपति के निर्वाचन सम्बन्धी झगड़ों का निर्णय—राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित सभी विवादों और भ्रमों की परीक्षा तथा निर्णय उच्चतम न्यायालय द्वारा होगी और उसका निर्णय अन्तिम होगा। राष्ट्रपति या उपराष्ट्रपति के निर्वाचन से सम्बन्धित विषयों के सम्बन्ध में संसद नियम निर्माण करेगी।

———

चौदहवाँ अध्याय

मंत्रि-परिषद्

मंत्रि-परिषद् का कार्य कानून बनाने वाली विधान सभा तथा उनका अमल करने वाली शासन-सभा इन दोनों का समन्वय करना है। मन्त्रि-परिषद् का निर्माण, उसका जीवन तथा विलप तीनों प्रधान मन्त्री पर अवलम्बित रहेंगे और मन्त्रि-परिषद् का स्वरूप, यश तथा अपयश बहुत कुछ उसके व्यक्तित्व से प्रभावित होंगे। इस दृष्टि से राष्ट्रपति से अधिक महत्व प्रधान मन्त्री का रहेगा।

—न० वि० गाडगिल

पिछले अध्याय में राष्ट्रपति के सम्बन्ध में लिखा गया है, और अगले में संसद का विचार होगा; इस अध्याय में मंत्रिपरिषद का वर्णन करना उपयुक्त होगा। बात यह है कि मंत्रिपरिषद एक ऐसी कड़ी है, जो राष्ट्रपति को और संसद के दोनों सदनों को जोड़ती है। राज्य का समस्त शासन-यंत्र मंत्रि-परिषद पर आधारित है। राज्य के समस्त सरकारी नीति सम्बन्धी निश्चय मंत्रिपरिषद द्वारा ही होंगे। वैधानिक रूप से राष्ट्रपति के हाथ में संघ की कार्यपालिका अवश्य है, परन्तु व्यवहार में उसका कार्य-संचालन मंत्रिपरिषद के ही द्वारा होगा। मन्त्रिपरिषद भारत में काफी शक्तिशाली है; इस का रहस्य यहाँ सांसद पद्धति का होना है।

नये निर्वाचन होने तक मंत्रिपरिषद् का संगठन— संविधान में मंत्रिपरिषद के संगठन और नियुक्ति के सम्बन्ध में जो स्थायी व्यवस्था दी गई है, वह नये निर्वाचन तक काम में न आ सकेगी।

संविधान लागू होने से पहिले के ही मंत्री, मंत्रिपरिषद् के सदस्यों के रूप में कार्य करते रहेंगे। २६ जनवरी १६५० को तत्कालीन मंत्रिपरिषद ने नये सिरे से राष्ट्रपति के संमुख शपथ ग्रहण की। यही मंत्रिपरिषद नये निर्वाचन होने तक कार्य करती रहेगी। पश्चात् जिस प्रकार मंत्रिपरिषद् का संगठन और नियुक्ति होगी, वह आगे बताया जाता है।

मंत्रि-परिषद् का संगठन—राष्ट्रपति को सलाह देने और उसकी सहायता करने के लिए एक परिषद् होगी, जिसका प्रमुख, प्रधान मंत्री होगा। संविधान के अनुसार प्रधान मंत्री की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा, और प्रधान मंत्री के परामर्श से राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद के अन्य सदस्यों की नियुक्ति करेगा। मंत्रिपरिषद संसद् के प्रति उत्तरदायी है, इस कारण मंत्रियों की नियुक्ति में राष्ट्रपति को कोई विशेष स्वतन्त्रता न होगी। साधारण अवस्था में राष्ट्रपति लोकसभा में बहुमत रखने वाले राजनैतिक दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करेगा। प्रधान मंत्री अपनी नियुक्ति के पश्चात् यह विचार करेगा कि उसे अपनी मंत्रिपरिषद में किन-किन सदस्यों को लेना है। इस प्रश्न का निश्चय करने के लिए प्रधानमंत्री अपने राजनैतिक दल की मीटिंग में विचार भी कर सकता है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रधान मंत्री समस्त मंत्रियों को अपने राजनैतिक दल में से ही चुने। वह अन्य दलों के भी योग्य व्यक्तियों को मंत्रिपरिषद में ले सकता है। मंत्रिपरिषद के नामों का निश्चय करने के पश्चात् प्रधान मंत्री राष्ट्रपति को मंत्रियों के नाम और विभागों के नाम दे देगा। राष्ट्रपति इस परामर्श के अनुसार उन व्यक्तियों को विभिन्न विभागों के मंत्रि-पदों पर नियुक्त कर देगा। यदि राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार प्रधान मंत्री और मंत्रिपरिषद के सदस्यों को नियुक्त करना चाहे तो यह सम्भव न होगा, क्योंकि यदि वह बहुमत दल के नेता को प्रधान मंत्री न चुन कर किसी अन्य दल के नेता को प्रधान मंत्री चुनता है तो वह व्यक्ति, लोकसभा के विश्वास के अभाव में, शासन-कार्य चलाने में सर्वथा असमर्थ होगा।

संविधान के अनुसार राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह प्रधान-मंत्री को अपने पद से हटा दे। परन्तु ऐसा करना उसके लिए संभव न होगा। यदि राष्ट्रपति उस दल के नेता को, जिस का संसद में बहुमत हो, हटा दे अथवा उसके परामर्श को न माने तो प्रधान-मंत्री अपने पद से त्यागपत्र दे देगा। ऐसी अवस्था में राष्ट्रपति या तो लोकसभा को भंग कराकर उसका नया निर्वाचन करवाए अथवा दूसरे दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त करे। पहली स्थिति में संभव है नवीन निर्वाचन में वही राजनैतिक दल फिर लोकसभा में बहुमत प्राप्त कर ले और उस स्थिति में राष्ट्रपति को उसी दल के नेता को प्रधान-मंत्री चुनना होगा। दूसरी स्थिति में लोक-सभा को बगैर भंग किए यदि किसी दूसरे दल के नेता को प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया तो ऐसा प्रधान मंत्री लोकसभा के विश्वास के अभाव में सरकार का कार्य न चला सकेगा। एक वैधानिक संकट उत्पन्न हो जायगा और इस स्थिति में भी उसी प्रधान मंत्री को नियुक्त करना होगा। निदान, मंत्रिपरिषद का लोकसभा में बहुमत रहते राष्ट्रपति प्रधान मंत्री को अपनी इच्छा से अपदस्थ न कर सकेगा।

प्रधान-मंत्री की नियुक्ति में राष्ट्रपति अपनी इच्छानुसार कार्य उस स्थिति में अवश्य कर सकेगा, जब लोकसभा में राजनैतिक दल कई एक हों और किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत न हो। उस स्थिति में राष्ट्रपति किसी भी दल के नेता को बुलाकर मंत्रिपरिषद का निर्माण करने को कह सकेगा। अल्प मत होते हुए भी निमंत्रित होने के पश्चात् ऐसा व्यक्ति अन्य दलों की सहायता से मंत्रिपरिषद बनाने में सफल हो जायगा। ऐसी दशा में राष्ट्रपति अपनी इच्छानु..र किसी मंत्रिपरिषद् को उसके पद से हटा भी सकेगा, क्योंकि दूसरी मंत्रिपरिषद के संगठन में, संसद में अनेक दल होने के कारण, अधिक बाधा उपस्थित नहीं होगी।

मंत्रियों के लिए यह आवश्यक है कि वे संसद के सदस्य हों। हाँ कोई ऐसा व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त किया जा सकता है, जो आरम्भ में संसद्

के किसी सदन का सदस्य न हो। ऐसे व्यक्ति के लिए यह आवश्यक होगा कि वह छः महीने के अन्दर संसद के किसी सदन का सदस्य बन जावे, अन्यथा उसे अपने पद से हटना पड़ेगा। इस व्यवस्था का उद्देश्य यह है कि देश के लोक-प्रिय नेता ही मंत्री पद प्राप्त करें। परन्तु इस में एक कमी है। संविधान के अन्तर्गत संघ की ऊपरली सभा यानी राज्य-परिषद में बारह सदस्य मनोनीत रहेंगे और मनोनीत सदस्य भी मंत्री हो सकता है। इस प्रकार कोई व्यक्ति जो लोक-प्रिय नहीं है और निर्वाचन में नहीं जीत सकता, उसे राज्यपरिषद का सदस्य मनोनीत करा कर मंत्रिपरिषद में लिया जा सकेगा। परन्तु सामूहिक उत्तरदायित्व इस में बाधक होगा, क्योंकि एक मंत्री की हार समस्त मंत्रि-परिषद की हार होगी। प्रधान-मंत्री अलोक-प्रिय लोगों को मंत्रि-परिषद में लेने का आसानी से साहस नहीं करेगा।

मंत्रियों की शपथ एवं उनका वेतन—प्रत्येक मंत्री को पद-भार ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के संमुख दो प्रकार की शपथ ग्रहण करनी होगी। प्रथम तो पद-शपथ होगी, जो इस प्रकार होगी—

"मैं...अमुक......ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, संघ के मंत्री के रूप में अपने कर्तव्यों का श्रद्धा-पूर्वक और शुद्ध अन्तःकरण से पालन करूँगा, तथा भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना मैं सब प्रकार के लोगों के प्रति संविधान के अनुसार न्याय करूँगा।"

इस प्रतिज्ञा के अतिरिक्त प्रत्येक मंत्री का कर्तव्य होगा कि वह मंत्रि-परिषद के निर्णयों एवं कार्यों को पूर्ण रूप से गुप्त रखने के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रतिज्ञा ले—

"मैं ...अमुक ...ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्य निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि जो विषय संघ-मंत्री के रूप में मेरे विचार के लिए

लाया जायगा अथवा मुझे ज्ञात होगा, उसे किसी व्यक्ति या व्यक्तियों को, उस अवस्था को छोड़कर जब कि ऐसे मंत्री के रूप में अपने कर्तव्य के उचित निर्वहन के लिए ऐसा करना अपेक्षित हो, अन्य अवस्था में मैं प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में सूचित या प्रकट नहीं करूँगा।"

मंत्रियों के वेतन और भत्ते के विषय में संसद् समय-समय पर निश्चय करेगी। जब तक वह निश्चय नहीं करती, उनको वही वेतन और भत्ता मिलता रहेगा जो संविधान के आरम्भ होने के समय मिलता था, अर्थात् ३००० रु० मासिक वेतन और ५०० रु० मासिक भत्ता।

मंत्रि-परिषद् का कार्य—संघ के शासन-कार्य का संचालन मंत्रिपरिषद् करेगी। यद्यपि संविधान के अनुसार उसका कार्य राष्ट्रपति को परामर्श और उसके कार्य-संपादन में सहायता देना है; परन्तु व्यावहारिक बात यह है कि राष्ट्रपति मंत्रिपरिषद् के परामर्श के अनुसार कार्य करेगा और संघ के शासन और कार्यपालिका संबन्धी समस्त कार्यों का संपादन मंत्रिपरिषद् राष्ट्रपति के नाम पर करेगी। मंत्रिपरिषद् विधि-निर्माण के कार्यक्रम का निश्चय करेगी। सब महत्वपूर्ण विधेयकों को संसद् में उपस्थित करना उसी का कार्य है। उसके द्वारा उपस्थित विधेयकों का पास होना सुगम होगा; कारण उसका संसद् में बहुमत रहेगा। इसके विपरीत, गैर-सरकारी विधेयकों का, जो दूसरे सदस्यों द्वारा संसद् में उपस्थित किए जायँगे, पास होना आसान न होगा; कुछ दशाओं में तो वे संसद् में अस्वीकृत ही होंगे।

संघ का आय-व्यय-अनुमानपत्र मंत्रि-परिषद् ही तैयार करेगी और लगभग समस्त वित्त सम्बन्धी विधेयक मंत्रि-परिषद् के द्वारा ही प्रस्तावित किए जायँगे क्योंकि उन पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक होगी और अन्य किसी व्यक्ति या दल को राष्ट्रपति की अनुमति मिलना असम्भव होगा। समस्त राष्ट्र की विदेश-नीति का निर्धारण भी मन्त्रि-परिषद् ही करेगी।

शासन-विभाग—संघ का शासन-कार्य विविध विभागों में विभक्त रहता है, और एक मंत्री के अधीन एक या अधिक विभाग रहते हैं। स्मरण रहे कि विभागों के मन्त्रियों की कोई संख्या स्थायी नहीं है। आवश्यकता और कार्य-विस्तार के अनुसार मंत्रियों की संख्या एवं उनके विभागों के वितरण में अन्तर होता रहता है। मंत्री अपने विभाग या विभागों पर नियंत्रण रखता है। महत्वपूर्ण प्रश्नों पर मंत्रिपरिषद की सलाह ली जाती है और उस सलाह के अनुसार कार्य किया जाता है। आवश्यकतानुसार मंत्रियों की संख्या और उनके विभागों का वितरण बदलता रहता है। मंत्रियों को उनके मुख्य विभाग के अनुसार सम्बोधित किया जाता है, यथा शिक्षा-मंत्री, अर्थमंत्री आदि। जब किसी कार्य को विशेष रूप से करना होता है तो उसका नया विभाग स्थापित कर, उसे किसी मंत्री को सौंप दिया जाता है, अथवा जरूरत समझी जाय तो उसके लिये नया ही मंत्री नियुक्ति किया जाता है।

आगे प्रमुख मंत्रियों और उनके विभागों के कार्यों के बारे में कुछ जानकारी दी जाती है, इससे मन्त्रिपरिषद के कार्यों पर अच्छा प्रकाश पड़ जायगा।

१—विदेश मन्त्री—विदेश-मंत्री के नियंत्रण में विदेश विभाग होगा। यह विभाग भारत और अन्य राष्ट्रों के सम्बन्ध, भारत और राष्ट्रमंडल के सदस्य-राष्ट्रों के सम्बन्ध, तथा भारत और संयुक्त-राष्ट्र के सम्बन्धों का नियंत्रण करेगा। भारत की ओर से कूटनीतिज्ञ वार्ताएँ, सन्धियाँ एवं राजदूतों की नियुक्ति, दूतावासों सम्बन्धी अन्य महत्वपूर्ण नियुक्तियाँ विदेश-मंत्री ही करेगा। वर्तमान समय में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति इतनी महत्वपूर्ण है कि इस विभाग का कार्य संघ के प्रमुख कार्यों में है।

२—गृह-मन्त्री—गृह-मंत्री देश के आन्तरिक शासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए उत्तरदायी है। देश में आन्तरिक शान्ति और सुरक्षा बनाए रखना गृह-विभाग का कार्य है। संघ द्वारा शासित राज्यों

का शासन इसी विभाग के द्वारा होगा। चीफ-कमिश्नरों, शासकों आदि की नियुक्ति यही विभाग करेगा। संविधान लागू होने के पूर्व यहाँ लगभग साढ़े पाँच सौ देशी रियासतें थीं। गृह-विभाग ने इनमें से सैकड़ों को उनके पास के राज्यों में विलीन कर दिया और शेष का पुनःसंगठन करके लगभग सवा दर्जन इकाइयों का निर्माण कर दिया; यह भारतीय इतिहास की बहुत महत्वपूर्ण घटना है।

३—**शिक्षा-मन्त्री**—यह मंत्री शिक्षा-विभाग का संचालन करता है, और इस प्रकार भारतीय नागरिकों को योग्य और शिक्षित बनाने के लिए उत्तरदायी है। वर्तमान समय में देश में केवल १८ प्रतिशत व्यक्ति ही साक्षर हैं, और अगले दस वर्ष में चौदह वर्ष तक के सब बालकों की शिक्षा का प्रबन्ध करना है, इससे इस विभाग का महत्व स्पष्ट है।

४—**वित्त-मन्त्री**—संघ का वित्त विभाग इस मंत्री के अधीन है। यह विभाग संसद द्वारा निर्धारित करों को वसूल करेगा, और विविध विभागों को उसके द्वारा निर्धारित धन-राशि देगा। वित्त मंत्री प्रति वर्ष संघ का आय-व्यय का लेखा बनाएगा और वही करेन्सी और रिजर्व बैंक का नियंत्रण करेगा।

५—**रक्षा-मन्त्री**—इस मंत्री का काम देश की बाहरी आक्रमणों से रक्षा करना और स्थल, जल तथा वायु सेनाओं की व्यवस्था करना है। सेनाओं में नियुक्ति आदि इसी विभाग के आदेश से होती है।

६—**श्रम-मन्त्री**—यह मंत्री श्रम-विभाग का काम संभालता है, श्रमियों को शोषण से बचाने तथा उनका जीवन स्तर ऊँचा करने का प्रयत्न करता है, और आवश्यक कानून बनवाता है।

७—**संदेश-मन्त्री**—यह मंत्री संघ की डाक, तार टेलीफोन आदि की व्यवस्था करता है।

८—**स्वास्थ्य-मन्त्री**—यह मंत्री जनता के स्वास्थ्य-सुधार और रोग-निवारण का कार्य करता है।

९—**विधि-मन्त्री**—यह मंत्री संघ के लिए विधियों या कानूनों का निर्माण और संशोधन करता है। किसी विधेयक पर संसद में विचार होने से पूर्व यह विभाग देखेगा कि संविधान तथा विधि (कानून) की दृष्टि से उसमें कोई बात असंगत (बेमेल) तो नहीं है।

१०—**उद्योग-मन्त्री**—संघ का उद्योग-विभाग उद्योग-मंत्री के अधीन होता है। देश में नवीन उद्योगों की स्थापना, स्थापित उद्योगों की कठिनाइयों को दूर करना और देश की समृद्धि को बढ़ाने वाले उद्योगों के लिए योजना बना कर उन्हें कार्यान्वित करना—इस विभाग का कार्य होगा।

११—**कारखाना, खान तथा विद्युत मन्त्री**—देश में विद्युत शक्ति सम्बन्धी योजनाओं का विकास करना तथा कारखानों और खानों का उत्पादन बढ़ाने के लिए उपयुक्त व्यवस्था करना इस विभाग के मंत्री का कार्य होगा।

१२—**यातायात-मन्त्री**—यातायात मंत्री मुख्यतः रेलों तथा अन्य यातायात के साधनों का प्रबन्ध करता है।

१३—**खाद्य-मन्त्री**—खाद्य मंत्री का कार्य देश के खाद्य-संकट को हल करना और कृषि का विकास करके देश को खाद्य सम्बन्धी मामलों में स्वावलम्बी बनाना है।

१४—**पुनर्वासन-मन्त्री**—देश के विभाजन से जो शरणार्थियों की समस्या उत्पन्न हो गई है, उसे हल करने अर्थात् शरणार्थियों को बसाने उन्हें काम में लगाने आदि का कार्य पुनर्वासन-मन्त्री के अधीन है।

१५—**वाणिज्य मन्त्री**—वाणिज्य-मंत्री का कार्य देश के आन्तरिक और वाह्य वाणिज्य का नियन्त्रण करना है। विदेशों से क्या माल यहाँ आए और कौनसा बाहर भेजा जाय, इसका विचार यही विभाग करता है।

सेक्रेटरी आदि पदाधिकारी—प्रत्येक विभाग के मंत्री द्वारा निर्धारित नीति का पालन करने और उस विभाग के कार्यालय के दैनिक कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए प्रत्येक विभाग का एक सेक्रेटरी होता है। इसका पद स्थायी होता है; मंत्रियों के परिवर्तन से उसके पद पर कोई असर नहीं होता। सेक्रटरी की सहायता के लिए डिप्टी तथा असिस्टेंट सेक्रेटरी और कुछ क्लर्क होते हैं। सेक्रेटरियों का एक विशाल कार्यालय होता है। कुछ मन्त्रियों के साथ संसदीय सेक्रटरी भी होता है, यह संसद का सदस्य होता है और इसका कार्य मन्त्रि को संसद सम्बन्धी कार्यों में सहायता देना है। मन्त्रिपरिषद के बदलने पर इसे भी हटना होता है। इसके वेतन और भत्ते के लिए प्रति वर्ष संसद की स्वीकृति ली जाती है। क्योंकि इन पदों पर संसद के सदस्यों की ही नियुक्ति की जाती है, इसलिए संविधान के अनुसार यह आवश्यक होता है कि संसद यह विधि बनाए कि सरकारी कोष से वेतन पाने के कारण इन्हें संसद की सदस्यता से वंचित नहीं किया जायगा।

मंत्रिपरिषद की कार्य-प्रणाली—साधारणतया मंत्रिपरिषद की सभा प्रति सप्ताह होती है। सभा में सभापति का आसन प्रधान मंत्री ग्रहण करता है। उसमें नीति सम्बन्धी व्यापक विषयों का विचार होता है। फिर प्रत्येक विभाग का मंत्री इस नीति का पालन करता है। सभा के लिए किसी कोरम या मत-दान की आवश्यकता नहीं होती; अकेला प्रधान मंत्री भी महत्वपूर्ण निश्चय करने में स्वतंत्र है। सभा की सब चर्चा गुप्त रखी जाती है। वित्त-सम्बन्धी वार्ता और आय-व्यय अनुमान-पत्र तो प्रधान मंत्री और वित्त-मंत्री के अतिरिक्त अन्य मंत्रियों को भी नहीं बताया जाता। किसी विभाग के रोजमर्रा के काम के सम्बन्ध में उसका मंत्री ही निर्णय कर लेता है, अथवा वह प्रधान मंत्री का परामर्श ले लेता है।

मंत्रिपरिषद् का उत्तरदायित्व—मंत्रिपरिषद् लोकसभा के प्रति उत्तरदायी होती है। वह जो भी काम करे, या नीति रखे उसकी सफाई देने अथवा उसका औचित्य प्रमाणित करने के लिए प्रधान-मंत्री तथा उसके सहयोगियों को हर समय तैयार रहना होगा। उन्हें लोकसभा के सदस्यों को सदैव संतुष्ट रखना होगा। प्रजातंत्र के आदर्श की दृष्टि से यह ठीक भी है कि मंत्रिगण कोई ऐसा काम न करें, जो जनता के हित के विरुद्ध हो और जिसे जनता के प्रतिनिधि पसन्द न करते हो। लोकसभा में परिषद् की नीति और कार्यों की स्वतंत्रता-पूर्वक आलोचना की जा सकेगी। यदि किसी महत्वपूर्ण प्रश्न पर लोक-सभा का बहुमत मंत्रिपरिषद की ओर से रखे हुए प्रस्ताव, या कानून सम्बन्धी मसविदे के विरुद्ध हो जाय, तो मंत्रीपरिषद को पदत्याग करना पड़ेगा। इस प्रकार मंत्री लोग तभी तक अपने पद पर रह सकेंगे, जब तक उन्हें लोकसभा का विश्वास प्राप्त हो। यदि किसी समय उन्हें ऐसा अनुभव हो कि लोकसभा का उन पर विश्वास नहीं रहा है तो उन्हें त्यागपत्र देना चाहिए।

उत्तरदायित्व सामूहिक है—ऊपर मंत्रिपरिषद के उत्तरदायी होने की बात कही गयी है। उसका उत्तरदायित्व सामूहिक है। इसका अर्थ यह है कि किसी मंत्री के कार्य के लिए अकेला वही मंत्री उत्तरदायी नहीं होगा, वरन् उसके लिए सम्पूर्ण मंत्रिपरिषद उत्तरदायी होगी। यदि किसी मंत्री की किसी विषय पर लोकसभा में हार हो जावे तो वह मंत्रिपरिषद की हार होगी और उस दशा में संपूर्ण मंत्रिपरिषद को अपना त्यागपत्र देना होगा। किसी मंत्री द्वारा उपस्थित किया हुआ प्रस्ताव समस्त मंत्रि-परिषद का ही प्रस्ताव समझना चाहिए, भले ही उस प्रस्ताव पर मंत्रियों में आपस में विचार-विनिमय न हुआ हो। सामूहिक उत्तरदायित्व में यह बात भी है कि यदि मंत्रिपरिषद ने अपना कोई निश्चय कर लिया है तो समस्त मंत्रियों को उसका समर्थन करना चाहिए। यदि कोई मंत्री इस निर्णय

से असतुष्ट है तो उसे त्याग-पत्र दे देना चाहिए। मंत्रिपरिषद के सदस्य रहते हुए वह उस प्रस्ताव के विरुद्ध मत प्रदान नहीं कर सकेगा। इसके साथ ही साथ किसी मंत्री को सरकार की नीति के विरुद्ध कोई वक्तव्य नहीं देना चाहिए और न अपने साथियों की सलाह के वगैर उसे सरकार की ओर से कोई वादा करना चाहिए।

मंत्रियों सम्बन्धी अन्य बातें—संविधान में कहा गया है कि मंत्री तभी तक अपने पद पर रहेंगे, जब तक कि वे राष्ट्रपति को संतुष्ट रख सकें। इसका अर्थ यह निकलता है कि राष्ट्रपति किसी मंत्री को उसके पद से हटा सकता है। किन्तु यह कार्य वह प्रधान मंत्री की सलाह से ही करेगा। यदि किसी मंत्री का कार्य अथवा आचरण आपत्तिजनक साबित हो तो प्रधान मंत्री के कहने पर राष्ट्रपति उसे हटा देगा। हटाने की पद्धति यह होगी कि प्रधान मंत्री उसे त्याग-पत्र देने की प्रेरणा करेगा; यदि वह मंत्री त्याग-पत्र दे दे तो मामला निपट जायगा; परन्तु यदि वह अपने पद का परित्याग न करे तो प्रधान मंत्री अपना तथा पूरी मंत्रिपरिषद का त्याग-पत्र देकर नयी मंत्रिपरिषद ऐसी बनाएगा, जिसमें उपर्युक्त व्यक्ति न हो। इस मंत्रिपरिषद् के मंत्रियों की नियुक्ति राष्ट्रपति कर देगा।

प्रधान मंत्री—प्रधान मंत्री का पद बहुत की महत्वपूर्ण है। मंत्रिपरिषद् में उसका स्थान सर्वश्रेष्ठ है। जैसा कि बतलाया जा चुका है, संविधान के अनुसार उसकी नियुक्ति राष्ट्रपति के द्वारा होगी परन्तु वास्तविकता यह है कि राष्ट्रपति द्वारा बहुमत दल का नेता ही प्रधान-मंत्री नियुक्त किया जाता है। प्रधान-मंत्री मंत्रि-परिषद् के सदस्यों का चुनाव करता है और उनके विभागों को स्थिर करता है। संविधान में यह नहीं बताया गया कि मंत्रिपरिषद में प्रधान मंत्री का स्थान क्या होगा। यह निर्विवाद है कि वह मंत्रिपरिषद् का नेता होगा और साथ ही साथ लोकसभा के बहुमत दल का भी। मंत्रिपरिषद की सभाओं में वह सभापति रहेगा। नीति निर्धारित करने में उसका प्रमुख हाथ रहेगा। अधिकांश नीति सम्बन्धी मामलों में

और महत्वपूर्ण प्रश्नों पर सरकार की ओर से संसद में वक्तव्य वही देगा। यदि वह प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला हुआ तो संसार के शक्तिशाली शासकों में से एक होगा। वह मंत्रियों का चुनाव ही नहीं करेगा, वरन आवश्यकता होने पर अपने मंत्रिपरिषद में परिवर्तन भी कर सकेगा। वह किसी मंत्री को अपने पद से त्यागपत्र देने को भी कह सकता है और यदि कोई मंत्री उसके आदेश से ऐसा करना स्वीकार न करे तो वह मंत्रिपरिषद का त्याग-पत्र राष्ट्रपति को देकर दूसरे मंत्रिपरिषद का संगठन कर लेगा। संघ की आन्तरिक एवं वाह्य नीति का निर्धारण वही करेगा। संघ की वृहत् शक्तियों एवं संकटकालीन अधिकारों का उपयोग राष्ट्रपति उसके ही परामर्श से करेगा। इस प्रकार युद्ध के समय उसके अधिकार बहुत ही अधिक होंगे।

पहले कहा गया है कि मंत्रियों के लिए लोकसभा का सदस्य होना आवश्यक है। परन्तु प्रधान मंत्री चाहे तो ऐसे व्यक्ति को भी मंत्री नियुक्त करा सकता है, जो लोकसभा का सदस्य न हो। यह इस तरह कि वह राष्ट्रपति को परामर्श देकर ऐसे व्यक्ति को पहले राज्य-परिषद का सदस्य नामजद करादे (राष्ट्रपति को राज्य-परिषद के लिए १२ सदस्य नाम-जद करने का अधिकार है), और फिर उस व्यक्ति को राष्ट्रपति द्वारा मंत्री भी नियुक्त करादे। राष्ट्रपति साधारण अवस्था में प्रधान मंत्री का परामर्श मान ही लेता है। इस प्रकार प्रधान मंत्री की इच्छा से ऐसा व्यक्ति भी मंत्री नियुक्त हो सकता है, जो लोकसभा का सदस्य न हो।

प्रधान मंत्री मंत्रिपरिषद के निर्णयों तथा शासन सम्बन्धी समस्त मामलों की सूचना राष्ट्रपति को समय-समय पर देता रहेगा। इसके अति-रिक्त संसद में पेश होने वाले प्रस्तावों के सम्बन्ध में राष्ट्रपति कुछ जानना चाहे तो प्रधान मंत्री को उसकी पूरी जानकारी राष्ट्रपति को देनी चाहिए। प्रधान-मंत्री का कर्त्तव्य है कि यदि राष्ट्रपति की इच्छा किसी ऐसी बात को मंत्री-परिषद के सामने रखने की हो, जिस पर किसी मंत्री ने निर्णय तो किया

हो परन्तु जिस पर मंत्री-परिषद् ने विचार न किया हो तो वह उसे मंत्रि-परिषद् के सामने विचारार्थ रखे।

प्रधान मंत्री का कार्य और जिम्मेदारी साधारण नहीं है, बहुत ही चतुर, क्षमताशील, प्रतिभावान और प्रभावशील व्यक्ति ही उसे पूर्ण कर सकता है। मंत्रियों के निर्वाचन में उसे देखना होगा कि उसके चुनाव से दल के समस्त व्यक्ति प्रसन्न हैं, कोई उससे असंतुष्ट तो नहीं है। जितने भी मंत्री चुने जावें वे देश के विभिन्न राज्यों एवं वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हों। कोई वर्ग या राज्य यह न सोचे कि उसका कोई भी प्रतिनिधि मंत्रि-परिषद् का सदस्य नहीं है और उसकी जानबूझ कर उपेक्षा की गई है। यदि प्रधान-मंत्री इन बातों का ध्यान नहीं रखेगा तो उसके दल में फूट पड़ने की आशंका है। देश के शासन-कार्य को चलाने के अतिरिक्त उसे अपने दल के नेता की हैसियत से भी दल का संगठन बनाए रखना होता है। मंत्रिपरिषद के चुनाव में उसकी इच्छा ही सर्वोपरि नहीं होती, उसे उपरोक्त समस्त दृष्टिकोणों को संमुख रखकर एक प्रकार का समझौता सा ही करना होता है। मंत्रियों के चुनाव से भी महत्वपूर्ण कार्य मंत्रियों में विभागों का वितरण करना है। इसके लिए उसे प्रत्येक मत्री की कार्यदक्षता, उसकी न्याय-बुद्धि, शासन-शक्ति तथा उस विभाग सम्बन्धी उसके ज्ञान और रूचि को ध्यान में रखना होता हैं। मंत्रियों को अपने कार्यों के लिए संसद में उत्तर देना होता है और पत्र भी उनके कार्यों की आलोचना करते हैं। इसलिए उचित प्रकार के व्यक्तियों को ही इन महत्वपूर्ण कार्यों को देना ठीक होगा।

मंत्रिपरिषद अपदस्थ कैसे किया जा सकता है?—

साधारणतया ऐसा मंत्री-परिषद, जिसे लोकसभा का समर्थन प्राप्त नहीं है, स्वयं ही त्याग-पत्र दे देगा। इसके अतिरिक्त संसद अविश्वास प्रगट करके उसे अपदस्थ कर सकती हैं। अविश्वास प्रगट करने के ढंग ये हैं:—

(अ) जब आय-व्यय-लेखा संसद में उपस्थित हो तब किसी मंत्री के वेतन में कमी का प्रस्ताव उपस्थित कर दिया जावे।

(आ) लोकसभा किसी ऐसे प्रस्ताव को पास न करे, जिसे मंत्रि-परिषद् महत्वपूर्ण समझता हो। [यह बात त्याग-पत्र का कारण तभी होगी, जब मंत्रिपरिषद् इसे विश्वास का प्रश्न बना दे।]

(इ) लोकसभा किसी ऐसे प्रस्ताव को पास कर दे, जिसका मंत्रि-परिषद् विरोध करे और इस प्रस्ताव को विश्वास का प्रश्न बना दे।

(ई) किसी मंत्री के विरुद्ध या उसके विभाग के विरुद्ध लोकसभा निन्दात्मक प्रस्ताव पास कर दे।

(उ) लोकसभा मंत्रिपरिषद् की नीति के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास करदे।

महान्यायवादी—भारत का एक महान्यायवादी (अटार्नी-जनरल) होगा। इस पद पर राष्ट्रपति उच्चतम न्यायलय के न्यायाधीश नियुक्त होने की योग्यता रखनेवाले व्यक्ति को नियुक्त करेगा। महान्याय-वादी का कार्य राष्ट्रपति को और भारत सरकार को संविधानिक विषयों पर तथा विधि सम्बन्धी विषयों पर परामर्श देने का होगा। विधि सम्बन्धी जो कार्य राष्ट्रपति महान्यायवादी को सौंपेगा उन्हें पूरा करना उस का कर्तव्य होगा। अपने कर्तव्यों के पालन के लिये महान्यायवादी को भारत राज्यक्षेत्र में के सब न्यायालयों में सुनवाई का अधिकार होगा। महान्यायवादी अपने पद पर उस समय तक बना रहेगा, जब तक राष्ट्रपति चाहें। उसका वेतन राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किया जायगा।

पन्द्रहवाँ अध्याय

संसद या पार्लिमेंट

भारतीय शासन की सर्वोच्च सत्ता अब भारतीय जनता के हाथ में निहित होगयी है। जन-प्रतिनिधियों के बहुमत के विरुद्ध कोई मंत्रिमंडल एक दिन के लिए नहीं टिक सकेगा। जनता के प्रतिनिधि-गण संघ के सर्वोच्च अधिकारी राष्ट्रपति को भी हटा सकेंगे।

—शंकरदयालु श्रीवास्तव

पिछले अध्याय में यह बतलाया गया है कि मन्त्रिपरिषद किस प्रकार शासन-कार्य करती है। भारत सरकार की शासन नीति निर्धारित करने का कार्य संसद का है। वह देश के लिए आवश्यक विधि निर्माण करती है और इस बात की जांच करती रहती है कि भारत सरकार कहाँ तक उस नीति के अनुसार कार्य करती है। वह सरकारी आय-व्यय का नियन्त्रण भी करती है।

अन्तर्कालीन संगठन—संसद के संगठन के सम्बन्ध में जो स्थायी व्यवस्था संविधान में दी गई है, वह तो नये निर्वाचनों के पश्चात् ही अमल में लायी जा सकेगी। नये निर्वाचन होने तक संविधान-सभा को ही संसद का रूप दे दिया गया है, यही उसके स्थान पर कार्य करेगी। २६ जनवरी १९५० तक संविधान-सभा के सदस्यों की संख्या ३०८ थी। उसके पश्चात् संविधान सभा के उन सदस्यों में से, जो प्रांतीय विधान सभा तथा संविधान सभा दोनों के सदस्य थे, बहुतसों ने संसद से त्यागपत्र दे दिया, क्योंकि नये संविधान के अंतर्गत कोई व्यक्ति एक समय में केवल एक ही

विधान-मंडल का सदस्य हो सकता है। इन रिक्त स्थानों की पूर्ति नये सदस्यों द्वारा की गई। २८ जनवरी को जब संसद का अधिवेशन आरंभ हुआ तो उसमें लगभग १०० नये सदस्य उपस्थित थे। इसके अतिरिक्त संसद में कुछ ऐसी नयी रियासतों को भी प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया, जो भारतीय संघ में पीछे सम्मिलित हुई।

भारतीय संसद के वर्तमान सदस्यों की संख्या ३२४ है। इन सदस्यों का निर्वाचन सीधा जनता द्वारा नहीं किया गया था, वरन प्रांतीय विधान-सभाओं द्वारा हुआ था। इनमें विविध राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या इस प्रकार है—

राज्य	सदस्य	राज्य	सदस्य
आसाम	८	पटियाला तथा पंजाब-राज्य संघ	३
पश्चिमी बंगाल	२१	राजस्थान	१२
उड़ीसा	१४	सौराष्ट्र	५
मध्यप्रदेश	२०	त्रावनकोर-कोचीन	७
बिहार	३६	विंध्य प्रदेश	४
उत्तरप्रदेश	५७	अजमेर	१
पंजाब	१६	भोपाल	१
बम्बई	२९	कूचबिहार	१
मद्रास	५०	कुर्ग	१
हैदराबाद	१६	देहली	१
जम्मू कश्मीर	४	हिमाचल प्रदेश	१
मध्यभारत	७	कच्छ	१
मैसूर	७	मनीपुर त्रिपुरा	१
सब राज्यों के सदस्यों का योग			३२४

नीचे की तालिका से ज्ञात हो जावेगी :—

राज्य	सदस्य	राज्य	सदस्य
[क वर्ग के राज्य]		राजस्थान	२०
आसाम	१२	सौराष्ट्र	६
बिहार	५५	त्रावनकोर-कोचीन	१२
बम्बई	४५	[ग वर्ग के राज्य]	
मध्यप्रदेश	२६	अजमेर	२
मद्रास	७५	भोपाल	२
उड़ीसा	२०	बिलासपुर	१
पंजाब	१८	कुर्ग	१
उत्तर प्रदेश	८६	देहली	४
पश्चिमी बंगाल	३४	हिमाचल प्रदेश	३
[ख वर्ग के राज्य]		कच्छ	२
हैदराबाद	२५	मनीपुर	२
जम्मू कश्मीर	६	त्रिपुरा	२
मध्यभारत	११	विंध्यप्रदेश	६
मैसूर	११	अदमन	
पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ	५	तथा निकोबार	१
सब राज्यों के सदस्यों का योग			४६६

वयस्क मताधिकार—मताधिकार के सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि भारत में यह पहला अवसर है जब वयस्क मताधिकार को केन्द्रीय लोकसभा के निर्वाचन में स्थान दिया गया है। इस महत्वपूर्ण निश्चय द्वारा देश के प्रत्येक नागरिक को यह अनुभव करने का अवसर दिया गया है कि उसका भी देश के शासन में कुछ भाग है। जैसा पहले कहा गया है, देश की राजनैतिक प्रगति में यह एक मार्के का काम है।

पृथक् निर्वाचन प्रणाली का अन्त—नये संविधान से पृथक् या साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को समाप्त कर दिया गया है। अब सब निर्वाचन संयुक्त निर्वाचन-प्रणाली के अनुसार होंगे। परन्तु अनुसूचित जातियों, आदिवासियों तथा एंग्लो-इन्डियनों आदि अल्प संख्यकों के लिए कुछ स्थान लोकसभा में उनकी जन-संख्या के आधार पर सुरक्षित रखे गये हैं। यदि राष्ट्रपति यह अनुभव करे कि लोकसभा में ऐंग्लो-इन्डियनों को पर्याप्त प्रतिनिधित्व नहीं मिला है तो वह स्वयं दो ऐंग्लो-इन्डियन सदस्य मनोनीत कर सकेगा। [यह संरक्षण २६ जनवरी १६६० तक रहेगा।]

निर्वाचन-क्षेत्र—निर्वाचन के लिए संपूर्ण देश प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जावेगा। प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र की जनसंख्या पांच लाख से साढ़े सात लाख तक के बीच में होगी। इन निर्वाचन क्षेत्रों का निर्माण करते समय इस बात का ध्यान रखा जायगा कि प्रतिनिधित्व का अनुपात देश भर में समान हो अर्थात् एक निर्वाचन-क्षेत्र की जन-संख्या और प्रतिनिधियों में जो अनुपात हो, वही सारे भारत के अन्य निर्वाचन-क्षेत्रों में हो। प्रत्येक जन-गणना के पश्चात् निर्वाचन-क्षेत्रों का नयी जन-संख्या के अनुसार पुनर्सङ्गठन किया जायगा। यदि किसी जन-गणना का फल उस समय निकलेगा जब लोकसभा कार्य कर रही होगी तो उसके भंग होने तक नये निर्वाचन-क्षेत्रों के हिसाब से निर्वाचन नहीं किया जायगा अर्थात् जन-गणना के पश्चात् लोक-सभा को भङ्ग नहीं किया जायगा।

निर्वाचक-नामावली और निर्वाचक की योग्यता—प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र के लिए एक निर्वाचक-नामावली निर्वाचन-आयोग (कमीशन) की देख-रेख में तैयार करवायी जावेगी। इस निर्वाचक-नामावली में उस क्षेत्र के समस्त निर्वाचकों के नाम होंगे। एक व्यक्ति का नाम एक निर्वाचन-क्षेत्र में एक ही बार लिखा जायगा और कोई भी

व्यक्ति दो निर्वाचक-क्षेत्रों से एक साथ उम्मीदवार नहीं हो सकेगा निर्वाचक-नामावली में ऐसे व्यक्तियों का नाम दर्ज किया जायगा, जो निर्वाचक की योग्यता सम्बन्धी निम्नलिखित शर्तों को पूरा करते हैं :—

१—भारत का प्रत्येक नागरिक जो १ मार्च सन् १९५० को २१ वर्ष या अधिक आयु का रहा हो, और

२—जो १ अप्रेल १९४७ से ३१ दिसम्बर १९४९ तक उस निर्वाचन-क्षेत्र में कम से कम १८० दिवस तक रह चुका हो।

निम्नलिखित प्रकार के व्यक्ति निर्वाचक नहीं हो सकेंगे :—

(क) जो भारत का नागरिक न हो।

(ख) जो किसी न्यायालय द्वारा पागल करार दे दिया गया हो।

(ग) जो निर्वाचन सम्बन्धी भ्रष्टाचार या दुराचरण के अपराध में अपराधी ठहराया गया हो।

निर्वाचनों में निष्पक्षता और ईमानदारी स्थापित करने के लिए एक निर्वाचन-आयोग का प्रबन्ध किया गया है, इसके सम्बन्ध में 'निर्वाचन' शीर्षक अध्याय में लिखा जा चुका है।

लोकसभा की सदस्यता के लिए योग्यता— लोकसभा के सदस्य निर्वाचित होनेवाले व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि—

(क) वह भारत का नागरिक हो।

(ख) कम से कम २५ वर्ष की आयु का हो।

(ग) उसमें संसद की विधि द्वारा निर्धारित, सदस्य होने की अन्य योग्यताएँ हों।

लोकसभा की सदस्यता के लिए अयोग्यता— कोई भी व्यक्ति लोकसभा का सदस्य निर्वाचित न हो सकेगा, यदि उसमें उपरोक्त योग्यताओं का अभाव हो, अथवा यदि वह—

(१) भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार के ऐसे पद पर आसीन

हो, जिससे उसे आर्थिक लाभ होता हो। [भारतीय संघ के मंत्री या किसी राज्य के मंत्री के ऊपर यह प्रतिबंध लागू नहीं होगा।]

(२) पागल हो और किसी न्यायालय द्वारा पागल करार दे दिया गया है।

(३) ऐसा दिवालिया हो, जिसका भुगतान न हुआ हो।

(४) संसद द्वारा निर्मित किसी विधि के अंतर्गत अयोग्य ठहरा दिया गया हो।

(५) उसने स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार कर ली हो, अथवा उसकी राज-भक्ति किसी अन्य देश के प्रति हो, या किसी अन्य देश से उसका लगाव हो।

यदि सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् किसी व्यक्ति में उपर्युक्त अयोग्यताओं में से कोई अयोग्यता उत्पन्न हो जायगी तो वह सदस्य नहीं रहेगा। सदस्य की अयोग्यता सम्बंधी प्रश्न का निर्णय राष्ट्रपति निर्वाचन-आयोग के परामर्श से करेगा।

लोकसभा का कार्यकाल—लोकसभा का कार्य-काल साधारण अवस्था में ५ वर्ष होगा। इस बीच में राष्ट्रपति उसे भंग करके नया निर्वाचन करा सकेगा। पर वह ऐसा तभी करेगा, जब उसे यह विश्वास हो जाय कि लोकसभा में जनता के प्रतिनिधियों का अभाव है। पांच वर्ष की अवधि समाप्त होने पर लोकसभा स्वयं भंग हो जायगी। साधारणतया लोकसभा के कार्यकाल को बढ़ाया नहीं जायगा। परन्तु संकट की घोषणा होने पर संसद इस आशय की विधि-निर्माण करके कार्यकाल एक बार एक वर्ष के लिए बढ़ा सकेगी। इस के पश्चात् किसी भी दशा में लोकसभा का कार्य-काल छः माह से अधिक नहीं बढ़ाया जायगा।

लोकसभा का अध्यक्ष और उपाध्यक्ष—लोक-सभा अपने सदस्यों में से एक अध्यक्ष (स्पीकर) और एक उपाध्यक्ष (डिप्टी स्पीकर)

निर्वाचित करेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष अपने पदों पर तब तक बने रहेंगे, जब तक कि वे लोकसभा के सदस्य रहेंगे, या वे स्वयं त्यागपत्र नहीं देंगे, अथवा उन्हें लोकसभा अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके पदच्युत नहीं कर देगी। अविश्वास या अयोग्यता का प्रस्ताव उपस्थित करने के लिए इस आशय की सूचना १४ दिन पूर्व देनी होगी, लोकसभा के बहुमत द्वारा प्रस्ताव पास होने पर अध्यक्ष पदच्युत हो जायगा। लोकसभा भंग होने के बाद भी अध्यक्ष नई लोकसभा के प्रथम अधिवेशन तक अपने पद पर बना रहेगा। अध्यक्ष का पद रिक्त होने पर उसकी अनुपस्थिति में उसका पद उपाध्यक्ष ग्रहण करेगा। उपाध्यक्ष का पद भी रिक्त होने पर राष्ट्रपति लोकसभा के किसी सदस्य को इस पद पर नियुक्त कर सकेगा। लोकसभा की किसी बैठक में यदि अध्यक्ष या उपाध्यक्ष के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उपस्थित किया जाता है तो वह सभा में उपस्थित तो रह सकेगा परन्तु अपना पद-ग्रहण न करेगा। ऐसा प्रस्ताव उपस्थित होने पर उसे लोकसभा में बोलने और प्रथम मत देने का अधिकार होगा, परन्तु मत समान होने पर वह मत प्रदान न कर सकेगा। लोकसभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के वेतन और भत्ते संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी। जब तक संसद ऐसी विधि नहीं बनाएगी, तब तक उन्हें वही वेतन मिलेगा, जो इन पदाधिकारियों को यह संविधान लागू होने से पहले दिया जाता था।

गण-पूर्ति या कोरम—लोकसभा की कार्यवाही आरंभ करने के लिए सभा में कुल सदस्यों की संख्या की दसवें भाग की उपस्थिति आवश्यक होगी।

राज्य-परिषद

संसद का दूसरा सदन राज्य-परिषद कहलायेगा। जिस भाँति लोकसभा में जनता के प्रतिनिधि होंगे, उसी भांति राज्य-परिषद में संघ के विभिन्न

राज्यों के प्रतिनिधि होंगे। राज्य-परिषद् स्थाई संस्था होगी। वह कभी भी भंग नहीं की जायगी, किन्तु इसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के पश्चात् अपना स्थान रिक्त करेंगे और उन स्थानों की पूर्ति नवीन सदस्यों से होगी।

राज्य-परिषद में अधिक से अधिक २५० सदस्य होंगे। इनमें से अधिक से अधिक २३८ राज्यों की ओर से निर्वाचित होंगे और १२ सदस्य राष्ट्रपति द्वारा नामजद किए जावेंगे। ये १२ सदस्य ऐसे होंगे, जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा का विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव हो। राज्यों के प्रतिनिधि-सदस्यों यानी २३८ सदस्यों का निर्वाचन अप्रत्यक्ष रीति से होगा। इस निर्वाचन की दृष्टि से भारतीय संघ के राज्य दो श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। (१) क और ख वर्ग के राज्य, जिनमें विधान-सभा होंगी; और (२) ग वर्ग के राज्य, जिनमें विधान सभा नहीं होगी, वरन और जो द्वारा शासित होंगे। क और ख वर्ग के राज्यों के प्रतिनिधि उन राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों द्वारा निर्वाचित किए जायंगे। निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व पद्धति से एकल संक्रमणीय मत के अनुसार होगा। 'ग' वर्ग के राज्यों के प्रतिनिधियों का निर्वाचन उस रीति से किया जायगा, जो संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी।

राज्य-परिषद में विभिन्न राज्यों के प्रतिनिधियों की संख्या इस भांति होगी —

(क वर्ग के राज्य) आसाम—६; बिहार—२१; बम्बई—१७; मध्यप्रदेश—१२; मद्रास—२७; उड़ीसा—६; पंजाब—८; उत्तरप्रदेश—३१; पश्चिमी बंगाल—१४। (योग १४५)

(ख वर्ग के राज्य) हैदराबाद—११; जम्मू-कश्मीर—४; मध्य-भारत—६; मैसूर—६; पटियाला और पंजाब-राज्य-संघ—३; राजस्थान—६; सौराष्ट्र—४; त्रावकोर कोचीन—६। (योग ४६)।

(ग वर्ग के राज्य) अजमेर और कुर्ग—१; भोपाल—१; विलासपुर

भा० शा०—१२

और हिमाचल प्रदेश—१ ; दिल्ली—१ ; कच्छ—१ ; मनिपुर और त्रिपुरा—१; विंध्य प्रदेश—४। (योग १०)

कूचबिहार के लिए भी एक प्रतिनिधि दिया गया था, परन्तु वह बंगाल में विलीन हो गया। संभवतः बंगाल को एक और प्रतिनिधि निर्वाचित करने का अधिकार दे दिया जावे। इस प्रकार कुल निर्वाचित सदस्य २०४ हुए। निर्वाचित सदस्यों की अधिकतम संख्या २३८ है ; इससे कम रह सकते हैं, अधिक नहीं।

राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिए योग्यता और अयोग्यता—राज्य-परिषद् का सदस्य निर्वाचित होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्नलिखित योग्यताएँ होना आवश्यक हैं—

(१) वह भारत का नागरिक हो।

(२) उसकी आयु ३० वर्ष से कम न हो।

(३) उसमें वे दूसरी योग्यताएँ भी हों, जो संसद विधि द्वारा निश्चित करे।

राज्य-परिषद् की सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ वही होंगी, जो लोक-सभा की सदस्यता के लिए हैं। सदस्य निर्वाचित होने के पश्चात् किसी अयोग्यता के उत्पन्न होने पर वह व्यक्ति सदस्य नहीं रहेगा। किसी सदस्य में ऐसी अयोग्यता उत्पन्न हो गई है अथवा नहीं, इसका निर्णय राष्ट्रपति निर्वाचन-कमीशन के परामर्श से करेगा।

राज्य-परिषद् का सभापति तथा उपसभापति—भारत का उपराष्ट्रपति राज्यपरिषद् का सभापति होगा। राज्यपरिषद् अपने सदस्यों में से किसी एक को उपसभापति निर्वाचित कर लेगी। सभापति का कार्य-काल पांच वर्ष होगा, बशर्ते कि वह स्वयं त्याग-पत्र न दे दे, अथवा पदच्युत न कर दिया जाय। उपसभापति राज्य-परिषद् का सदस्य न रहने पर, स्वयं त्याग-पत्र देने पर, अथवा पदच्युत किये जाने पर अपने पद पर न रहेगा।

राज्य के सदस्यों का बहुमत अयोग्यता अथवा अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उपसभापति को अपदस्थ कर सकता है। ऐसा प्रस्ताव राज्यपरिषद में उपस्थित करने के लिए १४ दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक होगा। उपसभापति का पद रिक्त होने पर राष्ट्रपति उस पद के लिए किसी सदस्य को नियुक्त करेगा। राज्यपरिषद् की किसी बैठक में सभापति और उपसभापति दोनों की अनुपस्थिति में ऐसा व्यक्ति सभापति का पद सम्हालेगा, जिसे राज्यपरिषद इस पद के लिए नियुक्त करे। जब राज्यपरिषद में सभापति अथवा उपसभापति को अपदस्थ करने का प्रस्ताव उपस्थित हो तो जिसके विरुद्ध ऐसा प्रस्ताव उपस्थित किया जायगा, वह उपस्थित तो रह सकेगा परन्तु अपने पद पर आसीन नहीं होगा। साथ ही इस प्रस्ताव पर उसे मत दान का अधिकार नहीं होगा, वैसे वह परिषद की कार्यवाही में भाग ले सकेगा। सभापति तथा उपसभापति के वेतन व भत्ते संसद विधि द्वारा निर्धारित करेगी और जब तक संसद कुछ व्यवस्था नहीं करे, तब तक सभापति और उपसभापति को वही वेतन तथा भत्ता मिलेगा, जो इन पदाधिकारियों को यह संविधान लागू होने से पूर्व तक मिलते रहे हैं।

संसद के सदस्यों की शपथ—संसद के प्रत्येक सदस्य को अपना स्थान ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के, अथवा राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त व्यक्ति के, सन्मुख संविधान के प्रति भक्ति और कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में निम्नलिखित शपथ ग्रहण करनी होगी—

मैं…अमुक…जो राज्य-परिषद (अथवा लोकसभा) का सदस्य निर्वाचित (या नामजद) हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्यनिष्ठा से पतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूंगा, तथा जिस पद को मैं ग्रहण करने वाला हूँ, उसके कर्तव्यों को श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा।

सदस्यता सम्बन्धी मर्यादा—कोई भी व्यक्ति संसद के दोनों सदनों का एक-साथ सदस्य नहीं हो सकेगा। यदि किसी व्यक्ति का दोनों सदनों के लिए निर्वाचन हो जाता है तो संसद विधि निर्माण करके इस बात का निश्चय करेगी कि वह व्यक्ति किस सदन की सदस्यता ग्रहण कर सकेगा। कोई भी व्यक्ति राज्यों के विधान-मंडल और संसद के किसी सदन का सदस्य एक-साथ न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधान-मंडल और संसद के किसी सदन, दोनों का सदस्य निर्वाचित हो जाता है तो उसे राष्ट्रपति द्वारा निर्धारित अवधि के अन्दर किसी एक स्थान से त्यागपत्र दे देना चाहिए, अन्यथा, ऐसे व्यक्ति का स्थान संसद में उस अवधि के बीत जाने पर रिक्त हो जायगा, यदि वह उस अवधि के पूर्व राज्य के विधान-मंडल से त्यागपत्र न दे।

यदि संसद के किसी सदन का सदस्य साठ दिन तक, अपने सदन की आज्ञा बिना, उसके सब अधिवेशनों में अनुपस्थित रहेगा तो उसका स्थान रिक्त घोषित कर दिया जायगा और उस स्थान के लिए दूसरे व्यक्ति का निर्वाचन होगा।

यदि संसद के किसी सदन में कोई व्यक्ति सदस्य न होते हुए अथवा यह जानते हुए कि वह सदस्य होने के योग्य नहीं है, अथवा संसद की किसी विधि द्वारा उसका संसद में बैठना निषिद्ध कर दिया गया है, संसद में बैठता है अथवा मतदान करता है, तो उस पर जितने दिन वह इस प्रकार बैठता अथवा मतदान करता है, पाँच सौ रुपया प्रति दिन के हिसाब से दंड होगा।

संसद के सदस्यों के विशेषाधिकार तथा वेतन—संसद के प्रत्येक सदस्य को संसद के नियमों एवं आदेशों के अधीन रहते हुए संसद में भाषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहेगी। संसद या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात के लिए सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय

में कोई कार्यवाही न हो सकेगी। अन्य बातों के सम्बन्ध में संसद के सदस्यों को वे सब विशेषाधिकार प्राप्त होंगे, जो संसद समय-समय पर इस सम्बन्ध में निश्चित करेगी।

संसद अपने सदस्यों के वेतन तथा भत्ते समय-समय पर विधि बना कर निश्चत करेगी। जब तक ऐसा कोई निश्चत नहीं किया जाय तब तक सदस्यों को वही वेतन और भत्ते मिलते रहेंगे, जो यह संविधान लागू होने के पूर्व मिलते थे।

संसद की कार्यवाही संबंधी नियम—संसद के वर्ष में कम से कम दो अधिवेशन अवश्य होंगे, और दो अधिवेशनों के बीच छः माह से अधिक का अन्तर नहीं होगा। किसी वर्ष की अन्तिम बैठक और अगले वर्ष की प्रथम बैठक में छः मास से अधिक का अन्तर नहीं होगा। इस नियम के अंतर्गत राष्ट्रपति को निर्धारित स्थान और समय पर संसद के अधिवेशन कराने और उन्हें विसर्जित करने का अधिकार है। राष्ट्रपति को संसद के संमुख भाषण देने तथा अपने सन्देश भेजने का अधिकार है। प्रत्येक अधिवेशन के आरम्भ में राष्ट्रपति संसद के दोनों सदनों को संबोधित करेगा और अधिवेशन निमंत्रित करने का कारण बतलायेगा। प्रत्येक मंत्री और महान्यायवादी (अटार्नी-जनरल) संसद में भाषण दे सकता है और उसके कार्य में सदस्य की हैसियत से भाग ले सकता है किन्तु महान्यायवादी को मत देने का अधिकार नहीं है।

संसद के प्रत्येक सदन में तथा दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशन में समस्त निर्णय बहुमत से किए जावेंगे। सभापति और अध्यक्ष साधारण दशा में अपना मत नहीं देंगे; वे केवल अपना निर्णायक मत देंगे, जब किसी विषय के पक्ष और विपक्ष में मत बराबर होंगे। प्रत्येक भवन का कार्य आरम्भ करने के लिए उस सदन के दशमांश सदस्यों की उपस्थिति आवश्यक होगी। कोरम पूरा न होने की दशा में सभापति अथवा अध्यक्ष को अधिकार है कि वह बैठक को स्थगित करदे, अथवा कोरम पूरा होने

तक प्रतीक्षा करे। संयुक्त अधिवेशन की कार्यवाही के नियम राष्ट्रपति राज्य-परिषद् के सभापति तथा लोकसभा के अध्यक्ष के परामर्श से बनाएगा। संयुक्त अधिवेशन में लोकसभा का अध्यक्ष सभापति का आसन ग्रहण करेगा।

संसद की कार्यवाही हिन्दी या अंग्रेजी में होगी। यदि कोई सदस्य इन दोनों भाषाओं में से किसी में भी अपने विचार प्रगट नहीं कर सकता तो उसे अपनी भाषा में बोलने की अनुमति सभापति अथवा अध्यक्ष दे सकेगा। यह व्यवस्था १५ वर्ष तक चलेगी। उसके पश्चात् अंग्रेजी का व्यवहार बन्द हो जायगा और कार्यवाही हिन्दी में ही हुआ करेगी।

संसद का अधिवेशन साधारणतः दिन के ग्यारह बजे से पांच बजे तक होते हैं। आरम्भ के, पहिले घंटों में प्रश्नों के उत्तर दिए जाते हैं। संसद के अन्य कार्य के दो भाग होते हैं—सरकारी और गैर सरकारी। गैर-सरकारी काम के लिए राष्ट्रपति द्वारा कुछ दिन निर्धारित कर दिए जाते हैं, अन्य दिनों में सरकारी काम होता है। सेक्रटरी विचारणीय विषयों की सूची तैयार करता है, उसी के अनुसार कार्य होता है ; सभापति की आज्ञा बिना, किसी नवीन विषय पर विचार नहीं किया जाता।

दोनों सदनों में सदस्यों के बैठने का क्रम सभापति तथा अध्यक्ष निश्चय करते हैं। प्रत्येक सदस्य अपने सदन के सभापति अथवा अध्यक्ष को सम्बोधित करके बोलता है, और उसी के द्वारा प्रश्न करता है। जहाँ तक कोई सदस्य सदनों के नियम की अवहेलना न करे, उसे भाषण देने की स्वतंत्रता है। सदनों में शान्ति रखना सभापति तथा अध्यक्ष का कर्तव्य है। इसके लिए आवश्यकता होने पर वह किसी सदस्य का एक दिन या अधिक समय तक के लिए सदन में आना बन्द कर सकता है, अथवा अधिवेशन स्थगित कर सकता है।

संसद के कार्य—संसद एक विधान-मंडल है। उसका मुख्य कार्य कानून बनाना है। इसके साथ ही उसे यह देखना होता है कि सरकार

या कार्यपालिका उन कानूनों को ठीक अमल में लाती है या नहीं। लोकतंत्र शासन में सरकार के प्रमुख अधिकारी ऐसे व्यक्ति (मंत्री) होते हैं जो संसद के सदस्य होते हैं और उसके प्रति उत्तरदायी रहते हैं। तथापि संसद का कार्य है कि सरकार पर नियंत्रण रखे और उसके कामों की जाँच करती रहे। शासन-चक्र की धुरी धन है; सरकारी पदाधिकारियों के बने रहने तथा उनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों के लिए धन की अनिवार्य आवश्यकता है। इस लिए संसद सरकारी आय-व्यय पर नियंत्रण रखती है; उसे बजट की विविध मदों को स्वीकार या अस्वीकार करने का अधिकार होता है। अस्तु, संसद के कार्यों को निम्नलिखित भागों में बांटा जा सकता है :—

१—कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य।
२—शासन सम्बन्धी कार्य।
३—सरकारी आय-व्यय सम्बन्धी कार्य।
४—संविधान में संशोधन।

(१) कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य— कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य के प्रसंग में हमें दो बातें जाननी हैं :—

(क) संसद का कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार-क्षेत्र।
(ख) कानून-निर्माण सम्बन्धी कार्य-प्रणाली

कानून निर्माण सम्बन्धी क्षेत्र—कानून (विधि) निर्माण संबंधी समस्त विषयों को तीन सूचियों में बाँटा गया है। (१) संघ सूची—इसके अंतर्गत वे विषय हैं, जिनके संबन्ध में संसद विधि निर्माण कर सकती हैं। (२) राज्य सूची—इसके अन्तर्गत वे विषय हैं, जिनके सम्बन्ध में 'क' और 'ख' वर्ग के स्वायत्त राज्य अपने विधान मंडलों द्वारा विधि निर्माण करेंगे। (३) समवर्ती सूची—इसके अन्तर्गत वे विषय हैं, जिनके विषय में राज्य और संघ दोनों ही विधि निर्माण कर

सकेंगे परन्तु राज्यों को इन विषयों पर विधि निर्माण करने का अधिकार तभी होगा जब संसद निर्माण न करे। संसद संघ-सूची, एवं समवर्ती-सूची के अन्तर्गत दिए समस्त विषयों पर विधि निर्माण कर सकेगी। समवर्ती सूची के विषयों पर यदि राज्य द्वारा बनायी विधि का संसद द्वारा बनायी विधि से विरोध होता हो तो संसद की विधि को प्रधानता एवं प्राथमिकता मिलेगी, और वही लागू भी होगी; राज्य द्वारा बनाई विधि उस सीमा तक अवैध होगी, जहां तक उसका संसद की विधि से विरोध है। परन्तु यदि राज्य की विधि पर पहले राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल चुकी हो, तो वही लागू हो सकेगी, किन्तु संसद को अधिकार है कि किसी भी समय ऐसी विधि का संशोधन कर सकती है।

अवशिष्ठ विषयों पर भी जो किसी भी सूची में नहीं है, संसद कानून बना सकेगी। 'ग' वर्ग के राज्यों अर्थात् संघ द्वारा शासित राज्यों की समस्त विधियों का निर्माण संसद करेगी, भले ही वे किसी भी सूची में हों। स्वायत्त-राज्यों के सम्बन्ध में भी संसद को किसी विषय की विधि निर्माण करने का अधिकार है; परन्तु इस अधिकार का उपयोग उसी समय हो सकता है, जब राज्य-परिषद् अपने उपस्थित और मत देने वाले सदस्यों के कम-से-कम दो तिहाई सदस्यों से ऐसा प्रस्ताव पास करे कि राष्ट्रीय हित की के लिए ऐसा करना आवश्यक है। राज्य-परिषद् के प्रस्ताव पास करने पर संसद को जो अधिकार राज्य-सूची के विषयों पर कानून बनाने का मिलेगा, वह एक बार में एक साल तक के लिए ही होगा। प्रस्ताव पास करके कानून की अवधि एक-एक साल के लिए बढ़ायी जा सकती है। प्रस्ताव में दी हुई अवधि समाप्त होने के बाद छः माह तक यह कानून अमल में आसकेगा।

यदि दो या अधिक राज्यों के विधान-मंडलों को यह जान पड़े कि राज्य-सूची के किसी विषय पर संसद् द्वारा कानून बनाया जाना अच्छा होगा और उन राज्यों के विधान मंडलों के सब सदन इस विषय का प्रस्ताव पास कर

दें तो संसद के लिए उस विषय के सम्बन्ध में कानून बनाना विधि-संगत हो जायगा। ऐसा कानून उक्त राज्यों पर तो लागू होगा ही, उनके अति-रिक्त वह कानून उन अन्य राज्यों पर भी लागू होगा, जिनके विधान-मंडल प्रस्ताव पास करके उस कानून को स्वीकार करलें।

संसद को किसी अन्य देश या देशों के साथ की हुई किसी संधि या करार अथवा किसी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन आदि में किये गये किसी निश्चय के पालन के लिए भारत के किसी सम्पूर्ण क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए कानून बनाने का अधिकार है।

संकट काल में संसद स्वायत्त राज्यों के सम्बन्ध में राज्य-सूची में दिए विषयों पर भी विधि निर्माण कर सकेगी। ये कानून संकट-काल समाप्त होंने के छः माह बाद तक ही अमल में आएँगे।

इस प्रकार संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि संसद ऐसे प्रत्येक विषय के कानून बनाती है, जिसका सम्बन्ध भारतीय संघ से हो, दो या अधिक स्वायत्त राज्यों से हो, या संघ द्वारा शासित राज्यों से अथवा अवशिष्ट विषयों से हो।

संघ-सूची

संघ-सूची के विषयों में से कुछ मुख्य ये हैं :—(१) सब प्रकार की सेनाएँ, हवाई जहाज, (२) संयुक्त राष्ट्र-संगठन और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों से सम्बन्ध, (३) विदेशों तथा विदेशियों से सम्बन्ध, (४) नागरिकता, (५) बड़े बन्दरगाह (६) डाक, तार, टेलीफोन और बेतार-के तार (७) आयात-निर्यात कर, और संघीय आय के अन्य साधन (८) सिक्का, नोट आदि, (९) संघ का लोक-ऋण, (१०) सेविंग बैंक, (११) संघीय व्यय और हिसाब-परीक्षा, (१२) दीवानी और फौजदारी कानून तथा उनकी प्रकिया, (१३) व्यापार बैंक और बीमे का काम (१४) तिजारती कम्पनियाँ और समितियाँ, (१५) अफीम आदि पदार्थों की पैदावार, खपत और निर्यात का नियंत्रण, (१६) कापीराइट

[किताब आदि छापने का पूर्ण अधिकार] (१७) भारत में आना अथवा यहाँ से विदेश जाना, (१८) केन्द्रीय पुलिस का संगठन, (१६) हथियार और युद्ध-सामग्री का नियंत्रण, (२०) मनुष्य-गणना और आँकड़े (स्टेटिसटिक्स), (२१) अखिल भारतवर्षीय नौकरियाँ, (२२) राज्यों की सीमा, (२३) कृषि-आय को छोड़कर अन्य आय पर कर, (२४) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय, (२५) उच्चतर शिक्षा या गवेषणा की संख्याओं में एकसूत्रता लाना। (२६) उच्चतम न्यायालय, (२७) राष्ट्रपति और गवर्नरों का वेतनादि और (२७) निर्वाचन-कमीशन आदि।

समवर्ती सूची

समवर्ती सूची के कुछ मुख्य मुख्य विषय ये हैं :— (१)फौजदारी कानून (दंड-विधि) और कार्य पद्धति (२) कैदियों या अभियुक्तों का एक राज्य से दूसरे राज्य को हटाया जाना (३) विवाह और सम्बन्ध-विच्छेद (तलाक); शिशु और नाबालिग, उत्तराधिकार, (४) दस्तावेजों की रजिस्टरी, (५) ठेके, जिनमें साझेदारी, एजन्सी और माल ढोने के ठेके शामिल हैं, (६) ट्रष्ट और ट्रष्टी, (७) न्यायालय की मानहानि, (८) आवारागर्दी, (६) पागलपन और दिमागी कमी तथा इन विकारों वाले व्यक्तियों को रखने या इलाज करने के स्थान, (१०) पत्र-पत्रिकाएँ, पुस्तकें और छापेखाने, (११) जानवरों पर बेरहमी की रोकथाम, (१२) कारखाने (१३) मजदूरों की भलाई, काम की शर्तें, प्राविडेन्ट फंड, बुढ़ापे की पेन्शन और प्रसूति-सुविधाएँ, (१४) छूत की बीमारियों को रोकना, (१५) कानूनी, डाक्टरी और दूसरे पेशे, (१६) मूल्य-नियंत्रण, और (१७) खाने के पादार्थों में मिलावट; आदि।

कानून-निर्माण ; साधारण विधेयक सम्बन्धी कार्य प्रणाली—कानून बनने के लिए जो मसौदा संसद में उपस्थित किया जाता है, उसे विधेयक या 'बिल' कहा जाता है। विधेयक दो प्रकार के होते हैं—धन

सम्बन्धी विधेयक और साधारण विधेयक। दोनों प्रकार के विधेयकों को पास करने के लिए अर्थात् कानून का रूप देने के लिए अलग-अलग कार्य प्रणाली हैं।

धन सम्बन्धी छोड़ कर अन्य अर्थात् साधारण विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकेगा। दोनों सदनों से पास होने पर ही वह विधि बन सकेगा। यदि कोई विधेयक एक सदन में पास हो जाता है और दूसरे सदन में पास नहीं हो पाता, या वह उसमें ऐसा संशोधन कर देता है जो पहले सदन को स्वीकार न हो या वह उसे छः मास तक पास न करे तो ऐसी स्थिति में राष्ट्रपति दोनों सदनों का संयुक्त अधिवेशन कर सकेगा। यदि संयुक्त अधिवेशन में यह विधेयक उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास हो जाता है तो यह दोनों सदनों द्वारा पास समझा जावेगा। संयुक्त अधिवेशन में संशोधनों के सम्बन्ध में कुछ प्रतिबन्ध है। यदि एक विधेयक (बिल) एक सदन में पास होकर दूसरे सदन में पहुँचता है और दूसरा सदन इसमें कुछ संशोधन कर देता है, जो पहले सदन को स्वीकार नहीं है, तो संयुक्त अधिवेशन में केवल इन संशोधनों पर और ऐसे प्रासंगिक संशोधनों पर ही विचार हो सकेगा, जिनके सम्बन्ध में दोनों सदनों का एक मत न हो सका। परन्तु यदि विधेयक दूसरे सदन में पास नहीं किया जाता और मूल रूप में ही प्रथम सदन को लौटा दिया जाता है तो इस विधेयक में संयुक्त अधिवेशन में कोई संशोधन उपस्थित नहीं किया जा सकेगा। हाँ, यदि विधेयक के एक सदन से दूसरे सदन में भेजने की देर के कारण कुछ संशोधन आवश्यक हो जायंगे तो उन पर अवश्य विचार किया जा सकेगा।

विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास होने पर राष्ट्रपति की स्वीकृति के लिये भेजा जायगा। राष्ट्रपति चाहे तो उस पर अपनी स्वीकृति दे दे अथवा उसे संसद को पुनर्विचारार्थ लौटा दे। स्वीकृति न देने की दशा में राष्ट्रपति यथासम्भव शीघ्र ही विधेयक को अपनी सिफारिशों के साथ संसद को लौटा

देगा। संसद उस पर पुनः विचार करेगी और विधेयक दुबारा राष्ट्रपति के संमुख स्वीकृति के लिए प्रस्तुत किया जायगा; इस बार राष्ट्रपति को हस्ताक्षर द्वारा उसे अपने स्वीकृति देनी ही होगी। राष्ट्रपति की स्वीकृति के पश्चात् विधेयक कानून बन जायगा। संविधान में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है कि यदि राष्ट्रपति विधेयक पर प्रथम बार ही, जब विधेयक उसके संमुख रखा जावे, हस्ताक्षर करने से मना कर-दे तो क्या होगा? समयानुसार इस सम्बन्ध में प्रथा या रिवाज स्थापित हो जावेंगे।

धन सम्बन्धी विधेयकों की कार्य प्रणाली—धन संबन्धी विधेयकों की कार्य-प्रणाली इससे भिन्न है। ये लोक-सभा में ही प्रस्तावित किये जा सकेंगे। राज्यपरिषद में उन्हें प्रस्तावित न किया जा सकेगा। लोकसभा में पास होने पर ऐसा विधेयक राज्यपरिषद में उसकी सिफारिश के लिए भेज दिया जायगा। राज्यपरिषद को १४ दिन के अन्दर ही अपनी सिफारिश के साथ इसे लोकसभा को वापिस भेजना होगा। यदि यह विधेयक १४ दिन के अन्दर राज्यपरिषद द्वारा वापिस नहीं किया जाता तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायगा। यदि राज्यपरिषद १४ दिन के अन्दर ही विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित वापिस भेज देती है तो लोकसभा को उन सिफारिशों को मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार है। इसके पश्चात विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जायगा। संयुक्त अधिवेशन वाली व्यवस्था धन सम्बन्धी विधेयकों पर लागू नहीं होगी। धन संबन्धी विधेयकों पर राष्ट्रपति पहली ही बार में स्वीकृति प्रदान कर देगा, और विधेयक कानून बन जावेगा।

(२) शासन संबन्धी कार्य—संसद का दूसरा महत्वपूर्ण कार्य देश की नीति निर्धारित करना एवं मन्त्रिपरिषद पर नियंत्रण रखना है। यह कार्य वह प्रस्ताव पास करके, प्रश्न पूछ कर तथा अन्य उपायों द्वारा पूरा करती है।

प्रस्ताव—प्रस्ताव तीन प्रकार के होते हैं—(१) साधारण नीति सम्बन्धी प्रस्ताव । इस प्रकार के प्रस्ताव पास करके संसद सरकार से किसी कार्य के लिए सिफारिश करती है । सरकार को ऐसे प्रस्तावों को मानना ही होता है, क्योंकि इस प्रकार के प्रस्ताव जनता का मत व्यक्त करते हैं । (२) काम-रोको प्रस्ताव । सार्वजनिक महत्व के प्रश्न या विशेष दुर्घटना आदि के सम्बन्ध में बहस करने के लिए कारवाई स्थगित करने का प्रस्ताव किया जाता है । यदि अध्यक्ष इस प्रस्ताव को लेना स्वीकार करले तो उसी दिन चार बजे अन्य कार्यवाही बन्द करके इस पर विचार किया जाता है । कभी-कभी ऐसा भी होता है कि प्रस्ताव पर वाद-विवाद होते हुए ही सदन की बैठक का समय समाप्त हो जाता है, और प्रस्ताव पर मत लिए जाने का अवसर नहीं आता । इस प्रकार निर्णय न होने की दशा में प्रस्ताव को 'चर्चा में ही गया' (टाक्ड आउट) कहते हैं । (३) अविश्वास या निन्दा का प्रस्ताव । यह प्रस्ताव सरकारी नीति से असन्तोष प्रगट करने, अथवा मन्त्रिपरिषद को अपदस्थ करने के लिये उपस्थित किया जाता है । यदि लोकसभा के कुछ सदस्यों का मत यह हो कि सरकार का कार्य जनता के हित में नहीं हो रहा है तो कोई भी सदस्य इस प्रकार का प्रस्ताव उपस्थित कर सकता है । अध्यक्ष किसी सदस्य को इस प्रकार के प्रस्ताव करने की अनुमति उसी दशा में देता है, जब सदस्यों की एक निर्धारित संख्या खड़ी होकर, अनुमति देने के पक्ष में होना सूचित करे । ऐसे प्रस्ताव पर अध्यक्ष द्वारा निश्चित किए हुए दिन विचार हो सकेगा । इसके पास होने पर मन्त्रिपरिषद को त्याग-पत्र देना होता है । इस भय से सरकार अपना कार्य ठीक तरह से करती रहती है ।

प्रश्न—मन्त्रिपरिषद की स्वेच्छाचारिता और अधिकारों के दुरुपयोग पर अंकुश रखने का एक मार्ग प्रश्न पूछना भी है । सदस्य सार्वजनिक महत्व के प्रश्न पूछकर शासन सम्बन्धी जानकारी प्राप्त करते हैं । इसके

अतिरिक्त वे सरकार का ध्यान शासन की कमजोरियों या जनता की शिकायतों की ओर आकर्षित करते हैं। जिस विषय पर कोई प्रश्न पूछा जाता है, उससे सम्बन्ध रखनेवाला विभाग अपने कार्यों में अधिक सावधान हो जाता है। जब कोई सदस्य किसी सरकारी कर्मचारी के अनुचित कार्य के सम्बन्ध में प्रश्न करता है तो उस कर्मचारी को अपनी सफाई देनी होती है, अथवा नौकरी से हाथ धोना पड़ता है।

जब एक प्रश्न का उत्तर मिल चुके तो ऐसा पूरक प्रश्न पूछा जा सकता है, जिससे मूल प्रश्न के विषय के सम्बन्ध में अधिक प्रकाश पड़े। सभापति को अधिकार है कि कुछ दशाओं में वह किसी प्रश्न, उसके अंश या पूरक प्रश्न के पूछे जाने की अनुमति न दे। किसी सरकारी विभाग के सदस्य से वही प्रश्न किए जा सकते हैं, जिनसे सरकारी तौर पर उसका सम्बन्ध हो।

संसद का सरकार पर नियंत्रण—ऊपर बताया गया है कि सरकार पर नियंत्रण रखने के लिए संसद में विविध प्रकार के प्रस्ताव किए जाते हैं, और प्रश्न पूछे जाते हैं। इसके अतिरिक्त (१) संसद कुछ समितियाँ बना देती है, जिनका काम यह देखना होता है कि सरकारी विभागों में, संसद द्वारा निर्धारित नीति से काम होता है या नहीं। ऐसी प्रत्येक समिति में प्रायः एक मंत्री तथा संसद के कुछ सदस्य रहते हैं। (२) संसद सरकार द्वारा उपस्थित विधेयकों को पास करने से पूर्व उन पर वाद-विवाद करती है। (३) बजट के अवसर पर संसद प्रत्येक विभाग की मदों पर विचार करते समय उस विभाग के कार्य और स्थिति की आलोचना करती है। सरकार को यह प्रयत्न करना होता है कि किसी मांग को अस्वीकार होने या उस पर कटौती का प्रस्ताव आने का प्रसंग उपस्थित न हो। (४) संसद में विरोधी दल सरकार की आलोचना करने और उसके दोष दिखाने का काम करता रहता है।

विरोधी दल का लक्ष्य यह होता है कि सरकारी त्रुटियों को प्रभावशाली

ढंग से प्रकाश में लाता रहे, जिससे जनता में उसके विरुद्ध भावना बढ़े, यहां तक किसी समय विरोधी दल को अपनी सरकार बनाने का अवसर मिल जाय। यह स्पष्ट ही है कि विरोधी दल का अच्छी तरह संगठन होना बहुत आवश्यक है। उसके सामने राष्ट्र की उन्नति के लिए निश्चित कार्य-क्रम और योजनाएँ होनी चाहिएं। साम्प्रदायिक या अन्य क्षुद्र आधार पर उसका काम करना ठीक नहीं होता। भारत में (केन्द्र में, तथा राज्यों में) अभी विरोधी दलों का ठीक निर्माण नहीं हुआ है। कुछ आदमी सरकारी नीति या कार्यों की आलोचना कर लेते हैं, पर उनका ऐसा संगठन नहीं होता कि सरकारी दल को उनके मतों से हार जाने की चिन्ता हो। ऐसी स्थिति में सरकार पर यथेष्ट अंकुश नहीं रहते और उसे अपने स्थायित्व का भरोसा रहने से उसके एक सीमा तक स्वच्छंद होने की भावना रहती है। लोकतंत्र की रक्षा के लिए विरोधी दल का निर्माण अनिवार्य होता है। इंगलैंड आदि कितने ही देशों में विरोधी दल के नेता को सरकार द्वारा वेतन दिया जाता है। भारतीय संविधान में इसकी व्यवस्था नहीं की गयी। देश में समाजवादी दल क्रमशः बढ़ रहा है, इसी में विरोधी दल के निर्माण की सम्भावना है। अस्तु, वर्तमान दशा में सरकार पर नियंत्रण यथेष्ट नहीं है।

सरकारी आय-व्यय सम्बन्धी कार्य—संसद का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य संघ-सरकार की आय-व्यय निश्चय और नियंत्रित करना है। संसद यह निश्चय करेगी कि संघ की आय किन-किन साधनों से होगी, उसके लिए कौन-कौन से कर लगाए जावेंगे, और प्राप्त आय को किन-किन मदों में खर्च किया जायगा।

राष्ट्रपति प्रत्येक आर्थिक वर्ष के आरम्भ में एक बजट या वित्त-विवरण संसद की दोनों सभाओं के सामने उपस्थित करायेगा। इसमें व्यय-अनुमान के संबंध में दो तरह की रकमें अलग-अलग दिखाई जायंगी:—(१) जिन्हें संचित निधि अर्थात् सरकारी आय से देना अनिवार्य है,

जिन पर संसद का मत नहीं लिया जायगा, और (२) जिन्हें देने का प्रस्ताव है; जिनपर संसद का मत लिया जायगा। पहली श्रेणी में राष्ट्रपति का वेतन, भत्ता, तथा उसके आफिस का अन्य खर्च, राज्य-परिषद् के सभापति, उपसभापति एवं लोकसभा के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष का वेतन और भत्ता, ऋण के रूप में देय धन; उच्चतम न्यायालय के जजों का और नियंत्रक महालेखा-परीक्षक का वेतन, भत्ता, पेन्शन; उच्चन्यायालय के जजों की पेन्शन आदि खर्चे शामिल होंगे। ये सब खर्चे संसद की किसी सभा के मत के लिए नहीं रखे जायंगे, किन्तु उसकी किसी भी सभा में इनकी अनुमानित रकमों पर बहस की जायगी।

इन्हें छोड़कर शेष अनुमानित खर्च लोकसभा में धन की मांग के रूप में रखे जायंगे। सभा को अधिकार होगा कि उन्हें स्वीकार करे या किसी मांग को स्वीकार करने से इन्कार कर दे। किसी मद की रकम वह घटा भी सकती है। धन के लिए कोई माँग राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना नहीं की जायगी।

लोकसभा द्वारा माँगें स्वीकृत हो जाने के पश्चात्, लोकसभा में ही दोनों प्रकार के व्यय के लिए सरकार की संचित निधि में से धन प्राप्त करने के लिए विनियोग-विधेयक उपस्थित किया जायगा। इस विधेयक के स्वीकृत हो जाने पर ही संचित निधि में से धन निकाल कर खर्च किया जा सकेगा।

राष्ट्रपति को अधिकार है कि यदि वह इस स्वीकृत धन-राशि को पर्याप्त न समझे और उसके विचार से भविष्य में अधिक धन की आवश्यकता हो तो वह अतिरिक्त व्यय के लिए अतिरिक्त या पूरक मांग भी करे। इन मांगों की कार्यवाही भी साधारण मांगों की भांति होगी। लोकसभा को अधिकार है कि वह भविष्य सम्बन्धी मांग या असाधारण मांग भी स्वीकार कर दे। इन मांगों की स्वीकृति के लिए भी साधारण मांगों की प्रक्रिया ही व्यवहार में आएगी।

वित्त सम्बन्धी विधेयक राज्यपरिषद में प्रथम बार प्रस्तावित न किए जा सकेंगे और न ऐसे विधेयक राष्ट्रपति की स्वीकृति के बगैर प्रस्तावित किए जा सकेंगे। यह नियम किसी संशोधन के प्रस्तावित करने अथवा किसी करके हटाने में लागू न होगा।

वार्षिक वित्त-विवरण यानी बजट पर राय देने का अधिकार केवल लोकसभा के सदस्यों को होगा, राज्यपरिषद के सदस्यों को नहीं। किसी मद में खर्च बढ़ाने सम्बन्धी प्रस्ताव अथवा नये खर्च सम्बन्धी प्रस्ताव किसी मंत्री द्वारा ही, राष्ट्रपति की अनुमति से, लोकसभा में पेश किया जा सकेगा, लोकसभा के किसी सदस्य द्वारा नहीं।

बजट पास हो जाने के पश्चात् राज्य की आय के लिए लगाए जाने वाले करों का प्रस्ताव वित्त-विधेयक के रूप में लोकसभा में प्रस्तुत किया जायगा। इन पर भी लोकसभा के सदस्यों को राय देने का अधिकार होगा, राज्यपरिषद के सदस्यों को नहीं।

नया संविधान बनने से पूर्व अर्थमंत्री २८ फरवरी को अपना बजट विधान-मंडल के संमुख रख देता था और ३१ मार्च तक यह वाद-विवाद के पश्चात् पास हो जाता था। अब संविधान में ऐसी कोई निश्चित तिथि इस कार्य के लिए नहीं रखी है। संसद को यह अधिकार दिया गया है कि वह बजट पास होने तक संघ-सरकार का खर्च चलाने के लिए एक निश्चित रकम स्वीकार करे। इसके पश्चात् संसद के सदस्य अपनी सुविधानुसार बजट पर विचार करके उसे पास कर सकते हैं। उनके लिए यह आवश्यक नहीं कि वह किसी निश्चित तिथि तक उसे पास कर दें। संसद को पूरक बजट भी पास करने का अधिकार है, यह उस दशा में किया जायगा, जब सरकार पर कोई असामयिक खर्च आ पड़े, या सरकार को किसी विशेष कारणवश धन की कमी पड़ जाय। बजट पास होने के पश्चात् नियंत्रक महालेखा-परीक्षक (कंट्रोलर आडीटर-जनरल) का काम यह देखना होगा कि खर्च बजट में स्वीकृत योजना के अनुसारहोता है या नहीं।

नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक—नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। वह अपने पद से केवल उसी रीति और उन्हीं कारणों से हटाया जा सकेगा, जिस रीति और जिन कारणों से उच्चतम न्यायाधीश हटाया जा सकता है। उसका वेतन तथा सेवा की शर्तें संसद निश्चय करेगी और इस निश्चय से पूर्व उसे ४०००) मासिक वेतन दिया जायगा। उसके कार्यकाल में, उसके वेतन तथा भत्ते आदि में कोई कमी न की जा सकेगी। संघ और राज्यों के हिसाब को ऐसे रूप में रखा जायगा, जैसा कि भारत का नियंत्रक-महालेखा-परीक्षक, राष्ट्रपति के अनुमोदन से, निश्चित करेगा।

(४) संविधान में संशोधन—संविधान में संशोधन सम्बन्धी विधेयक संसद के किसी भी सदन में प्रस्तावित किया जा सकेगा। यदि यह विधेयक दोनों सदनों के सदस्यों के बहुमत एवं उपस्थित सदस्यों में दो-तिहाई से अधिक सदस्यों द्वारा पास हो जाता है और राष्ट्रपति की स्वीकृति मिल जाती है तो विधेयक के अनुसार संविधान में परिवर्तन हो जायगा। स्वायत्त राज्यों के अधिकारों के क्षेत्र से सम्बन्धित विषयों में संविधान में परिवर्तन करने के पूर्व, उन राज्यों के विधान-मंडलों की स्वीकृति आवश्यक होगी। इस सम्बन्ध में विशेष अन्यत्र लिखा गया है।

भारतीय संसद की विशेषताएँ

संसद की प्रभुता—भारतीय संघ की संसद पूर्ण प्रभुता-सम्पन्न है। बाह्य रूप से इसकी प्रभुता (सावरेन्टी) असीमित है, अर्थात् किसी बाहर की शक्ति का इस पर कोई दबाव या प्रभाव नहीं है, परन्तु आन्तरिक रूप से इसकी प्रभुता राज्यों के अधिकार द्वारा सीमित है जैसा कि संघात्मक पद्धति वाले अन्य देशों में है। प्रत्येक संघात्मक संविधान में केन्द्र और राज्यों के अधिकार बंटे रहते हैं। न्यायपालिका इस बात का नियंत्रण करती है कि केन्द्र और राज्य एक दूसरे के अधिकारों में हस्तक्षेप न करें। भारतीय संविधान में भी यही सिद्धान्त अपनाया गया है।

राज्य-परिषद के अधिकार—राज्यपरिषद को लोकसभा के मुकाबले में बहुत कम अधिकार प्रदान किए गए हैं। साधारण विधि बनाने में राज्यपरिद अधिक-से-अधिक छः माह तक विधेयक की स्वीकृति रोक सकती है। इसके पश्चात् विधेयक संयुक्त अधिवेशन में भेजा जायगा, जहाँ लोकसभा के सदस्यों की संख्या दूनी होगी और विधेयक आसानी से स्वीकृत हो जायगा। इस प्रकार किसी भी विधेयक को विधि का रूप देना लोकसभा के हाथ में है।

वित्त और धन सम्बन्धी मामलों में राज्यपरिषद के अधिकार अत्यन्त सीमित हैं। अनुदान की मांग करने का तो राज्यपरिषद को कोई अधिकार है ही नहीं, और धन सम्बन्धी विधेयक उसमें प्रथम बार प्रस्तावित नहीं किये जा सकते। धन सम्बन्धी विधेयकों पर उसकी सिफारिशों को मानना न मानना लोकसभा की इच्छा पर है, इस प्रकार राज्य-परिषद् राज्य के व्यय पर कोई नियंत्रण नहीं रख सकती। आर्थिक बिलों की स्वीकृति में वह केवल १४ दिन की देर कर सकती है।

राज्यपरिषद् को कम अधिकार प्रदान करना इस दृष्टि से न्याय सङ्गत भी है कि सिद्धान्ततः लोकसभा जनता का प्रतिनिधित्व करती है और राज्यपरिषद राज्यों का। यह उचित ही है कि राष्ट्र के प्रतिनिधियों का अधिकार सर्वोच्च रहे और वित्त एवं धन सम्बन्धी विषय उनके नियंत्रण में रहें।

राष्ट्रपति का निषेधाधिकार—संसार के प्रमुख संविधानों में कार्य-पालिका के प्रधान को यह अधिकार रहता है कि वह विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत विधेयक को अपनी स्वीकृति प्रदान न करे। यह वैधानक प्रधान का निषेधाधिकार कहा जाता है। भारत में भी राष्ट्रपति को यह निषेधाधिकार संविधान द्वारा प्रदान किया गया है, परन्तु यहाँ निषेधाधिकार एक प्रकार से किसी विधेयक को स्थगित करने का ही अधिकार है, क्योंकि राष्ट्रपति

की स्वीकृति न मिलने पर संसद उसे साधारण बहुमत से फिर स्वीकार कर सकती है और इस बार राष्ट्रपति को उस पर हस्ताक्षर करने ही होंगे।

साधारण दृष्टि से देखने पर यह उचित प्रतीत नहीं होता कि संपूर्ण राष्ट्र के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृत विधेयक को राष्ट्रपति अस्वीकार करदे, परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर राष्ट्रपति को यह अधिकार देना न्याय-संगत है। एक तो राष्ट्रपति भी देश की जनता द्वारा निर्वाचित है; दूसरे, किसी समय संसद अपने निर्णय में गलती कर सकती है और राष्ट्रपति अपने निषेधाधिकार द्वारा संसद को फिर विचार करने का मौका देता है, इस से संसद अपनी भूल का सुधार कर सकती है। इससे संसद के अधिकारों में कमी नहीं आती, क्योंकि उसे राष्ट्रपति की सिफा-रिश को मानने या न मानने का अधिकार है; वह चाहे तो विधेयक को दूसरी बार पास करके राष्ट्रपति की सिफारिश का प्रभाव रद्द कर सकती है।

संसद और न्यायपालिका—न्यापलिका को अधिकार है कि वह संसद द्वारा निर्मित किसी विधि को संविधान के अनरूप न होने के कारण अवैधानिक करार दे और उसके प्रभाव को सर्वथा समाप्त करदे। नागरिकों के अधिकारों की रक्षा की दृष्टि से न्यायपालिका का यह अधिकार बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि इस अधिकार के द्वारा न्यायपालिका कार्यपालिका की स्वेच्छाचारिता पर नियंत्रण रख सकेगी, अन्यथा कार्यपालिका संसद में अपना बहुमत होने के बल पर चाहे जो विधि बनाकर नागरिकों की स्वतन्त्रता का अपहरण कर सकती है।

संसद और कार्यपालिका—संसद और कार्यपालिका का सम्बन्ध इतना घनिष्ट है कि एक के बगैर दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती। राष्ट्रपति एक ओर कार्यपालिका का प्रधान है दूसरी ओर ससद का अंग भी। मन्त्रिपरिषद के सदस्य कार्यपालिका के सदस्य हैं, तो संसद के नेता भी।

मन्त्रिपरिषद कानूनी तौर पर राष्ट्रपति के प्रति उत्तरदायी है किन्तु उसका वास्तविक उत्तरदायित्व संसद के ही प्रति है। संसद के विश्वास के अभाव में मन्त्रिपरिषद एक क्षण नहीं रह सकती। संकटकालीन स्थिति में छः सप्ताह के उपरान्त अध्यादेशों की स्वीकृति भी संसद से लेना आवश्यक है। राष्ट्रपति अपने अधिकारों का कभी दुरुपयोग न करे, इसके लिए उस पर महाभियोग लगा कर उसे अपदस्थ करने का अधिकार भी संसद को ही है।

संसद कार्यपालिका पर नियंत्रण अवश्य रखेगी किन्तु उसका यह अर्थ नहीं है कि उस के सम्मुख मन्त्रिपरिषद का कोई महत्व ही नहीं है। व्यवहारिक राजनीति में तो संसद के बहुमत दल के नेता ही मन्त्रि-परिषद के सदस्य होते हैं; वे संसद की रुचि और मत के निर्माता भी होते हैं। अपने पद के प्रभाव और शक्ति के कारण वे संसद के सदस्यों को ही नहीं, देश की जनता को भी प्रभावित करने में समर्थ होते हैं। जब कभी मन्त्रिपरिषद ऐसा अनुभव करे कि उसे संसद का समर्थन प्राप्त नहीं है किन्तु जनता का समर्थन प्राप्त है तो वह राष्ट्रपति को लोक-सभा भङ्ग करने का परामर्श दे सकती है; और राष्ट्रपति लोकसभा को भङ्ग करके नये निर्वाचन करा सकता है। यद्यपि ससद को वित्त और धन सम्बन्धी विषयों का नियंत्रण करने का अधिकार है, व्यवहार में इन विषयों का भी नियत्रण मन्त्रिपरिषद करती है।

आज कल राज्य का कार्यक्षेत्र इतना विशाल हो गया है कि संसद के साधारण सदस्यों को बहुत सी बातों के लिए मन्त्रियों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। जब तक मन्त्रिपरिषद का संसद में बहुमत रहता है, वह अवाध रूप से (नये निर्वाचन तक) शासन करती रहती है।

सोलहवाँ अध्याय

उच्चतम न्यायालय

इस न्यायालय की शक्ति और अधिकार-क्षेत्र राष्ट्र-मंडल के किसी भी देश के सर्वोच्च न्यायालय तथा अमरीका के उच्चतम न्यायालय से अधिक विस्तृत हैं

श्री सीतलवाड़ (एटार्नी जनरल)

उच्चतम न्यायालय की स्थापना—उच्चतम न्यायालय संघात्मक सरकार का आवश्यक अंग है। इसका प्रमुख कार्य संविधान की अधिकार-पूर्ण व्याख्या करना एवं राज्यों और केन्द्रों के अधिकारों सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा करना है। पहले बताया जा चुका है कि भारतीय संविधान में राज्यों और केन्द्र के अधिकारों एवं कार्य-क्षेत्र की अलग-अलग सूची है, और प्रत्येक को अपने क्षेत्र में कार्य करने की स्वतंत्रता है। इसके अतिरिक्त समवर्ती सूची के विषयों में दोनों का अधिकार है। कोई एक दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमण या हरण न करे, इस व्यवस्था के लिए उच्चतम न्यायालय की स्थापना की गई है। यह सब प्रकार के मामलों में अपील का अंतिम न्यायालय है। इसके अतिरिक्त यह नागरिकों के मूल अधिकारों का रक्षक, राष्ट्रपति का परामर्शदाता और संविधान का संरक्षक है।

पहले की स्थिति—यहाँ यह जान लेना उपयोगी होगा कि इस न्यायालय की स्थापना से पूर्व क्या स्थिति थी। सन् १९३५ को संविधान के अनुसार यहां संघीय न्यायालय की स्थापना का निश्चय किया गया था। उससे पहले सारे भारत का कोई एक न्यायालय नहीं था, प्रान्तों में अलग-अलग उच्च न्यायालय थे। उनके निर्णयों की अपील इंगलैंड

की प्रिवी कौंसिल (की जूडिशल कमेटी) में होती थी। सन् १९३५ के संविधान से यहां १९३७ में जो संघीय न्यायालय बना, उसके अधिकार यथेष्ट विस्तृत न थे। वह न्यायालय यहां के किसी केंद्रीय या प्रान्तीय कानून को, यदि वह संविधान की धाराओं के विरुद्ध होता, गैर-कानूनी नहीं ठहरा सकता था, क्योंकि ब्रिटिश पार्लिमेंट कोई भी ऐसा कानुन बना सकती थी, जो १९३५ के संविधान को ही बदल दे। फिर, भारत का गवर्नर-जनरल किन बातों में अपने विवेकानुसार कार्य करे, इसका निर्णय संघीय न्याया- नहीं, वरन् स्वयं गवर्नर-जनरल ही कर सकता था। इसके अतिरिक्त संघीय न्यायालय भारत का अन्तिम न्यायालय नहीं था, इसके निर्णयों की अपील प्रिवी कौंसिल में होती थी, और प्रिवी कौंसिल का यह अधिकार कानूनी ही नहीं, वास्तविक था।

उच्चतम न्यायालय का संगठन—अब नये संविधान के अनुसार सारे भारत के लिये एक उच्चतम न्यायालय ('सुप्रीम कोर्ट') होगा। इसमें एक मुख्य न्यायाधिपति (चीफ जस्टिस) और सात न्यायाधीश (जज) होंगे। संसद विधि द्वारा उपरोक्त संख्या में वृद्धि कर सकती है। न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीशो की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा; इस कार्य में राष्ट्रपति उच्चतम न्यायालय के और राज्यों के मुख्य न्यायालयों के ऐसे न्यायाधीशों का जिन्हें वह उचित समझेगा, परामर्श लेगा। मुख्य न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति मुख्य न्यायाधिपति का परामर्श अवश्य लेगा।

यह न्यायालय देहली में होगा, या ऐसे अन्य स्थान या स्थानों में होगा, जो चीफ-जस्टिस राष्ट्रपति की रजामन्दी से निश्चित करे।

न्यायाधीशों की योग्यता—उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए निम्नलिखित योग्यताएँ होना आवश्यक होगा—

१—वह भारत का नागरिक हो।

२—वह कम से कम पांच वर्ष किसी उच्चन्यायालय (हाईकोर्ट) का न्यायाधीश रह चुका हो, या

३—उसने कम से कम १० वर्ष तक उच्चन्यायालय में वकालत की हो, या

(४) वह राष्ट्रपति के विचार से प्रसिद्ध विधिवेत्ता (कानून-ज्ञाता) हो।

(५) वह ६५ वर्ष से कम आयु का हो।

वेतन और भत्ता—प्रधान न्यायाधिपति (चीफ जस्टिस) को ५,००० रु० और अन्य न्यायाधीशों को ४,००० रु० मासिक वेतन तथा निर्धारित भत्ता मिलेगा। उनके वेतन और भत्ते में संसद (पार्लिमेंट) कानून बना कर समय-समय पर परिवर्तन कर सकेगी, परन्तु किसी न्यायाधीश की नियुक्ति के पश्चात् उसके वेतन या अधिकार आदि में कोई कमी नहीं की जायगी।

कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति—जब मुख्य न्यायाधिपति का पद रिक्त होगा, या जब वह अनुपस्थिति आदि के कारण कार्य न कर सकेगा, तब उसका कार्य न्यायालय का वह न्यायाधीश करेगा, जिसे राष्ट्रपति इसके लिए नियुक्त करे।

विशेष प्रयोजन के लिए न्यायाधीशों की नियुक्ति—यदि किसी समय उच्चतम न्यायालय के कार्य के लिए न्यायाधीशों की अपेक्षित (गण-पूरक) संख्या न हो तो मुख्य न्यायाधिपति किसी उच्च न्यायालय के न्यायाधीश को उच्चतम न्यायालय की बैठकों के न्यायाधीश का वह काम करने के लिए नियुक्त कर सकता है। ऐसा करने से पूर्व मुख्य न्यायाधिपति इसके लिए राष्ट्रपति की सहमति प्राप्त करेगा और उक्त उच्चन्यायालय के मुख्य न्यायाधीश से मंत्रणा करेगा। जिस न्यायाधीश की इस प्रकार नियुक्ति होगी, उसे अपने इस कार्य के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश के अधिकार आदि होंगे।

मुख्य न्यायाधिपति उच्चतम न्यायालय और संघ-न्यायालय के निवृत्ति-प्राप्त न्यायाधीशों को उच्चतम न्यायालय का काम करने के लिए, उनकी स्वीकृति से, नियुक्त कर सकेगा।

न्यायाधीशों की शपथ—जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश नियुक्त किया जायगा, वह अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राष्ट्रपति के सामने, या राष्ट्रपति द्वारा निश्चित किए हुए दूसरे आदमी के सामने, इस प्रकार की प्रतिज्ञा करेगा, और इस पर हस्ताक्षर करेगा—"मैं (नाम)...ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या गम्भीरता पूर्वक प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं कानून द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति सच्ची भक्ति रखूँगा और अपनी पूरी योग्यता, जानकारी और विवेक से ठीक-ठीक और वफादारी के साथ बिना प्रीति या द्वेष के अपने पद के कर्तव्यों को पूरा करूँगा और संविधान और कानूनों का मान बनाए रखूँगा।"

न्यायाधीशों का कार्य-काल—प्रत्येक न्यायाधीश ६५ वर्ष की उम्र तक अपने पद पर रहेगा, पर वह चाहे तो इससे पूर्व राष्ट्रपति के पास लिखित त्यागपत्र भेजकर अपना पद छोड़ सकता है। उसे उसके पद से तभी हटाया जा सकता है, जब कि पार्लिमेंट की दोनों सभाएँ एक ही अधिवेशन में उसके हटाए जाने का ऐसा निवेदन-पत्र रखें कि उसमें दुराचार या असमर्थता का दोष प्रमाणित हो चुका है, और उस निवेदन-पत्र का, उपस्थित और मत देने वाले कम से कम दो-तिहाई सदस्य समर्थन करें, और इसके बाद राष्ट्रपति उसे हटाए जाने की आज्ञा दें।

जो व्यक्ति उच्चतम न्यायालय का न्यायाधीश रह चुका है, वह भारत के किसी न्यायालय में वकालत या अन्य कार्य नहीं कर सकेगा।

न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र—इस न्यायालय के दो प्रकार के अधिकार-क्षेत्र हैं :—प्रारम्भिक, अपील सम्बन्धी।

१—नीचे लिखे ऐसे मामलों का विचार करना उच्चतम न्यायालय का प्रारम्भिक (ओरिजिनल) अधिकार-क्षेत्र होगा, और इसके सिवा किसी दूसरे न्यायालय का न होगा:—(क) जो भारत सरकार और एक या अधिक राज्यों में हो; या (ख) जिसमें एक ओर भारत-सरकार और एक या अधिक राज्य हों, और दूसरी ओर एक या अधिक राज्य हों; या (ग) जो दो या अधिक राज्यों में हो। यह अधिकार उस दशा में और उसी सीमा तक होगा, जब उस मामले में कोई ऐसा प्रश्न उठता हो, जिस पर किसी कानूनी अधिकार का अस्तित्व या विस्तार निर्भर हो।

२—उच्चतम न्यायालय को राज्यों के हाइकोर्टों (उच्चन्यायालयों) की तीन प्रकार की अपीलें सुनने का अधिकार है—(क) संवैधानिक, (ख) दीवानी, और (ग) फौजदारी।

(क) संवैधानिक मामले में उच्च न्यायालय के फैसलों की अपील तभी हो सकेगी, जब उच्च न्यायालय इस बात का प्रमाणपत्र दे दे कि इस मामले में संविधान की व्याख्या से सम्बन्धित कोई सारभूत कानूनी प्रश्न विचारणीय है। जहाँ उच्च न्यायालय ने ऐसा प्रमाणपत्र न दिया हो, वहाँ यदि उच्चतम न्यायालय का समाधान हो जाय तो वह भी उक्त प्रमाणपत्र दे सकता है।

(ख) किसी दीवानी मामले में उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील तभी की जा सकेगी, जब कि उच्च न्यायालय यह प्रमाणपत्र दे दे कि उस मामले की धन-राशी या मूल्य बीस हजार रुपये से कम नहीं है, या वह मामला उच्चतम न्यायालय के सामने अपील करने योग्य है।

(ग) फौजदारी मामलों में उच्च न्यायालयों के निर्णयों के विरुद्ध अपील ऐसी दशा में होंगी, जब नीचे की अदालत ने किसी अपराधी की रिहाई की आज्ञा दी हो, और उच्च न्यायालय ने उस आज्ञा को रद्द करके मृत्यु-दण्ड का आदेश दिया हो, या जब उच्च्च न्यायालय ने अपने अधीन

न्यायालय से किसी मामले को परीक्षण के लिए अपने पास मंगा लिया हो, और उसमें अपराधी को मृत्यु-दण्ड की आज्ञा दी हो, अथवा उच्च न्यायालय वह प्रमाणपत्र देदे कि मामला उच्चतम न्यायालय के सामने अपील करने लायक है।

उच्चतम न्यायालय स्वयं अपनी ओर से भी, फौजी न्यायालयों को छोड़कर, किसी भी न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध अपील करने की विशेष अनुमति दे सकता है। संघ सूची के विषयों में से किसी के बारे में उच्चतम न्यायालय को ऐसे अधिकार प्राप्त होंगे, जैसे संसद विधि द्वारा प्रदान करे।

इन अधिकारों के अतिरिक्त उच्चतम न्यायालय को मूल अधिकारों की रक्षा के लिए आवश्यक निर्देश, आदेश या लेख प्रयोग करने का अधिकार है। इसके अतिरिक्त अन्य मामलों में भी संसद उच्चतम न्यायालय को उपर्युक्त लेख निकालने का अधिकार प्रदान कर सकती है।

उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि भारत के भीतर सब न्यायालयों पर लागू होगी। अपने अधिकार के प्रयोग में उच्चतम न्यायालय ऐसे आदेश दे सकेगा, जिससे उसके सामने पेश किए हुए मालले पर पूर्ण प्रकाश पड़े, और उसे अपना न्याय-कार्य सम्पादन करने में सुविधा हो। इस सम्बन्ध में वह किसी व्यक्ति को हाजिर कराने का या किन्हीं दस्तावेजों को प्रगट करने आदि का आदेश दे सकेगा।

अधिकार-क्षेत्र की वृद्धि—उच्चतम न्यायालय को भारतीय संघ सम्बन्धी विषयों के ऐसे अधिकार भी होंगे, जो संसद उसे कानून बनाकर प्रदान करे। अगर भारत सरकार और कोई राज्य आपस में समझौता करके किसी विषय के सम्बन्ध में कुछ और अधिकार देदे और संसद उसके सम्बन्ध में आवश्यक कानून बनादे तो उच्चतम न्यायालय को वह अधिकार भी प्राप्त होगा। संसद कानून दारा सर्वोच्च न्यायालय

को ऐसे पूरक अधिकार दे सकती है, जो इस विधान के किसी नियम से असंगत न हों और जिनको प्राप्त करके उच्चतम न्यायालय अपना कार्य और अच्छी तरह कर सके।

राष्ट्रपति को परामर्श देने का कार्य—उच्चतम न्यायालय का कर्तव्य होगा कि जब राष्ट्रपति विधि अथवा तथ्य सम्बन्धी प्रश्न पर उससे सलाह माँगे तो वह उस पर अपनी राय दे। संविधान में यह स्पष्ट नहीं किया है कि राष्ट्रपति को वह सलाह माननी पड़ेगी अथवा नहीं। उसकी शब्दावली से यही अर्थ निकलता है कि उसे मानना या न मानना राष्ट्रपति की इच्छा पर निर्भर होगा।

उच्चतम न्यायालय के नियम आदि—उच्चतम न्यायालय को अपने कार्य-प्रणाली और प्रक्रिया सम्बन्धी नियमों को बनाने का स्वयं अधिकार है, परन्तु उन नियमों के लिए राष्ट्रपति की स्वीकृति आवश्यक है।

संविधान के किसी भाग की व्याख्या करने के लिए अथवा राष्ट्रपति द्वारा उच्चतम न्यायालय से परामर्श मांगे जाने पर कम से कम पाँच न्यायाधीश उपरोक्त प्रश्नों पर निर्णय देने के लिए बैठेंगे। यह न्यायालय न्यायाधीशों के बहुमत से निर्णय देगा और निर्णय खुले न्यायालय में दिया जायगा। यदि किसी न्यायाधीश का मत बहुमत से भिन्न है तो उसे अलग से अपना मत व्यक्त करने का अधिकार है।

उच्चतम न्यायालय के पदाधिकारियों और सेवकों की नियुक्तियाँ करने तथा उनकी सेवा की शर्तों के नियम बनाने का कार्य भारत का मुख्य न्यायाधिपति अथवा उसके द्वारा निर्देशित उस न्यायालय का अन्य न्यायाधीश या पदाधिकारी करेगा। परन्तु राष्ट्रपति यह नियम बना सकेगा कि कोई व्यक्ति जो पहिले न्यायालय में लगा हुआ नहीं है, न्यायालय के

किसी पद पर, सङ्घ-लोकसेवा-आयोग के परामर्श बिना, नियुक्त न किया जायगा।

न्यायालय सम्बन्धी खर्च और आमदनी—उच्चतम न्यायालय के अधिकारियों और नौकरों को दी जाने वाली वेतन, भत्ता या पेन्शन को मुख्य न्यायाधिपति, राष्ट्रपति से परामर्श करके निश्चित करेगा। यह सब खर्च तथा न्यायालय का प्रबन्ध-व्यय संघ सरकार की आय से, अनिवार्य रूप से, दिया जायगा। (इस पर संसद की स्वीकृति नहीं ली जायगी)। न्यायालय को फीस तथा अन्य मदों से जो आय होगी, वह भारतीय संघ की आय में सम्मिलित होगी।

विशेष वक्तव्य—भारत के उच्चतम न्यायालय को संसार के समस्त उच्चतम न्यायालयों से अधिक अधिकार प्रदान किये गए हैं। संविधान की व्याख्या के अतिरिक्त, यह दीवानी तथा फौजदारी मामलों में भी अन्तिम अपील का न्यायालय है। इसकी यह विशेषता अच्छी तरह तब मालूम होती हैं, जब हम यह ध्यान में रखें कि अमरीका का सर्वोच्च न्यायालय केवल अमरीकी विधान का संरक्षक है; जहाँ तक दीवानी और फौजदारी मामलों का सम्बन्ध है, वहाँ के राज्यों के हाईकोर्टों का निर्णय ही अन्तिम समझा जाता है। अमरीका में जिस प्रकार द्वैध-न्याय प्रणाली है, वैसी भारत में नहीं है। यहाँ देश भर का सब प्रकार के मामलों में एक ही उच्चतम और अन्तिम न्यायालय है।

पहले कहा जा चुका है कि उच्चतम न्यायालय की स्थापना से पूर्व भारत के लिए अपील की अन्तिम अदालत प्रिवी कौंसिल थी, अब वह बात नहीं रहीं। उसके साथ हमारे सम्बन्ध समाप्त हो गये हैं, किन्तु उसके पिछलों फैसलों की नजीरें इस न्यायालय के भावी निर्णयों पर अवश्य ही प्रभाव डालेंगी, क्योंकि हमारी विधि-प्रणाली या कानून-पद्धति का मूल इंगलैंड की विधि-प्रणाली है।

सतरहवाँ भाग

संघ का राज्य-क्षेत्र

"देश की एकता को सुरक्षित रखे बिना उसकी स्वाधीनता सुरक्षित नहीं रह सकती। इसलिए पाँच सौ ऊपर, 'भीतरी पाकिस्तानों' की विभीषिका को समाप्त करना अनिवार्य था। भारतीय रियासतों का एकीकरण एक अपूर्व अहिन्सक क्रान्ति है।"

भारत के राजनैतिक भाग; स्वतंत्रता से पूर्व—भारत के स्वतंत्र होने से पहले, शासन की दृष्टि से इस देश के मुख्य दो तरह के भाग थे—प्रान्त और राज्य। प्रान्तों के दो भेद थे—गवर्नरों के प्रान्त और चीफ़-कमिश्नरों के प्रान्त। इनमें से चीफ़-कमिश्नरों के प्रान्तों का शासन केन्द्रीय सरकार के आदेशों द्वारा होता था, और इनके लिए कानून भी केन्द्रीय विधान-मंडल ही बनाता था। गवर्नरों के प्रान्त बहुत कुछ स्वायत्त थे, और उनके लिए कानून वहाँ के ही विधान-मंडल बनाते थे। इस प्रकार सब प्रान्तों में शासन एक ही तरह का नहीं था। देशी राज्यों का शासन अलग ही ढंग का था। यद्यपि उनमें कोई-कोई अच्छा प्रगतिशील भी था, साधारण तौर पर उनमें लोकसत्ता या प्रजातंत्र की भावना बहुत कम थी। निदान, स्वाधीन होने से पूर्व भारत के विविध भागों में जुदा-जुदा प्रकार की शासनपद्धति प्रचलित थी। फिर, सैकड़ों देशी राज्य जनसंख्या, क्षेत्रफल और आय की दृष्टि से इतने छोटे थे कि उनका अलग-अलग शासन हो ही नहीं सकता था और वे देश के शक्ति-संगठन में भयंकर रूप से बाधक थीं।

रियासतों का पुनस्संगठन—भारत के स्वाधीन होने पर इसके विविध भागों के शासन में एकरूपता लाने का प्रयत्न किया गया। पहले जो गवर्नरों और चीफ-कमिश्नरों के प्रान्त थे, उन्हें तो उसी रूप में राज्यों में परिणत कर दिया गया। देशी राज्यों के सम्बन्ध में भारी परिवर्तन हुआ। सैकड़ों छोटी-छोटी रियासतें तो निकटवर्ती प्रान्तों में विलीन हो गईं, कुछ के संघ बने, और तीन रियासतें स्वतंत्र इकाई के रूप में रहीं। जो रियासतें प्रान्तों में विलीन नहीं हुईं, वे या तो स्वायत्तशासी राज्य बनीं या केन्द्र द्वारा शासित होने लगीं। इस परिवर्तन की गुरुता नीचे दिए अंकों से स्पष्ट हो जायगी :—

२१६ रियासतें [क्षेत्रफल १,०८,७३६ वर्गमील, और जनसंख्या १,६१,५८,०००] प्रान्तों में विलीन हो गयीं।

६१ रियासतें [क्षेत्रफल ६,७०४ वर्गमील, और जनसंख्या ६६,२५,०००] केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्रों में सम्मिलित की गयीं।

२७५ रियासतें [क्षेत्रफल २,१५,४५० वर्गमील, और जनसंख्या ३,४७,०७,०००] राज्य-संघों में मिलायी गयीं।

इस प्रकार ५५२ रियासतें सम्मिलित हो गयीं। तीन रियासतें—हैदराबाद, मैसूर और जम्मू-कश्मीर अलग-अलग इकाई रहीं। उत्तर पूर्व की खासी पहाड़ी रियासतों को मिलाकर आसाम का एक अलग स्वायत्त जिला बना दिया गया। इस योजना के फल-स्वरूप साढे पांच सौ से अधिक रियासतें केवल १५ संगठनों में बंध गयीं।

राजाओं का निजी खर्च—राजाओं की व्यक्तिगत सम्पत्ति निश्चित कर दी गयी। खजाने उत्तराधिकारी सरकारों को दे दिए गए। राजाओं को केवल निजी खर्च के लिए निर्धारित धन मिलने की गारंटी दी गई। उसकी रकम इस दर पर ठहरायी गई :— राज्य की औसत वार्षिक आय के प्रथम लाख पर १५ प्रतिशत, २ से ५ लाख तक १० प्रतिशत, तथा उसके ऊपर ७॥ प्रतिशत। व्यक्तिगत खर्च के लिए प्रायः अधिक-से-अधिक १० लाख

रु० तक दिया गया है। केवल कुछ बड़े राज्यों में धन इस से अधिक निर्धारित किया गया है; वह केवल वर्तमान शासक को दिया जायगा। आगामी पीढ़ी में कोई शासक १० लाख रु० से अधिक व्यक्तिगत खर्च के लिए नहीं पाएगा। इस व्यक्तिगत खर्च में शासक, उसके परिवार के निवास-स्थान सम्बन्धी और विवाह तथा अन्य संस्कारों के खर्च भी सम्मिलित हैं।

राजाओं को निजी खर्च के लिए जो धन मिल रहा है, इसकी कुल रकम ४, ६६, ७३, ५३५ रु० वार्षिक होगी। क्योंकि भविष्य में किसी राजा के उत्तराधिकारी को दस लाख रु० से अधिक नहीं मिलेगा, अन्त में यह राशी ३,८६,६८, ५३५ रु० रह जायगी। स्मरण रहे कि १५ अगस्त १९४७ से पहले राजाओं का निजी खर्च लगभग २५ करोड़ रु० हो जाता था, जिसमें उनके परिवारों का तथा विवाह शादी आदि का खर्च शामिल नहीं था। इस प्रकार रियासतों के प्रादेशिक तथा आर्थिक एकीकरण से राजाओं के निजी खर्च की रकम पहले का छठा भाग रह गयी। इसके अतिरिक्त उनकी आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ हो गई। उदाहरण के लिए सौराष्ट्र संघ को १४ करोड़ रु० बचत के मिले, और गवालियर नरेश ने कुछ ऐसी राशी संघ को सौंप दी, जिसके व्याज से राजाओं के निजी व्यय का खासा भाग निकल सकता है।

रियासती विभाग ने यह काम जल्दी और होश्यारी से निपटा दिया, इसके लिए वह प्रशंसा का अधिकारी है। परन्तु इस का दूसरा भी पहलू है। रियासती कार्यकर्ताओं को इस विषय में अपना मत सूचित करने का अवसर नहीं दिया गया, इससे उन्हें असंतोष होना स्वाभाविक है। अवश्य ही यह कुछ अजीब बात है कि राजाओं को निजी खर्च के लिए लाखों रुपए प्रति वर्ष मिलें और उनके पास कई-कई महल, हाथी, मोटर आदि शान-शौकत और विलासिता का सामान रहे, जब कि अनेक साधारण नागरिकों को दिन भर मेहनत करके भी रोजाना जरूरतें पूरी करने

(गवर्नर) कहा जायगा। ये राज्य स्वायत्त (अपना शासन स्वयं करने-वाले) हैं। इनकी कार्यपालिका शक्ति वास्तव में मन्त्रिपरिषद् में निहित होगी; जो विधान-मंडल के प्रति उत्तरदायी होगी। ये राज्य निम्नलिखित है :—

[१] आसाम, [२] पश्चिमी बङ्गाल, [३] बिहार, [४] बम्बई, [५] मद्रास, [६] उड़ीसा, [७] पंजाब, [८] मध्य प्रदेश और [९] उत्तर प्रदेश। इनमें से अन्तिम तीन को पहले क्रमशः पूर्वी पंजाब, मध्यप्रान्त और बरार, तथा संयुक्तप्रान्त कहा जाता था।

२—'ख' वर्ग के राज्य—इन राज्यों में देशी रियासतें या उनके संघ सम्मिलित हैं। इनके प्रधान शासकों को राजप्रमुख कहा जाता है, और उनकी सहायता के लिए मन्त्रिपरिषदें हैं, जैसे कि 'क' वर्ग के राज्यों में है। इनमें अङ्गरेजों के शासन-काल में प्रजातंत्रीय आधार पर विधान-सभाएँ तथा अन्य संस्थाएँ नहीं थीं; जनता को लोकतंत्रात्मक शासन का अनुभव नहीं हुआ। यहाँ शासन-प्रबन्ध में राजा की इच्छा ही कानून थी। यही कारण है कि इनमें से कई एक में जो मन्त्रिपरिषदें बनायी गयीं, वे व्यवस्थित रूप से काम नहीं कर पायीं। यद्यपि ये राज्य आगामी निर्वाचन (सन् १९५१) के बाद स्वायत्त होंगे, संविधान में यह व्यवस्था की गयी है कि दस वर्ष तक, या उस अवधि तक जो संसद निर्धा-रित करे, इन राज्यों की सरकारों का केन्द्रीय सरकार द्वारा नियंत्रण होगा।

ये राज्य निम्नलिखित हैं :—[१] हैदराबाद [२] जम्मू और कश्मीर [३] मैसूर [४] मध्य भारत [५] पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ [६] राजस्थान [७] सौराष्ट्र [८] त्रावनकोर-कोचीन। आगे इन राज्यों के बारे में कुछ आवश्यक बातें बतायी जाती हैं।

हैदराबाद—आबादी (एक करोड़ बासठ लाख) के लिहाज से यह भारत की सब से बड़ी रियासत थी। यह सब से अधिक धनवान

भी थी; यहाँ की वार्षिक आय सतरह करोड़ रुपए थी। इसकी आबादी के तीन हिस्से थे—आन्ध्र, महाराष्ट्र और कनाड़ी। शासक 'निजाम' कहलाता था। यहाँ साम्प्रदायिकता बहुत रही। रजाकारों ने यहाँ भयंकर आतंक स्थापित कर रखा था। उनकी गलत सलाह और प्रभाव के कारण निजाम ने कुछ समय भारतीय संघ के प्रति विरोधी भाव रखा। वे एक स्वतंत्र राज्य का स्वप्न देखने लगे। आखिर, सितम्बर १६४८ में, भारत-सरकार ने मजबूर होकर यहां पुलिस-कार्यवाही की। रजाकारों की सत्ता टूटते ही निजाम ने भारतीय संघ की अधीनता स्वीकार करली। विद्रोही तत्वों को समाप्त करने और शान्ति-स्थापना के लिए कुछ समय यहाँ फौजी व्यवस्था की गयी। पीछे दिसम्बर १६४६ में यहाँ का शासन सिविल अधिकारियों को सौंप दिया गया। अब यहां अन्य राज्यों की तरह पार्लिमेंटरी लोकतंत्र की स्थापना होने वाली है, आम चुनावों के बाद तो हो ही जायगी।

कश्मीर—कश्मीर की भौगोलिक स्थिति बड़े महत्व की है। इसकी सीमा चीन, अफगानिस्तान और रूस आदि कई दूसरे राष्ट्रों के अलावा भारतीय संघ और पाकिस्तान दोनों से मिली हुई है। पहले कहा जा चुका है कि यह राज्य भारतीय संघ में सम्मिलित है, पर पाकिस्तान इस पर दावा कर रहा है, उसने इसका कुछ हिस्सा दबा भी रखा है। काफी समय बीत जाने पर भी संयुक्तराष्ट्र ने इस विषय को नहीं सुलझाया। अब बालिग मताधिकार के आधार पर निर्वाचित इस राज्य की विधान-सभा इसका विचार करेगी। चीन में कम्युनिस्ट राज्य की स्थापना हो जाने से कश्मीर का प्रश्न विश्वव्यापी होगया है। यद्यपि कश्मीर की आबादी (अड़तीस लाख) में ८० फी सदी मुसलमान हैं, भारत की सर्व-धर्म-समभाव की नीति, भारत-कश्मीर का घनिष्ठ आर्थिक सम्बन्ध, और कश्मीर-नेताओं के 'दो-राष्ट्र सिद्धान्त' के घोर विरोधी होने के कारण कश्मीरी जनता का बहुमत भारत के ही पक्ष में निश्चित प्रतीत होता है।

'नये कश्मीर' का स्वप्न पूरा करने के लिए उन्नत और क्रान्तिकारी भूमि-सुधारों की योजना को अमल में लाया जा रहा है।

मैसूर—यहाँ अंशत; उत्तरदायी शासनपद्धति बहुत समय से चली आयी है। यहाँ प्रतिनिधि सभा (रेप्रेजेंटेटिव असेम्बली) सन् १८८१ में स्थापित हुई थी। यहाँ के विधान-मंडल में दो सदन हैं—प्रतिनिधि सभा और विधान-परिषद्। अब यह भारतीय संघ की इकाई है। अगस्त १९४७ से इसके दीवान का पद हमेशा के लिए उठा दिया गया और सत्ता प्रधान मंत्री को सौंप दी गयी। मैसूर अपने औद्योगीकरण के लिए भारत भर में प्रसिद्ध है। यहां सोने की जग-प्रसिद्ध खानें भी हैं।

मध्यभारत—मध्यभारत अपनी भौगोलिक महत्ता और प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के लिए इसका भारतीय इतिहास में विशेष स्थान रहा है। मध्यभारत-संघ का उद्घाटन २८ मई १९४८ को गवालियर में हुआ। राजस्थान की तरह यहाँ की मुख्य समस्या जागीरदारी प्रथा है। सत्ता-प्राप्ति के बाद यहाँ के कांग्रेसजनों में पदों की प्राप्ति के लिए शोचनीय मतभेद हो गए। भ्रष्टाचार के आरोपों से मंत्रिमंडल बहुत बदनाम हुआ। जांच हुई और तत्कालीन प्रधान मंत्री को त्यागपत्र देना पड़ा। संघ की स्थायी राजधानी गवालियर हो या इन्दौर—इस विषय को लेकर कार्यकर्ताओं में काफी खींचातानी हुई, और अब (दिसम्बर १९५०) तक समस्या सुलझी नहीं है। उदार और व्यापक दृष्टिकोण की आवश्यकता है।

पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ—इसे 'पेपसू' भी कहते है। इसका उद्घाटन १५ जुलाई १९४८ को हुआ। इसमें पटियाला कपूरथला, झींद, फरीदकोट तथा कलसिया रियासतें सम्मिलित है। इस संघ के राजप्रमुख महाराजा पटियाला हैं।

राजस्थान—इस संघ का निर्माण क्रमशः कई मंजिलों में हुआ है। पहले अलवर, धौलपुर, करौली और भरतपुर ने मिल कर १८ मार्च

१९४८ को मत्स्य-संघ बनाया। इन्हीं दिनों २१ मार्च १९४८ को कोटा, बून्दी, किशनगढ़, डूंगरपुर, प्रतापगढ़ और शाहपुरा ने मिल कर राजस्थान के संयुक्त राज्य का निर्माण किया। १८ अप्रेल १९४८ को उदयपुर के सम्मिलित हो जाने पर राजस्थान के संयुक्त राज्य का पुनर्गठन किया गया। इसके बाद जयपुर, जोधपुर, बीकानेर और जैसलमेर पूर्व स्थापित राजस्थान के संयुक्त राज्य में और सम्मिलित हो गए, और ३० मार्च १९४९ को रियासती सचिवालय के अध्यक्ष और भारत के उपप्रधानमंत्री सरदार पटेल ने इस नवीन पुनस्संगठित राजस्थान के संयुक्त राज्य का उद्घाटन-समारोह सम्पन्न किया। १५ मई १९४९ को मत्स्य-संघ (अलवर, धौलपुर करौली और भरतपुर) भी संयुक्त राजस्थान में सम्मिलित हो गया।

धौलपुर और भरतपुर के कुछ कार्यकर्ता चाहते थे कि ये दो रियासतें राजस्थान में न मिल कर उत्तरप्रदेश में मिलें। पर उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। सिरोही का मुख्य भाग इस संघ में नहीं मिलाया गया, इससे लोगों को असन्तोष रहा। अजमेर को राजस्थान का हृदय माना जाता है, उसका इस राज्य में मिलना अभी शेष है।

अस्तु, राजस्थान भारत का आकार में सब से बड़ा राज्य है। परन्तु इसकी समस्याएँ भी कम नहीं—जागीरी अराजकता, जनता की निर्धनता और अशिक्षा, साधनों का अविकास और पश्चिम में सैकड़ों मील तक पाकिस्तान से मिला होना। संघ बन जाने पर यह अपने कितने ही पुराने कार्यकर्ताओं की सेवा और सहयोग से बंचित रहा। आशा है, अब सब मिल कर इसकी उन्नति में लग जायंगे। इस संघ के राजप्रमुख हैं, जयपुर के महाराज।

सौराष्ट्र—इस संघ का उद्घाटन १५ फरवरी सन् १९४८ को हुआ। इसमें काठियावाड़ की २२१ रियासतें शामिल हैं, इनमें से अधिकांश बहुत ही छोटी-छोटी थीं। नवानगर के 'जामसाहब' इसके राजप्रमुख

हैं। इस संघ ने जागीरदारी-उन्मूलन, रेलों के विस्तार, और अकाल-निवारण सम्बन्धी अच्छा कार्य किया है।

त्रावणकोर-कोचीन—इस संघ को 'केरल संघ' भी कहा जाता है। इसका उद्घाटन १ जुलाई १९४९ को हुआ। शासन-सुधार में इस संघ की दोनों रियासतें, भारत की अन्य रियासतों की अपेक्षा बहुत प्रगतिशील रही हैं। शिक्षा और साक्षरता की दृष्टि से भी इनका मानदंड भारत के सब स्थानों से ऊँचा रहा है। पिछली गणना के समय त्रावणकोर में ४५ प्रतिशत जनता (पुरुष ६८ प्रतिशत, और स्त्रियाँ ४२ प्रतिशत) साक्षर थीं। इससे दूसरे ही दर्जे पर कोचीन है, वहां साक्षरों की संख्या ३६ प्रतिशत थी। औद्योगिक क्षेत्र में भी ये दोनों रियासतें काफी अग्रसर हैं। यहां की सामाजिक व्यवस्था की यह विशेषता है कि वह पितृ-प्रधान नहीं, मातृ-प्रधान है। किसी आदमी की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उसका पुत्र नहीं होता, यह अधिकार बहिन के लड़के को होता है। राजा, मालावार के नियम के अनुसार, राजघराने की लड़की या बहिन के बड़े पुत्र को गद्दी दे सकता है।

त्रावणकोर के महाराजा इस संघ के राजप्रमुख है। संघ-निर्माण के समय उन्होंने यह आपत्ति की थी कि उनकी वंश-परम्परा के अनुसार वे वफादारी की शपथ केवल अपने कुल-देवता भगवान पद्मनाभ के प्रति ही ले सकते हैं। भारत-सरकार ने इसका समाधान इस प्रकार किया कि वे भारत के तथा त्रावणकोर-कोचीन के—दोनों के—प्रति वफादार रहने की शपथ ग्रहण करें और यह घोषित करें कि वह दोनों के हित में कार्य करेंगे। संघ की राजधानी त्रिवेन्द्रम है।

३—'ग' वर्ग के राज्य—इनमें पहले के 'चीफ कमिश्नरों के प्रान्त' तथा कुछ रियासतें या रियासती संघ है। ये सब इस समय चीफ-कमिश्नरों के राज्य हैं और इनका शासन केन्द्रीय सरकार द्वारा होगा। इनमें निम्नलिखित राज्य हैं (१) अजमेर (२) भोपाल (३) बिलासपुर

(४) कुर्ग (५) दिल्ली (६) हिमाचल प्रदेश (७) मणिपुर (८) त्रिपुरा (९) विंध्य प्रदेश और (१०) कच्छ ।

लोकतंत्र पद्धति में देश के किसी भाग का केन्द्र द्वारा शासित होना ठीक नहीं समझा जाता । भारत सरकार को थोड़े-बहुत समय में 'ग' वर्ग के अधिकांश राज्यों को या तो पास के बड़े राज्यों में मिलाना होगा, या जिसे सम्भव होगा स्वायत्त राज्य बनाना होगा । इस विषय में खुलासा आगे बाइसवें अध्याय में लिखा जायगा । भाषा आदि के आधार पर नये राज्य बनने की दशा में भी वर्तमान राज्यों की संख्या और राज्य-क्षेत्र में परिवर्तन होना सम्भव है । इस प्रकार वर्तमान राज्यों का जो वर्गीकरण ऊपर दिया गया है, उसमें हेरफेर होना स्वाभाविक है ।

अन्दमान-निकोबार—भारतीय संघ में उपर्युक्त तीन प्रकार के राज्यों के अतिरिक्त एक प्रदेश और है । वह है, अन्दमान-निकोबार । यद्यपि यह प्रदेश भारतीय संघ में सम्मिलित है, पर यह कोई स्वतंत्र इकाई नहीं है । इसका शासन राष्ट्रपति करेगा; इस विषय में विशेष आगे बाइसवें अध्याय में देखिए ।

नवीन राज्यों का निर्माण; व्यवहारिक कठिनाइयाँ—भारतीय राज्यों के निर्माण का आधार वैज्ञानिक नहीं है । देश में भाषा, संस्कृति या रहन-सहन आदि के विचार से राज्यों के विभाजन तथा नये राज्यों के निर्माण की मांग बढ़ती जा रही है । खासकर मद्रास, बम्बई और मध्यप्रदेश का विभाजन भाषा के आधार पर करने की माँग बहुत समय से है । दक्षिण भारत में चार भाषाओं के बोलनेवाले अलग-अलग काफी संख्या में हैं; और हरेक भाषा बोलनेवाले विस्तृत भू भागों पर फैले हुए हैं । इस दृष्टि से मद्रास राज्य के चार भाग किए जायँ—आन्ध्र, तामिलनाड, केरल और कर्नाटक । बम्बई राज्य की मुख्य भाषाएँ मराठी और गुजराती हैं, और इन दोनों के बोलने-

वालों के दो अलग-अलग राज्य—महाराष्ट्र और गुजरात—बनाए जायँ। ये कुछ अंश में इस समय हैं भी। मध्यप्रदेश को महाकोशल और विदर्भ प्रान्तों में विभक्त करने की माँग है। जब तक कि देश-हित की उपेक्षा न की जाय, ऐसी माँग की पूर्ति होना उचित ही है। हाँ, किसी राज्य के निवासियों का पृथक्करण सद्भावना-पूर्वक ही होना चाहिए, संकीर्ण प्रांतीयता या साम्प्रदायिकता के भावों से नहीं। पुनः एक स्वतंत्र राज्य की सरकार को गवर्नर, मत्री, हाईकोर्ट, विधान-सभा, विश्वविद्यालय आदि सभी बातों की व्यवस्था करनी होती है। ये सब कार्य व्यय-साध्य है, जब कि आवश्यकता है कि सरकारी आय अधिकतर राष्ट्रोत्थानकारी कार्यों में लगायी जाय, जिससे जनता की आर्थिक और नैतिक दशा में सुधार हो।

भाषायी राज्य बनाने में एक कठिनाई यह भी है कि हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर, आदि राज्यों के कुछ भाग काटने पड़ेंगे; यहां तक कुछ राज्यों को पूर्ण रूप से अथवा बहुत कुछ समाप्त कर देना होगा। यह बात वहां के निवासी कहां तक पसन्द करेंगे, यह निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। भारत-सरकार सहसा इन राज्यों को काट-छांट के लिए बाध्य नहीं कर सकती।

भाषायी राज्यों की सीमाओं का निर्णय करना भी कठिन होगा, क्योंकि सीमान्त जिलों में प्रायः एक से अधिक भाषाएँ बोली जाती हैं, और प्रत्येक भाषा वाला राज्य इन जिलों को लेना चाहता है। बम्बई और मद्रास जैसे बहुभाषायी नगरों की समस्या अलग ही है। पहले बताया जा चुका है कि संविधान-निर्माण के समय प्रान्त-निर्माण के प्रश्न पर विचार करने के लिए जो कमीशन नियुक्त हुआ था, उसका कथन था कि इस समय भारतीय राष्ट्र की एकता को शक्तिशाली बनाए रखने की आवश्यकता प्रमुख है; प्रान्तों को पुनर्रचना होने से देश की एकता को आघात पहुँचेगा।

नये राज्य बनाने की व्यवस्था—संविधान में संसद को इस विषय में निम्नलिखित प्रकार के कानून बनाने का अधिकार है :—

१—वह एक नये राज्य का निर्माण, किसी राज्य के दो भाग करके अथवा दो राज्यों को एक करके या किन्हीं राज्यों के भागों को मिलाकर, कर सकेगी।

२—किसी राज्य का क्षेत्र बढ़ा सकेगी।

३—किसी राज्य का क्षेत्र घटा सकेगी।

४—किसी राज्य की सीमा में परिवर्तन कर सकेगी।

५—किसी राज्य का नाम परिवर्तन कर सकेगी।

परन्तु उपर्युक विषयों पर कोई भी विधेयक राष्ट्रपति की सिफारिश के बिना, संसद में प्रस्तावित न किया जा सकेगा। यदि ऐसा विधेयक क या ख वर्ग के राज्यों के संबन्ध में होगा तो राष्ट्रपति इस बात की व्यवस्था करेगा कि उन राज्यों के विधान-मंडल के सदस्यों की राय मालूम करले, जिन पर उस विधेयक का प्रभाव पड़ेगा। उपर्युक्त प्रकार के परिवर्तन संविधान में संशोधन नहीं समझे जायेंगे और ऐसे विधेयक संसद के सदस्यों के साधारण बहुमत से पास होने पर अधिनियम हो जायेंगे।

राज्यों की शासनपद्धति—भारतीय संघ के राज्यों की शासन-पद्धति का ब्योरेवार विचार अगले अध्यायों में किया जायगा। संक्षेप में उसका रूप नक्शे में अगले पृष्ठ में दिखाया जाता है :—

संघ के अङ्गों की शासनपद्धति
संघ का राज्य-क्षेत्र
अ और ख वर्ग के राज्य
ग वर्ग के राज्य
अन्दमान-निकोबार
[राष्ट्रपति द्वारा शासित]
कार्यपालिका
विधान-मंडल
उच्च न्यायालय
राज्यपाल या राज प्रमुख
मंत्रिपरिषद्
जिला-न्यायालय
कमिश्नर
जिलाधीश
चीफ कमिश्नर
कमिश्नर
जिलाधीश
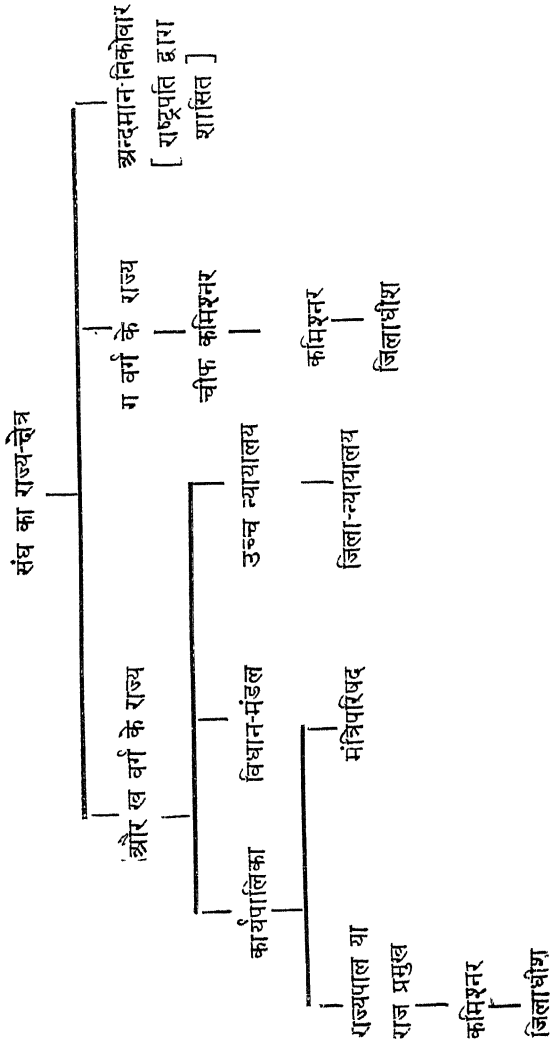
अठारहवाँ अध्याय

स्वायत्त राज्यों की कार्यपालिकाएँ

यदि समाजवादी दल सत्तारूढ़ हुआ तो सब से पहले वह राजप्रमुखों के पद को समाप्त करेगा। इन्हें बहुत अधिक अधिकार हैं, और निजी खर्च के लिए धन भी बहुत अधिक दिया गया है।

—जयप्रकाश नारायण

पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि भारतीय संघ के राज्य क, ख, और ग वर्गों में विभक्त हैं। इनमें से 'क' वर्ग के राज्य तो स्वायत्त हैं ही, 'ख' वर्ग के राज्य भी आगामी निर्वाचन (सन् १६५०) के बाद स्वायत्त हो जाँयगे। इन दोनों वर्गों की शासनपद्धति का वर्णन करने के लिए इस अध्याय में इनकी कार्यपालिका का विषय लेते हैं।

यहाँ यह स्मरण करा देना उचित होगा कि इनमें से 'क' वर्ग के राज्य निम्नलिखित है—(१) आसाम, (२) पश्चिमी बंगाल, (३) बिहार, (४) बम्बई, (५) मद्रास, (६) उडीसा, (७) पंजाब, (८) विंध्य प्रदेश और (९) उत्तर प्रदेश।

'ख' वर्ग के राज्य ये हैं:—(१) हैदराबाद, (२) जम्मू और कश्मीर (३) मैसूर (४) मध्य भारत, (५) पटियाला तथा पूर्वी पंजाब-राज्य-संघ, (६) राजस्थान, (७) सौराष्ट्र, (८) त्रावणकोर-कोचीन संघ।

'क' वर्ग के राज्यों की कार्यपालिका; राज्यपाल—

'क' वर्ग के राज्यों में कार्यपालिका का प्रधान राज्यपाल है। उसकी स्थिति अपने राज्य में लगभग वही है, जो राष्ट्रपति की संघ में। वह राज्य का वैधानिक प्रधान है, उसके नाम पर राज्य

के सारे कार्य किए जायंगे, परन्तु राज्य की कार्यपालिका शक्ति संघ की भांति वास्तव में राज्य की मंत्रिपरिषद् के हाथ में होगी। संकटकालीन स्थिति में राज्यपाल को अपने राज्य के संबंध में राष्ट्रपति की भाँति विशेष अधिकार प्रदान नहीं किए गए हैं। एक ओर तो वह अपनी मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार कार्य करने के लिए बाध्य होगा, दूसरी ओर वह राज्य के शासन के संबंध में राष्ट्रपति के प्रति भी उत्तरदायी है। इस भाँति उसकी जिम्मेदारी द्विमुखी है।

राज्यपाल की नियुक्ति और कार्यकाल—राज्यपाल की नियुक्ति राष्ट्रपति द्वारा हुआ करेगी, और जब तक राष्ट्रपति चाहे तब तक वह अपने पद पर बना रह सकता है। साधारणतया उसका कार्य-काल पांच वर्ष का होगा। इस अवधि के पूर्व भी वह राष्ट्रपति को त्यागपत्र देकर अपने पद-भार से मुक्त हो सकता है। अवधि समाप्त होने पर भी वह उस समय तक अपने पद पर काम करता रहेगा, जब तक कि उसके स्थान पर किसी दूसरे व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो जाती। राज्यपाल का पद आकस्मिक रूप से रिक्त होने पर राष्ट्रपति उसकी व्यवस्था करेगा।

पहले संविधान-निर्माताओं का विचार राज्यपाल का निर्वाचन कराने का था। परन्तु बाद में इस विचार से कि राज्यपाल तो राज्य की कार्यपालिका का वैधानिक प्रधान मात्र होगा, राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति प्रधानमंत्री तथा मंत्रिपरिषद के हाथ में होगी, उन्हें इस पद के लिए नामजद व्यक्ति ही उपयुक्त प्रतीत हुआ। यदि इस पद के लिए निर्वाचन किया जाता तो राज्यपाल व प्रधान मंत्री में संघर्ष होने की सम्भावना थी। उस स्थिति में निर्वाचन में राज्य का ही नागरिक ही इस पद के लिए उम्मीदवार खड़ा हो सकता; इससे वह राजनैतिक दलबन्दी में पड़ जाता वर्तमान अवस्था में राष्ट्रपति द्वारा उसकी नियुक्ति दूसरे राज्य में होती है तो वह राज्य की दलगत राजनीति से स्वतः ही ऊपर रहता है। इसके अतिरिक्त सांसदपद्धति में निर्वाचित राज्यपाल विशेष महत्व भी नहीं रखता।

राज्यपाल नियुक्त होने के लिए योग्यता—राज्यपाल पद पर नियुक्त होने के लिए किसी भी व्यक्ति के लिए आवश्यक होगा कि (१) वह भारत का नागरिक हो, (२) पैंतीस वर्ष से कम आयु का न हो। राज्यपाल अन्य कोई लाभ का पद ग्रहण न करेगा। राज्यपाल न तो संसद के किसी सदन का और न राज्यों के विधान-मंडल का सदस्य होगा। यदि संसद के किसी सदन, अथवा किसी राज्य के विधान-मंडल के किसी सदन का कोई सदस्य राज्यपाल नियुक्त हो जाए तो यह समझा जायगा कि उसने उस सदन में अपना स्थान राज्यपाल का पद ग्रहण की तारीख से रिक्त कर दिया है।

राज्यपाल की शपथ—प्रत्येक राज्यपाल पद ग्रहण करने से पूर्व निम्नलिखित शपथ, राज्य के उच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधिपति के संमुख, ग्रहण करेगा और उस पर अपने हस्ताक्षर करेगा—

"मैं...अमुक...ईश्वर की शपथ लेता हूँ या सत्यनिष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं श्रद्धापूर्वक... [राज्य का नाम] के राज्यपाल का कार्य पालन करूँगा तथा अपनी पूरी योग्यता से संविधान और विधि का परिरक्षण, संरक्षण और प्रतिरक्षण करूँगा और मैं......(राज्य का नाम) की जनता की सेवा और कल्याण में निरत रहूँगा।"

वेतन और भत्ते—राज्यपाल का वेतन ५५०० रु० मासिक संविधान से निर्धारित है। संसद इस में परिवर्तन कर सकती है। इसके अतिरिक्त उसे ऐसे विविध भत्ते आदि भी मिलेंगे, जो संसद निश्चित करे। जब तक संसद निश्चित न करे, राज्यपाल को वे सब भत्ते आदि मिलते रहेंगे, जो नया संविधान लागू होने के पूर्व प्रान्तों के गवर्नरों को मिला करते थे। राज्यपाल के वेतन और भत्ते आदि में उसके कार्यकाल में कोई कमी नहीं की जा सकेगी।

आगे उत्तर-प्रदेश के राज्यपाल को मिलनेवाले भत्ते दिए जाते हैं,

इससे सभी राज्यपालों को दिए जानेवाले भत्तों का अनुमान हो सकता है—

दावत आदि व्यय के लिए (वार्षिक)		१६,००० रु०
सैनिक सेक्रेटरी और उसका कार्यालय	,,	६०,००० रु०
मनोरंजन	,,	५,००० रु०
सरकारी भवन की सजावट और मरम्मत	,,	१५,००० रु०
मोटर आदि रखने के लिए	,,	५०,००० रु०
दौरे का खर्च	,,	१,१६,००० रु०
पुरानी सजावट की जगह नयी	(पांच साल में)	६३,००० रु०
सामान	(नियुक्ति के समय)	१,६०० रु०

राज्यपाल के अधिकार—राज्यों की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल के हाथ में होगी। उसे उन सब विषयों के अधिकार होंगे, जिनके संबन्ध में राज्य का विधान-मंडल विधि निर्माण कर सकता है, परन्तु आसाम के राज्यपाल को छोड़कर प्रत्येक राज्यपाल सब विषयों में मंत्रिपरिषद के परामर्श से ही कार्य करेगा। आसाम के राज्यपाल को कुछ सीमा-प्रदेशों के सम्बन्ध में अपने विवेक से काम करने का अधिकार है; इन प्रदेशों का शासन वह राष्ट्रपति के प्रतिनिधि-रूप में करेगा और इस कार्य का उत्तरदायित्व आसाम के विधान-मंडल और मंत्रिपरिषद का न होकर राष्ट्रपति का होगा।

साधारण दशा में राज्यपाल की स्थिति वैधानिक प्रधान की ही रहेगी, और वह मंत्रिपरिषद के परामर्श के अनुसार ही कार्य करेगा। यदि उस ने मंत्रिपरिषद के परामर्श की अवहेलना की तो मंत्रिपरिषद त्याग-पत्र दे देगा। मंत्रिपरिषद के पदरिक्त होने की दशा में राज्यपाल दूसरे मंत्रिपरिषद का निर्माण करना चाहेगा और ऐसा करने में वह सफल न हो सकेगा, क्योंकि विधान सभा का बहुमत तो पहले मंत्रिपरिषद को प्राप्त था। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि राज्यपाल कभी किसी विषय में अपने

विवेक से निर्णय नहीं करेगा। असाधारण परिस्थितियों में वह ऐसा करने को स्वतन्त्र होगा। उदाहरणार्थ यदि मुख्य मंत्री कभी राज्यपाल को विधान-सभा भंग करने का परामर्श दें और राज्यपाल यह अनुभव करे कि विधान-सभा को भंग करना मंत्रिपरिषद के तो हित में है परन्तु जनता के हित में नहीं है तो वह ऐसा परामर्श मानने से इन्कार कर सकता है।

राज्यपाल के अधिकार ४ प्रकार के हैं—

१—कार्यपालिका सम्बन्धी अर्थात् शासन सम्बन्धी अधिकार।
२—विधायनी शक्ति अर्थात् कानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकार।
३—वित्त अर्थात् अर्थ सम्बन्धी अधिकार।
४—न्याय सम्बन्धी अधिकार।

(१) कार्यपालिका सम्बन्धी अधिकार—जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि राज्य की कार्यपालिका शक्ति राज्यपाल में निहित होगी और वह उसका प्रयोग स्वयं या अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के द्वारा करेगा। राज्य के कार्यपालिका सम्बन्धी समस्त कार्य राज्यपाल के नाम पर होंगे। राज्य की शक्ति का विस्तार उन समस्त विषयों तक होगा जो राज्य-सूची में दिए हैं। समवर्ती सूची में दिए गए विषयों में राज्य की कार्य-पालिका शक्ति संघ की कार्यपालिका शक्ति के अधीन रहेगी। राज्यपाल राज्य का शासन सुचारू रूप से चलाने के लिए नियम निर्माण करेगा और मंत्रियों में कार्य का विभाजन करेगा।

राज्य के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति राज्यपाल द्वारा या उसके परामर्श से की जावेगी। राज्य के मुख्य मंत्री की, तथा उसकी सलाह से अन्य मंत्रियों की नियक्ति राज्यपाल करेगा। राज्य के महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल) की नियुक्ति भी वही करेगा।

(२) विधायनी शक्ति सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को राज्य के विधानमंडल के अधिवेशन को आमंत्रित करने, उसे स्थागित

करने तथा विधान-मंडल को भंग करने का अधिकार है। वह विधान-मंडल में भाषण दे सकता है और अपना संदेश दे सकता है।

राज्य के विधानमंडल द्वारा स्वीकृत विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के बिना विधि अर्थात् कानून न बन सकेंगे। उसे अधिकार है कि वह विधेयक पर स्वीकृति प्रदान करे या रोक ले या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रख ले। धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़कर वह किसी भी विधेयक को विधान-मंडल के सदन या सदनों को पुनर्विचार के लिए वापस भेज सकता है, परन्तु यदि विधान-मंडल उस विधेयक को संशोधन सहित अथवा बिना संशोधन के फिर पास कर दे तो राज्यपाल को उस पर अपनी स्वीकृति देनी होगी। यदि कोई विधेयक ऐसा है, जिसका प्रभाव उच्चन्यायालय के अधिकारों पर हानिकर रूप से पड़ता है तो राज्यपाल का कर्त्तव्य है कि वह उस विधेयक को राष्ट्रपति के सम्मुख विचारार्थ रखने के लिए रोक ले। राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उस विधेयक पर अपनी स्वीकृति प्रदान करे या उसे रद्द कर दे या अपनी सिफारिश के साथ राज्य के विधान-मंडल के पास पुनः विचारार्थ वापिस भेज दे। यदि ऐसा विधेयक राष्ट्रपति द्वारा विधान-मंडल के पास पुनः विचारार्थ भेज दिया जाता है तो विधान-मंडल छः मास के अन्दर उस पर पुनः विचार करेगा और यदि वह संशोधन सहित या बिना संशोधन के उसे फिर स्वीकार कर ले तो वह फिर राष्ट्रपति के पास उसके विचारार्थ भेजा जायगा। संविधान में यह स्पष्ट नहीं किया गया है कि इस स्थिति में राष्ट्रपति को उसे स्वीकार करना पड़ेगा या नहीं। वैसे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि ऐसे विधेयक में राष्ट्रपति की सिफारिश के अनुसार संशोधन हो गया तो वह उसे स्वीकार कर लेगा। अन्यथा रद्द कर देगा। किसी प्रकार के धन विधेयक और वित्तीय विधेयक विधान-मंडल में राज्य पाल की सिफारिश के बिना प्रस्तावित न किए जा सकेंगे।

राज्यपाल को, ऐसे किसी भी समय, जब विधान-मंडल का अधिवेशन

न हो रहा हो, अध्यादेश (आर्डिनेन्स) जारी करने का अधिकार है। इस अध्यादेश का प्रभाव वैसा ही होगा, जैसा विधान-मंडल द्वारा स्वीकृत अधिनियम (एक्ट) का। इस प्रकार के समस्त अध्यादेश विधान-मंडल के सामने रखे जायेंगे और उसके अधिवेशन की आरंभ होने की तिथि से छः सप्ताह तक जारी रहेंगे, पीछे रद्द हो जायंगे। यदि विधान-मंडल छः सप्ताह बीतने के पूर्व ही इस प्रकार के अध्यादेश को रद्द करने के संबन्ध में प्रस्ताव पास कर दे तो ये उससे पूर्व भी रद्द हो जायंगे। अध्यादेश उन्हीं विषयों के संबन्ध में जारी किये जा सकेंगें, जिनके संबंध में विधान-मंडल को विधि-निर्माण करने का अधिकार है, परन्तु कुछ विषयों संबंधी अध्यादेशों को जारी करने से पूर्व राज्यपाल को राष्ट्रपति की अनुमति लेनी होगी।

(३) वित्त सम्बन्धी अधिकार—प्रत्येक वित्तीय या आर्थिक वर्ष के आरंभ में राज्यपाल को उस वर्ष का वार्षिक वित्त-विवरण विधान-मंडल के सम्मुख उपस्थित करना होगा। इसमें उस वर्ष की अनुमानित आय-व्यय का व्योरा होगा। विधान मंडल से किसी भी मद के लिए धन की मांग राज्यपाल की सिफारिश पर ही की जा सकती है। राज्यपाल को अधिकार है कि वह विधान-मण्डल के सामने पूरक मांग, बढ़े हुए खर्चे के लिए, उपस्थित करे। पूरक मांग या अन्य खर्चों के सम्बन्ध में पूरा विवरण वह विधान-सभा के सम्मुख उपस्थित करेगा।

(४) न्याय सम्बन्धी अधिकार—राज्यपाल को उन समस्त विषयों से सम्बन्धित अपराधों के लिए, जो राज्य की कार्यपालिका शक्ति के अन्तर्गत है, दिए गए दण्ड को कम करने, रद्द करने, स्थगित करने और बदल देने का अधिकार है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि राज्यपाल का यह अधिकार केवल उसी दशा में होगा जब अपराधी ने राज्य के विधान-मण्डल द्वारा बनाए किसी कानून को तोड़ा हो। सङ्घ द्वारा बनाए

हुए कानून को तोड़ने वाले अपराधी को अथवा मृत्युदण्ड-प्राप्त अपराधी को केवल राष्ट्रपति ही क्षमा कर सकेगा, राज्यपाल नहीं।

मंत्रिपरिषद्—राज्यपाल राज्य का वैधानिक और नाममात्र का प्रधान है, राज्य की वास्तविक कार्यपालिका शक्ति मन्त्रिपरिषद् के हाथ में होगी। राज्य की मन्त्रिपरिषद् को संघ की मन्त्रिपरिषद् का छोटा रूप ही समझना चाहिए। नियुक्ति, सङ्गठन आदि के सम्बन्ध में वही व्यवस्था है। सङ्घ के विषयों सम्बन्धी जैसे अधिकार सङ्घ की मन्त्रिपरिषद् को प्राप्त हैं, लगभग वैसे ही अधिकार राज्य के सम्बन्ध में राज्य की मन्त्रिपरिषद् को हैं।

मन्त्रिपरिषद् का सङ्गठन—मंत्री-परिषद् के निर्माण की रीति यह है कि जब राज्य में नये विधान-मंडल का संगठन हो जाता है, तो राज्यपाल उस दल के नेता को मंत्रिपरिषद् बनाने के लिए कहता है, जिसका विधान-सभा में बहुमत हो। अगर विधान-सभा में किसी एक दल का स्पष्ट बहुमत न हो तो मन्त्रिपरिषद् का निर्माण करने के लिए राज्यपाल उस दल के नेता को कहता है, जो दूसरे दलों के सहयोग से (बहुमत प्राप्त करके) मंत्रिपरिषद् बना सके।* जब वह नेता मंत्रिपरिषद् बनाना स्वीकार कर लेता है तो उससे मंत्रियों के नाम देने के लिए कहा जाता है। मंत्री उन्हीं व्यक्तियों में से हो सकते हैं, जो विधान-मंडल के सदस्य हों, या जिनके छः माह के भीतर सदस्य बनने की आशा हो। मन्त्रियों की संख्या निश्चित की हुई नहीं है। प्रत्येक राज्य में, कार्य-विस्तार और शासन-व्यवस्था की दृष्टि से, उसमें आवश्यकतानुसार कमी-वेशी की जाती है। साधारणतया मंत्री छः से बारह तक होते हैं। मन्त्रिपरिषद् के नेता या प्रधान को मुख्य मन्त्री (चीफ मिनिस्टर) कहा जाता है।

---

* ऐसी मन्त्रिपरिषद् को सम्मिलित मंत्रिपरिषद् (को-अलिशन-मिनिस्टरी) कहते हैं।

यद्यपि संविधान के अनुसार यह व्यवस्था है कि मुख्य मन्त्री की नियुक्ति राज्यपाल करेगा और अन्य मन्त्रियों को वह मुख्य मंत्री के परामर्श से नियुक्त करेगा, ऊपर के कथन से यह स्पष्ट है कि व्यवहार में राज्यपाल मन्त्रियों को अपनी इच्छानुसार नियुक्त नहीं कर सकेगा, क्योंकि मन्त्रिपरिषद बनाने के लिए उसे ऐसे ही व्यक्ति को निमंत्रित करना होगा, जिसका विधान-सभा में बहुमत हो। इसी प्रकार यद्यपि संविधान के अनुसार मंत्री लोग राज्यपाल की इच्छा पर्यन्त ही अपने पदों पर रहेंगे, व्यवहारिक बात यह है कि राज्यपाल किसी मंत्रिपरिषद को (जब तक कि उसे विधान-सभा के बहुमत का समर्थन प्राप्त है) उसके पद से न हटा सकेगा; कारण कि दूसरी मन्त्रिपरिषद, विधान-सभा की विश्वास प्राप्त न होने की दशा में, अपने पद पर न रह सकेगी।

मंत्रियों का पद और वेतन—मुख्य मंत्री के परामर्श से, राज्यपाल मंत्रियों के काम का बँटवारा करता है। मंत्री अपने प्रमुख कार्य के नाम से पुकारे जाते हैं यथा शिक्षा-मंत्री, अर्थ-मंत्री आदि।

अपना पद ग्रहण करने से पहले प्रत्येक मंत्री को राज्यपाल के सामने अपने पद की, और गोपनीयता की शपथ लेनी होगी। यदि ऐसा मंत्री, जो नियुक्ति के समय विधान-मंडल का सदस्य न हो, छः माह के भीतर उसका सदस्य न हो जाय तो उसे अपना पद रिक्त करना होगा।

उड़ीसा, बिहार, और मध्यप्रदेश राज्यों में आदिम जातियों, अनुसूचित जातियों और पिछड़े हुए वर्गों के हितों के संरक्षण के लिए एक-एक मंत्री होगा। मंत्रियों के वेतन तथा भत्ते राज्य के विधान-मंडल द्वारा निश्चित किए जायंगे और जब तक राज्य के विधान-मंडल द्वारा कुछ निश्चय नहीं किया जाता, तब तक मंत्रियों को वही वेतन और भत्ते मिलते रहेंगे, जो संविधान लागू होने से पूर्व मिलते रहे हैं।

मंत्रिपरिषद का काम—यद्यपि संविधान के अनुसार मंत्रिपरिषद

का कार्य राज्यपाल को उसके कार्य में सहायता देना है, व्यवहार में वह राज्य के प्रशासन-कार्य का संपादन करेगी। वह विधि-निर्माण का कार्यक्रम निश्चित करेगी। विधान-मंडल० में महत्वपूर्ण विधेयकों को उपस्थित करना उसी का काम है। राज्य का आय-व्यय-अनुमानपत्र मंत्रिपरिषद ही तैयार करेगी और वित्त सम्बन्धी लगभग सभी विधेयक उसके द्वारा उपस्थित किए जायंगे।

सेक्रेटरी आदि पदाधिकारी—प्रत्येक विभाग का दैनिक कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए एक विभागीय सेक्रेटरी तथा उसके कुछ सहायक पदाधिकारी होते हैं। इनका पद स्थायी होता है। मंत्रियों के संसदीय (पार्लिमेंटरी) सेक्रेटरी भी रहते हैं। ये उन्हें विशेषतया विधान-मंडल सम्बन्धी कार्य में सहायता देते हैं। इन पदों पर विधान-सभा के सदस्यों की नियुक्ति होती है और इनके वेतन और भत्ते के लिए प्रतिवर्ष विधान-सभा की स्वीकृति ली जाती है। सरकार से वेतन पाने के कारण इन्हें विधान-सभा की सदस्यता से वंचित नहीं किया जाता।

मंत्रिपरिषद की कार्यपद्धति—मंत्रिपरिषद की सभा प्रायः प्रति सप्ताह होती है। सभा में सभापति का आसन मुख्य मंत्री ग्रहण करता है। उसमें व्यापक नीति निर्धारित की जाती है। सभा में कोरम या मतदान की आवश्यकता नहीं होती, अकेला मुख्य मंत्री भी किसी विषय का निश्चय कर सकता है। सभा की सब चर्चा गुप्त रखी जाती है। किसी विभाग के रोजमर्रा के काम के सम्बन्ध में उसका मंत्री ही निर्णय कर लेता है, अथवा वह मुख्य मंत्री का परामर्श ले लेता है।

सामूहिक उत्तरदायित्व—मंत्रिपरिषद राज्य की विधान-सभा के प्रति जिम्मेदार होती है। उसकी यह जिम्मेदारी सामूहिक होती है अर्थात् सब मंत्री एक दूसरे के काम की जिम्मेदारी में हिस्सेदार होते हैं। विधान-सभा में किसी एक मंत्री के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव होने पर सारी

मंत्रिपरिषद को इस्तीफा देना पड़ता है। इसी प्रकार यदि मुख्य मंत्री किसी मंत्री को मंत्रिपरिषद से पृथक् करना चाहे और वह मंत्री इस्तीफा न दे तो मुख्य मंत्री अपना तथा पूरी मंत्रिपरिषद का त्यागपत्र दे कर नयी मंत्रिपरिषद ऐसा बनाता है, जिसमें उपर्युक्त मंत्री न हो।

मुख्य मंत्री इस बात का ध्यान रखता है कि सब विभागों में ऐसी नीति वर्ती जाय, जिससे शासन में एकता बनी रहे। किसी विभाग का मंत्री इस बात के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि उसकी नीति हानिकर है। जो मंत्री मंत्रिपरिषद की नीति से सहमत नहीं होता, वह इस्तीफा देकर अलग हो जाता है।

महाधिवक्ता (एडवोकेट जनरल)—राज्यपाल को विधि सम्बन्धी मामलों में परामर्श देने के लिए राज्य में एक महाधिवक्ता होगा। उसकी नियुक्ति राज्यपाल करेगा और उसकी योग्यता वही होगी, जो उच्च न्यायालय के न्यायाधीश की होनी चाहिए। वह उस समय तक अपने पद पर रहेगा जब तक राज्यपाल चाहे। महाधिवक्ता का वेतन आदि राज्यपाल द्वारा निश्चित किया जायगा।

'ख' वर्ग के राज्यों की कार्यपालिकाएँ

'ख' वर्ग के राज्यों का पद 'क' वर्ग के राज्यों के लगभग समान है। इनकी कार्यपालिकाएँ भी बहुत-कुछ 'क' भाग के राज्यों की कार्यपालिकाओं जैसी होंगी। हाँ, इनमें से प्रत्येक राज्यपाल के स्थान पर राजप्रमुख होगा। हैदराबाद का राजप्रमुख वहाँ का निजाम होगा। कश्मीर और मैसूर के राजप्रमुख वहाँ के महाराजा होंगे। अन्य राज्यों के राजप्रमुख वे व्यक्ति होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति राजप्रमुख की मान्यता प्रदान करे। राजप्रमुख के भत्ते आदि राज्य की संचित निधि से दिये जायंगे, इन पर विधान-सभाओं का मत नहीं लिया जायगा।

संविधान में राजप्रमुख के वेतन की व्यवस्था नहीं है। केवल

यह कहा गया है कि उसे, जब कि राज्य की सरकार के मुख्य स्थान में उसका अपना निवास-गृह न हो, बिना किराया दिए सरकारी भवन के उपयोग का हक्क होगा, तथा उसे 'ऐसे भत्तों और विशेषाधिकारों का हक्क होगा, जैसे कि राष्ट्रपति निर्धारित करे। स्मरण रहे कि सभी राजप्रमुख इस समय राजाओं में से है, और आगे भी अधिकांश राजप्रमुख साधारणतया राजाओं में से ही होने की सम्भावना है। राजाओं को निजी खर्च की रकमें कितनी अधिक मिलती है, यह पहले बताया जा चुका है।

इन राज्यों का, शासन के विषय में, केन्द्र से वैसा सन्बन्ध नहीं है, जैसा 'क' भाग के राज्यों का है। ये राज्य संविधान लागू होने से दस वर्ष पर्यन्त तक संघ सरकार के नियंत्रण में रहेंगे और उनकी सरकारों का कर्तव्य होगा कि वे राष्ट्रपति के समय-समय पर दिए गए आदेशों को मानें।* [संसद को अधिकार है कि इस दस वर्ष की अवधि को किसी राज्य के सम्बंध में घटादे या बढ़ादे ; इसके अतिरिक्त राष्ट्रपति भी अपने आदेश द्वारा किसी राज्य को केन्द्र के नियंत्रण द्वारा मुक्त कर सकता है।]

---

* इस अवधि में इन राज्यों की सरकारें केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी होंगी, जो जरूरत होने पर किसी राज्य के मंत्रिमंडल को भंग करके दूसरे मंत्रियों को नियुक्त कर सकती है और उचित समझे तो सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले सकती है। जब जून १६४६ में राजस्थान-प्रान्तीय कांग्रेस-कमेटी ने मंत्रिमंडल के प्रति अविश्वास का प्रस्ताव पास किया तो उसका कोई वैधानिक महत्व नहीं रहा, क्योंकि मंत्रि-मंडल को बनाना अथवा भंग करना रियासती विभाग के हाथ की बात थी। इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार ने जनवरी १६५० को विन्ध्यप्रदेश का मंत्रिमंडल भंग करके इस राज्या को चीफ-कमिश्नर द्वारा शासित कराने की व्यवस्था कर दी।

वित्त और धन सम्बन्धी विषयों में इन राज्यों के और केन्द्र के बीच जो समझौते हुए हैं, वे दस वर्ष तक ही लागू होंगे ; इसके पश्चात् समाप्त हो जायंगे ।

कुछ राज्यों के संबंध में विशेष व्यवस्था—'ख' भाग के राज्यों में से कश्मीर, त्रावनकोर-कोचीन और मध्यभारत की विशेष परिस्थितियों का विचार करके उनके सम्बन्ध में संविधान द्वारा कुछ विशेष व्यवस्था की गई है ।

कश्मीर—कश्मीर और जम्मू राज्य के शासन में सङ्घ सरकार का नियंत्रण केवल उन विषयों पर रहेगा, जिनके विषय में प्रवेश-पत्र द्वारा उस समय तय हुआ था, जब कि इस राज्य ने भारतीय सङ्घ में सम्मिलित होना स्वीकार किया था। इसका अर्थ यह है कि संघ सरकार कश्मीर के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों, रक्षा तथा यातायात के साधनों को छोड़कर अन्य किसी विषय में राज्य के शासन में हस्तक्षेप या नियंत्रण न करेगी। यदि कश्मीर राज्य की अपनी विधान-सभा भारत सरकार को कुछ और विषयों पर नियंत्रण प्रदान करना चाहे तो उनके लिए राष्ट्रपति उचित व्यवस्था कर देगा ।

त्रावनकोर-कोचीन—त्रावनकोर-कोचीन राज्य की सरकार को ५१ लाख रुपया 'देवस्वम निधि' के नाम से दिया जायगा। इस रकम से उस मन्दिर का प्रबन्ध किया जायगा, जिसके देवता के नाम पर वहाँ का राजा शासन करता है ।

मध्यभारत—मध्यभारत राज्य की मन्त्रिपरिषद में एक ऐसे मन्त्री की नियुक्ति की जायगी, जिसका कार्य अनुसूचित क्षेत्रों के निवासियों के हित की रक्षा करना एवं उनकी उन्नति करना होगा ।

—]:o:[—

उन्नीसवाँ अध्याय

स्वायत्त राज्यों के विधान-मंडल

केन्द्र आर्थिक या राजनैतिक संकट के समय ही प्रान्तों से अधिकार छीन सकता है। वह कोई भी ऐसा कार्य न करेगा, जिससे शासन के सम्यक् संचालन में बाधा पड़े। यह भी याद रखने की बात है कि केन्द्रीय धारासभा में कौन लोग हैं। आखिर, प्रान्तों से चुने गए प्रतिनिधि ही तो केन्द्र की धारासभा में होंगे। क्या उन्हें अपने प्रान्तों के हितों का ध्यान नहीं होगा ? और, केन्द्र में ऐसी प्रवृत्ति ही क्यों आएगी, जिससे प्रान्तों के उचित अधिकारों को कुठाराघात हो !

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

जैसा पहले बताया जा चुका है, स्वायत्त राज्यों में 'क' और 'ख' वर्ग के राज्य सम्मिलित हैं। पहले 'क' वर्ग को लें।

'क' वर्ग के राज्यों के विधान-मंडल

विधान-मंडलों के सदन और अधिवेशन—'क' वर्ग के राज्यों के विधान-मंडलों में राज्यपाल (गवर्नर) के अतिरिक्त एक या दो सदन होंगे। पंजाब, पश्चिमी बंगाल, बिहार, मद्रास बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश के राज्यों के विधान मंडलों में दो-दो सदन होंगे, और उड़ीसा, आसाम तथा मध्यप्रदेश के विधान-मंडलों में एक-एक सदन होगा।

जिन राज्यों में दो-दो सदन होंगे, उनमें प्रथम सदन विधान-सभा और दूसरा सदन विधान-परिषद कहलाएगा। जिन राज्यों में केवल एक सदन होगा, उनमें उसे विधान-सभा कहा जायगा।

विधान-मंडल के सदन या सदनों के वर्ष में कम-से-कम दो अधिवेशन होंगे तथा उनके एक सत्र की अन्तिम बैठक तथा आगामी सत्र की प्रथम बैठक के लिए नियुक्त तारीख के बीच में छः मास से अधिक का अन्तर न होगा; अर्थात् एक सत्र समाप्त होने के बाद छः माह के भीतर दूसरा सत्र आरम्भ हो जायगा। अधिवेशनों को राज्यपाल निमंत्रित करेगा और वही उन्हें स्थगित करने और विधान-मंडल को भंग करने का भी कार्य करेगा।

विधान-सभा और उसका संगठन—विधान-सभा के सदस्यों का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रों से होगा। मतदान सर्वथा गुप्त रखा जावेगा। प्रत्येक मतदाता के लिए आवश्यक होगा कि वह भारत का नागरिक हो; २१ वर्ष से कम आयु का न हो; निवास की शर्तें पूरी करता हो, विक्षिप्त न हो; किसी अपराध, भ्रष्टाचार अथवा गैर-कानूनी कार्य के कारण अयोग्य न ठहरा दिया गया हो।

निर्वाचन-क्षेत्र प्रादेशिक होंगे और प्रतिनिधित्व का आधार इस प्रकार होगा कि प्रति ७५,००० जनसख्या के लिए एक प्रतिनिधि से अधिक नहीं होगा। यह प्रतिबन्ध आसाम के स्वायत्त जिलों तथा शिलांग के नगर-क्षेत्र (म्युनिसपेलटी) तथा कटक के लिए लागू नहीं होगा। किसी भी राज्य की विधान-सभा के सदस्यों की संख्या ५०० से अधिक और ६० से कम नहीं होगी। जहाँ तक संभव होगा, संपूर्ण राज्य के अन्दर प्रतिनिधित्व का अनुपात समान होगा।

राज्यों की विधान-सभाओं में अल्पमतों के लिए स्थान सुरक्षित रखे गए हैं। प्रत्येक राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जातियों के लिए तथा आसाम राज्य के आदिम जाति-क्षेत्रों की आदिम जातियों को छोड़-कर अन्य आदिम जातियों के लिए स्थान सुरक्षित रहेंगे। आसाम की विधान-सभा में वहां के स्वायत्त जिलों के लिए भी स्थान सुरक्षित रहेंगे।

आदिम जातियों और अनुसूचित जातियों के लिए विधान-सभा में उनकी जनसंख्या के आधार पर स्थान सुरक्षित रखे जायंगे। आसाम की विधान-सभा में स्वायत्त जिलों के प्रतिनिधियों की संख्या जनसंख्या के आधारपर नियत की जावेगी। इस राज्य के स्वायत्त जिलों के निर्वाचन-मंडलों से कोई भी प्रतिनिधि ऐसा नहीं निर्वाचित किया जायगा, जो आदिम जाति का न हो परन्तु यह प्रतिबन्ध शिलांग के म्युनिसपल क्षेत्र और छावनी के क्षेत्र के सम्बन्ध में लागू न होगा। एंग्लो-इन्डियनों के प्रतिनिधित्व के लिए विशेष व्यवस्था की गई है। यदि किसी राज्य के राज्यपाल का मत यह हो कि उस राज्य की विधान-सभा में एंग्लो-इन्डियन समुदाय का प्रतिनिधित्व पर्याप्त नहीं है, तो वह उस समुदाय के जितने सदस्य उचित समझेगा मनोनीत कर देगा; यह विशेष व्यवस्था संविधान लागू होने के १० वर्ष तक अर्थात् २६ जनवरी १९६० तक लागू रहेगी। उसके पश्चात् समाप्त हो जावेगी।

सदस्य संख्या—राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्यों की संख्या इस भांति होगी :—आसाम १०८, बिहार ३३०, बम्बई ३१५, मध्यप्रदेश २३२, मद्रास ३७५, उड़ीसा १४०, पंजाब १२६, उत्तरप्रदेश ४३०, पश्चिमी बंगाल २३८

विधान-सभा के सदस्यों की योग्यता—विधान-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिए आवश्यक है कि उम्मेदवार भारत का नागरिक हो, २५ वर्ष से कम आयु का न हो, और उसमें विधान-मंडल द्वारा निश्चित अन्य योग्यताएँ हों।

कोई व्यक्ति विधान-सभा का सदस्य निर्वाचित होने के लिये अयोग्य समझा जायगा, यदि वह (१) भारत-सरकार के या किसी भारतीय राज्य की सरकार के ऐसे पद पर आसीन हो, जिससे उसे आर्थिक लाभ होता है। [मंत्रियों के ऊपर यह प्रतिबंध लागू नहीं होगा।] (२) पागल हो या किसी न्यायालय द्वारा पागल करार दे दिया गया हो। (३) ऐसा दिवालिया हो

जिसका भुगतान न हुआ हो। (४) विधान-मंडल द्वारा निर्मित किसी विधि के अंतर्गत अयोग्य ठहराया गया हो। (५) भारतीय नागरिक न हो या उसने स्वेच्छा से किसी अन्य देश की नागरिकता स्वीकार करली हो।

सदस्यों की अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्न उपस्थित होने पर उसका निर्णय निर्वाचन-कमीशन के परामर्श से, राज्यपाल करेगा।

सदस्यों के पद की रिक्तता—एक ही समय में कोई व्यक्ति किसी राज्य के विधान-मंडल के दोनों सदनों का सदस्य न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति दोनों सदनों के लिए निर्वाचित हो जाय तो उसे किसी एक सदन की सदस्यता छोड़नी होगी। इसी प्रकार एक ही समय में कोई व्यक्ति दो या अधिक राज्यों के विधान-मंडलों का सदस्य न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति एक से अधिक राज्यों के विधान मण्डलों का सदस्य निर्वाचित हो गया तो उसे राष्ट्रपति द्वारा निश्चित अवधि के अन्दर ही एक को छोड़ कर अन्य सब राज्यों के विधान मण्डलों से त्याग-पत्र दे देना होगा अन्यथा उनका स्थान समस्त विधान-मण्डलों में रिक्त हो जायगा अर्थात् वह किसी भी विधान-मण्डल का सदस्य न रहेगा। निर्वाचित होने के पश्चात् यदि किसी सदस्य में कोई अयोग्यता उत्पन्न हो जाय तो उसका पद रिक्त हो जायगा। यदि कोई सदस्य अपने सदन की अनुमति के बगैर, उसके अधिवेशनों में ६० दिन तक लगातार अनुपस्थित रहेगा तो उसका स्थान रिक्त घोषित कर दिया जावेगा। त्यागपत्र देने से तो सदन में उसका स्थान रिक्त हो ही जायगा। सदस्यों के पदरिक्तता सम्बन्धी समस्त नियम विधान-मंडल के दोनों सदनों पर लागू होंगे।

विधान-सभा के पदाधिकारी और कार्य-काल—विधान-सभा अपने सदस्यों में से किन्हीं दो सदस्यों को अध्यक्ष ('स्पीकर') और उपाध्यक्ष ('डिप्टी-स्पीकर') चुनेगी। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के कार्य और अधिकार विधान-सभा के सम्बन्ध में वही होंगे, जो संसद की लोक-

सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के उस सभा के सम्बन्ध में है। विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को अपदस्थ करने की प्रक्रिया भी लोक-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष को अपदस्थ करने की प्रक्रिया के अनुसार ही है। जब ये विधान-सभा के सदस्य न रहें तो इन्हें अपना पद छोड़ देना पड़ेगा। ये गवर्नर को लिखित सूचना देकर अपना पद छोड़ सकेंगे, और विधान-सभा के उपस्थित सदस्यों के बहुमत से पास किए हुए प्रस्ताव द्वारा भी अपने पद से हटाए जा सकेंगे; हाँ, ऐसे प्रस्ताव की सूचना चौदह दिन पहले दी जानी चाहिए। स्पीकर और डिप्टी स्पीकर को विधान-मंडल द्वारा निर्धारित वेतन दिया जायगा।

विधान-सभा का कार्य-काल पांच वर्ष होगा, परन्तु राज्यपाल को अधिकार है कि वह इससे पूर्व विधान-सभा को भंग कर दे। अपने नियत समय से पूर्व यदि विधान-सभा भङ्ग नहीं की जाती तो वह अपने प्रथम अधिवेशन के दिन से पाँच वर्ष तक रहेगी और उसके बाद स्वयं भङ्ग हो जायगी। संसद (पार्लिमेंट) को अधिकार है कि संकटकालीन घोषणा की अवधि में विधि द्वारा इसकी अवधि एक बार एक वर्ष के लिए बढ़ा दे। घोषणा समाप्त होने के उपरान्त यह अतिरिक्त अवधि किसी भी दशा में छः माह से अधिक नहीं होगी।

विधान-परिषद—राज्यों के विधान-मंडल का द्वितीय सदन 'विधान-परिषद' कहलाएगा। संविधान के अन्तर्गत किसी राज्य में विधान-परिषद को स्थापित करने या समाप्त कर देने की व्यवस्था की गई है। यदि किसी राज्य की विधान-सभा अपने कुल सदस्यों के बहुमत तथा अधिवेशन में उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मत से ऐसा प्रस्ताव पास कर दे कि उस राज्य में विधान-परिषद न रहे या जिस राज्य में वह नहीं है, वहाँ वह स्थापित हो जाय तो संसद की स्वीकृति से ऐसा किया जा सकेगा। (यह कार्य संविधान का संशोधन नहीं समझा जायगा।) विधान-परिषद

एक स्थाई सदन होगी। यह कभी भी भङ्ग नहीं की जायगी किन्तु, उसके एक-तिहाई सदस्य प्रति दो वर्ष के पश्चात् स्थान रिक्त करेंगे और उन स्थानों की पूर्ति नवीन सदस्यों द्वारा होगी। ये नवीन सदस्य छः वर्ष के लिए होंगे। आरंभ में इसका संगठन इस प्रकार होगा कि एक-तिहाई सदस्य छः वर्ष के लिए होंगे, एक-तिहाई चार वर्ष के लिए, और शेष एक-तिहाई दो वर्ष के लिए। बाद में तो सदस्य छः वर्ष के लिए ही होंगे और एक क्रम बैठ जावेगा। विधान-परिषद के सदस्यों की संख्या उस राज्य की विधान सभा के सदस्यों की संख्या की चौथाई से अधिक नहीं होगी, किन्तु किसी भी दशा में सदस्यों की संख्या ४० से कम नहीं होगी।

विधान-परिषद का संगठन—जब तक संसद विधि द्वारा कोई दूसरी व्यवस्था नहीं करती, विधान-परिषद का निर्माण निम्नलिखित रीति से होगा :—

(क) यथा-शक्य एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन ऐसे निर्वाचक-मंडल द्वारा होगा, जिसमें राज्य की नगरपालिकाओं (म्यूनिसपेलिटियों) और जिला-मंडलियों (डिस्ट्रिक्ट बोर्डों) के सदस्य तथा अन्य ऐसे स्थानीय अधिकारी, जैसे कि संसद विधि द्वारा निश्चित करे, होंगे।

(ख) यथा-शक्य कुल सदस्य संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक-मंडल करेगा, जिसमें भारत के किसी विश्वविद्यालय के कम से कम तीन वर्ष के स्नातक हों, अथवा जो कम से कम तीन वर्ष से ऐसी योग्यता धारण करते हों, जो संसद द्वारा स्नातक के बराबर मान्य हों।

(ग) यथा-शक्त कुल सदस्यों की संख्या के बारहवें भाग का निर्वाचन एक ऐसा निर्वाचक-मंडल करेगा, जिसमें वे अध्यापक होंगे जो राज्य के अंतर्गत किसी माध्यमिक पाठशाला या इससे उच्च शिक्षा-संस्था में तीन वर्ष से पढ़ा रहें हों।

(घ) यथा-शक्य कुल सदस्यों के एक-तिहाई सदस्यों का निर्वाचन विधान-सभा के सदस्य ऐसे व्यक्तियों में से करेंगे जो विधान-सभा के सदस्य नहीं हैं।

(ङ) शेष सदस्य [अर्थात् सदस्यों की संख्या का छठा भाग] राज्य-पाल द्वारा नामजद [नाम निर्देशित] किए जायंगे। राज्यपाल ऐसे व्यक्तियों को नामजद करेगा जिन्हें साहित्य, विज्ञान, कला और सामाजिक सेवा का विशेष ज्ञान अथवा व्यवहारिक अनुभव हो।

ऊपर बताए गए समस्त निर्वाचक मंडलों में निर्वाचन अनुपाती प्रतिनिधित्व के आधार पर एकल संक्रमण मत पद्धति के अनुसार होगा। प्रथम तीन श्रेणियों यानी स्थानीय अधिकारी, स्नातकों और अध्यापकों के निर्वाचक-मंडलों के प्रादेशिक निर्वाचन-क्षेत्रों को संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी।

सदस्य संख्या—दो सदन वाले राज्यों में विधान-परिषदों के सदस्यों की संख्या इस भाँति होगी :—

राज्य का नाम	सदस्य संख्या
१—बिहार	७२
२—बम्बई	७२
३—मद्रास	७२
४—पंजाब	४०
५—उत्तरप्रदेश	७२
६—पश्चिमी बंगाल	५१

विधान-परिषद के सदस्यों की योग्यता आदि—विधान-परिषद का सदस्य निर्वाचित होने के लिए आवश्यक होगा कि कोई भी व्यक्ति [१] भारत का नागरिक हो, [२] ३० वर्ष से कम आयु का न हो, [३] उसमें वे दूसरी योग्यताएँ भी हों, जो विधान-मंडल विधि द्वारा निश्चित करे।

विधान-परिषद की सदस्यता के लिए अयोग्यताएँ वही होंगी, जो विधान सभा की सदस्यता के लिए हैं। अयोग्यता सम्बन्धी प्रश्नों का निर्णय राज्यपाल निर्वाचन-आयोग के परामर्श से करेगा। सदस्यों के पदरिक्तता सम्बन्धी नियम विधान-सभा के पदरिक्तता सम्बन्धी नियमों के अनुसार ही हैं।

विधान-परिषद के सदस्य अपने सदस्यों में से एक सभापति (चेयरमेन) एक और उपसभापति (डिप्टी चेयरमेन) निर्वाचित करेंगे। उनके कार्य और अधिकार विधान-परिषद के सम्बन्ध में वही होंगे, जो विधान-सभा के सम्बन्ध में अध्यक्ष और उपाध्यक्ष के हैं। उन्हें अपदस्थ करने की प्रक्रिया भी वही होगी, जो विधान-सभा के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष की है।

विधान-मंडल के सदस्यों के विशेषाधिकार, वेतन तथा शपथ—विधान-मंडल के प्रत्येक सदस्य को विधान-मंडल के नियमों एवं आदेशों के अधीन रहते हुए विधान-मंडल में भाषण करने की पूर्ण स्वतंत्रता होगी। विधान-मंडल या उसकी किसी समिति में कही हुई किसी बात या मत-दान के लिये किसी सदस्य के विरुद्ध किसी न्यायालय में कोई कार्यवाही न हो सकेगी। विधान-मंडल के सदस्यों को इतना वेतन, भत्ता तथा वे सब विशेषाधिकार आदि मिलेंगे, जिन्हें विधान-मंडल विधि बना कर निश्चय करे।

निर्वाचित होने के पश्चात् प्रत्येक सदस्य को अपना पद ग्रहण करने से पूर्व राज्यपाल के, अथवा राज्यपाल द्वारा नियुक्त व्यक्ति के, सम्मुख संविधान के प्रति भक्ति और अपने कर्तव्य-पालन के सम्बन्ध में यह शपथ लेनी होती है—

मैं... (अमुक) ..... जो विधान-सभा (या विधान-परिषद) का सदस्य निर्वाचित (या नाम-निर्देशित) हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्य-निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि मैं विधि द्वारा स्थापित

भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा; तथा जिस पद को मैं ग्रहण करनेवाला हूँ, उसके कर्तव्यों का श्रद्धापूर्वक पालन करूँगा।

विधान-मंडल की कार्यपद्धति—विधान-मंडल के प्रत्येक सदन में प्रत्येक बात का निर्णय उपस्थित तथा मत देने वाले सदस्यों के बहुमत से होगा। किसी भी सदन की कार्यवाही विधि के अनुसार तभी समझी जावेगी, जब कि कम-से-कम दस, या कुल सदस्य-संख्या के दशमांश सदस्य (इनमें जो संख्या अधिक हो, उतने) सदस्य उपस्थित हों। सभापति साधारण दशा में मत-प्रदान नहीं करेगा, परन्तु उसे निर्णायक मत देने का अधिकार है।

विधान-मंडल की कार्यवाही के अन्य नियम राज्यपाल सभापति तथा अध्यक्ष के परामर्श से बनाएगा। दोनों सदनों के संयुक्त अधिवेशनों में विधान-सभा का अध्यक्ष सभापतित्व करेगा।

किसी राज्य के विधान-मंडल में उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों या उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीशों के निर्णय पर या उनके कर्तव्य-पालन सम्बन्धी कार्यों पर कोई वाद-विवाद नहीं किया जायगा। विधान-मंडल की कार्य-प्रणाली की वैधानिकता के सम्बन्ध में किसी भी न्यायालय में कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा।

विधान-मंडल की कार्यवाही राज्य की भाषा, या हिन्दी या अंगरेजी में होगी। यदि कोई सदस्य इन भाषाओं में से कोई भाषा न जानता हो तो उसे अपनी भाषा में बोलने की अनुमति सदन का सभापति या अध्यक्ष प्रदान कर देगा। यह व्यवस्था संविधान लागू होने से १५ वर्ष तक चलेगी। उसके पश्चात् अंग्रेजी का व्यवहार बन्द हो जायगा।

विधान-मंडलों के कानूनों का क्षेत्र राज्य-सूची—विधान-मंडल अपने राज्यों के लिए वही सब कार्य करेंगे, जो संसद संघ-सरकार के लिए करती है। विधान-मंडलों को राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची के समस्त विषयों पर कानून बनाने का अधिकार है। परन्तु समवर्ती सूची के विषयों

में प्रथम अधिकार संसद को है। यदि वह इन विषयों की विधि न बनावे तो विधान-मंडल बना सकते हैं; संसद उसमें आवश्यकतानुसार परिवर्तन या परिवर्द्धन कर सकती है, यहाँ तक कि उसे रद्द भी कर सकती है। यदि राज्य के विधान-मंडल की बनाई हुई विधि में और संसद की बनाई हुई उस विषय की विधि में विरोध हो तो संसद की बनाई हुई विधि ठीक समझी जायगी। समवर्ती सूची के मुख्य-मुख्य विषय संसद के प्रसंग में बताए जा चुके हैं।

राज्य-सूची के मुख्य-मुख्य विषय संक्षेप में ये हैं:—

(१) सार्वजनिक व्यवस्था [सैनिक बल के प्रयोग को छोड़ कर]। (२) न्याय प्रशासन [उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालय छोड़ कर]; उच्चतम न्यायालय को छोड़कर अन्य न्यायालयों की फीस; राजस्व [माल]; न्यायालयों की कार्यपद्धति। (३) पुलिस [आरक्षक]। (४) जेल। (५) राज्य का लोक-ऋण। (६) राज्य-लोक-सेवाएँ और लोक-सेवा आयोग [सार्वजनिक नौकरी कमीशन] (७) राज्य-निवृत्ति-वेतन [पेन्शन]। (८) भूमि पर अधिकार, और भूमि सुधार। (९) सरकारी तौर से भूमि प्राप्त करना। (१०) पुस्तकालय तथा अजायबघर। (११) राज्यों के विधान मंडलों के चुनाव। (१२) राज्यों के मंत्रियों तथा विधान-सभाओं और परिषदों के सभापति, उपसभापति और सदस्यों का वेतन और भत्ता। (१३) स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ। (१४) सार्वजनिक स्वास्थ्य और सफाई, अस्पताल, जन्म-मृत्यु का लेखा। (१५) तीर्थ-यात्रा। (१६) कब्रिस्तान (१७) शिक्षा। (१८) सड़कें, पुल, घाट, और आवागमन के अन्य साधन (बड़ी रेलों को छोड़कर)। (१९) जलप्रबन्ध, आबपाशी, नहर, बाँध, तालाब और जल से उत्पन्न होने वाली शक्ति (२०) कृषि, कृषि-शिक्षा और अनुसन्धान, पशु-चिकित्सा तथा कांजी हाउस। (२१) भूमि, मालगुजारी और किसानों के पारस्परिक

सम्बन्ध। (२२) जंगल, (२३) खान, तेल के कुओं का नियंत्रण, और खनिज उन्नति। (२४) मछलियों का व्यवसाय। (२५) जंगली पशुओं की रक्षा। (२६) गैस के कारखाने। (२७) राज्य के अन्दर, का व्यापार वाणिज्य मेले-तमाशे, साहुकारी और साहुकार। (२८) सराय। (२९) उद्योग-धन्धों की उन्नति, माल की उत्पत्ति, पूर्ति और वितरण। (३०) खाद्य पदार्थों आदि में मिलावट; तोल और माप। (३१) शराब और अन्य मादक वस्तुओं सम्बन्धी क्रय-विक्रय और व्यापार (अफीम की पैदावार छोड़कर)। (३२) गरीबों का कष्ट-निवारण; बेकारी। (३३) कारपोरेशनों का संगठन, संचालन और समाप्ति; अन्य व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक आदि संस्थाएँ; सहकारी समितियाँ। (३४) दान, और दान देनेवाली संस्थाएँ। (३५) नाटक, थियेटर और सिनेमा। (३६) जुआ और सट्टा। (३७) राज्य सम्बन्धी विषयों के कानूनों के विरुद्ध होनेवाले अपराध। (३८) राज्य के काम के लिए आँकड़े तैयार करना। (३९) भूमि का लगान, और मालगुजारी सम्बन्धी पैमायश। (४०) आबकारी, शराब, गांजा, अफीम आदि पर कर। (४१) कृषि सम्बन्धी आय पर कर। (४२) भूमि, इमारतों पर कर। (४३) कृषि-भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी कर। (४४) खनिज अधिकारों पर कर। (४५) व्यक्ति-कर; मनोरंजन, (४६) व्यापार और पेशे-धन्धे पर कर। (४७) पशुओं और किश्तियों पर कर। (४८) समाचारपत्रों को छोड़ कर माल की बिक्री और खरीद पर कर; समाचार-पत्रों में प्रकाशित होनेवाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर। (४९) चुंगी। (५०) विलासिता की वस्तुओं पर कर; इस में दावत, जुए सट्टे पर का कर सम्मिलित है। (५१) स्टाम्प। (५२) राज्य के भीतर जल-मार्गों में जानेवाले माल और यात्रियों पर कर। (५३) मार्ग-कर ('टोल') (५४) किसी राज्य-विषय सम्बन्धी फीस।

विधि-निर्माण; साधारण विधेयक—विधान-मंडलों में विधि-निर्माण की कार्य-प्रणाली प्रायः वैसी ही है, जैसी संसद् में। इनमें भी उपस्थित होने वाले विधेयक दो प्रकार के होंगे—धन या वित्त सम्बन्धी तथा साधारण। धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़कर अन्य (साधारण) विधेयक राज्य के विधान-मंडल के किसी भी सदन में प्रस्तावित किए जा सकेंगे। कोई भी विधेयक दोनों सदनों में पास होने पर और राज्यपाल की अनुमति मिलने पर ही विधि बन सकेगा। यदि कोई विधेयक विधान-सभा में पास हो जाता है और विधान-परिषद् में पास नहीं हो पाता, या उसमें विधान-परिषद ऐसा संशोधन कर देती है जो विधान-सभा को स्वीकार नहीं है, या विधान-परिषद् उसे तीन माह के अन्दर न लौटावे तो विधान-सभा उस विधेयक को दुबारा उसी अधिवेशन में या अगले अधिवेशन में पास करके परिषद् के पास भेजेगी और यदि उसने इस बार भी एक माह के अन्दर उसे स्वीकार नहीं किया तो यह विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास हुआ समझा जायगा। इस भाँति यह स्पष्ट है कि विधान-परिषद, विधान-सभा से नीचे दर्जे की है।

धन सम्बन्धी विधेयक—ऊपर साधारण विधेयकों की बात कही गयी है। अब धन सम्बन्धी विधेयकों के विषय में लिखा जाता है। ये विधेयक विधान-सभा में ही प्रस्तावित किए जा सकते हैं, विधान-परिषद में नहीं। विधान-सभा में पास होने पर ऐसा विधेयक विधान-परिषद में उसकी सिफारिश के लिए भेज दिया जायगा। विधान परिषद् को १४ दिन के अन्दर ही अपनी सिफारिश के साथ इसे विधान-सभा में भेजना होगा। यदि वह ऐसा न करे तो विधेयक दोनों सदनों द्वारा पास समझा जायगा। यदि विधान-परिषद १४ दिन के अन्दर ही विधेयक को अपनी सिफारिशों सहित वापिस भेज देती है तो विधान-सभा को उन सिफारिशों को मानने या न मानने का पूर्ण अधिकार है। इसके पश्चात् विधेयक दोनों सदनों द्वारा स्वीकृत समझा जायगा।

खासकर निम्नलिखित विषयों का विधेयक धन सम्बन्धी विधेयक समझा जायगा—

१—किसी कर को लगाना, उसे उठा देना, उसमें छूट देना तथा उसमें परिवर्तन करना।

२—राज्य की सरकार द्वारा धन उधार लेना, अथवा कोई गारंटी देना।

३—राज्य की निधि की रक्षा, वृद्धि या व्यय की योजना।

कोई विधेयक धन सम्बन्धी है या नहीं, इसका निर्णय विधान-सभा का अध्यक्ष करेगा, और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

राज्यपाल की अनुमति—राज्य की विधान-सभा द्वारा, अथवा विधान-परिषद वाले राज्य में विधान-मंडल के दोनों सदनों द्वारा, पास किया हुआ विधेयक राज्यपाल की स्वीकृति के लिए भेजा जायगा। राज्यपाल को अधिकार है कि वह उस पर स्वीकृति दे, अनुमति रोक ले, या उसे राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित कर ले। राज्यपाल धन सम्बन्धी विधेयक को छोड़कर अन्य किसी भी विधेयक को विधान-मंडल के पास अपनी सिफारिशों सहित पुनः विचार करने के लिए भेज सकता है। विधान-मंडल को अधिकार है कि वह सिफारिशों को माने या न माने। न मानने की दशा में वह विधेयक को उसी रूप में फिर पास कर सकता है। इस बार राज्यपाल को उस पर स्वीकृति देनी ही होती है।

विचारार्थ रक्षित विधेयक—जब राज्यपाल किसी विधेयक को राष्ट्रपति के विचारार्थ रक्षित करले तो राष्ट्रपति को अधिकार है कि वह उस पर स्वीकृति दे, या स्वीकृति रोकले। धन सम्बन्धी विधेयकों को छोड़ कर, अन्य किसी भी विधेयक के सम्बन्ध में राष्ट्रपति राज्यपाल को यह आदेश दे सकेगा कि वह विधेयक को यथास्थिति विधान-मंडल के सदन या सदनों की सिफारिश सहित लौटा दे। इसपर छः माह की अवधि के अन्दर सदन या सदनों द्वारा उस विधेयक पर

फिर विचार किया जायगा। यदि विधेयक, संशोधन सहित या उसके बिना, सदन या सदनों द्वारा फिर से पास हो जाता है तो वह राष्ट्रपति के सामने पुनः विचारार्थ उपस्थित किया जायगा। संशोधन सहित स्वीकृत विधेयक को तो राष्ट्रपति स्वीकृति प्रदान कर ही देगा, पर यदि विधेयक संशोधन के बिना स्वीकृत हो तो राष्ट्रपति स्वीकृति देने के लिए बाध्य नहीं है।

राज्य का आय-व्यय निश्चित करना—गवर्नर या राज्यपाल सरकार के प्रत्येक आर्थिक वर्ष के अनुमानित आय और व्यय के सम्बन्ध में एक वक्तव्य राज्य के विधान-मंडल के सामने उपस्थित कराता है। इसमें व्यय के अनुमान के सम्बन्ध में दो प्रकार की मदों की रकमें अलग-अलग दिखाई जाती हैं—(१) जिन्हें खर्च करना अनिवार्य है, जिन पर विधान-मंडल केवल विचार या बहस कर सकेगा, परन्तु मत नहीं दे सकेगा, और (२) जिन्हें खर्च करने का प्रस्ताव किया जाता है, जिन पर विधान सभा का मत लिया जायगा।

इनमें से प्रथम प्रकार की मदें निम्नलिखित हैं:—

(१) राज्यपाल का वेतन, भत्ता और उसके पद से सम्बन्धित दूसरे व्यय।

(२) विधान-सभा के अध्यक्ष उपाध्यक्ष, और विधान-परिषद् के सभापति, उपसभापति के वेतन तथा भत्ते।

(३) उच्च न्यायालय के न्यायाधीशों के वेतन तथा भत्ते।

(४) राजाओं को निजी खर्च के लिए दी जाने वाली ऐसी रकमें, जिनको राष्ट्रपति ने निर्धारित किया हो।

(५) उच्च न्यायलयों का खर्च।

(६) राज्य के लोक-सेवा आयोग (कमीशन) के खर्च।

(७) सरकारी ऋण पर दिया जाने वाला ब्याज।

(८) किसी न्यायालय के निर्णय, आज्ञा या किसी भुगतान के लिए धन-राशि।

(९) संविधान द्वारा अथवा विधान-मंडल द्वारा घोषित किया गया कोई अन्य व्यय।

इन मदों को छोड़ कर शेष सब मदों का खर्च विधान-सभा के सामने माँग के रूप में पेश किया जायगा। विधान-सभा को अधिकार है कि वह किसी मांग पर स्वीकृति प्रदान करे, अस्वीकार कर दे, अथवा उसमें कमी कर दे। कोई भी मांग राज्यपाल की अनुमति बिना उपस्थित नहीं की जासकती। यदि राज्यपाल विधान-सभा द्वारा स्वीकृत धन-राशि को पर्याप्त न समझे और उसके विचार से भविष्य में अधिक की आवश्यकता है तो वह अतिरिक्त व्यय के लिए अतिरिक्त या पूरक मांग भी कर सकेगा। पूरक मांगों की कार्यवाही साधारण मांगों की भाँति होगी। विधान-सभा को अधिकार है कि वह भविष्य सम्बन्धी मांग या असाधारण मांग भी स्वीकार कर दे। इन मांगों की स्वीकृति के लिए साधारण मांग की प्रक्रिया ही व्यवहार में आवेगी।

विधान-मंडलों की विधि-निर्माण सम्बन्धी सीमा—यद्यपि राज्यों के विधान-मंडल अपने-अपने क्षेत्र में यथेष्ट अधिकार-सम्पन्न हैं, तथापि निम्नलिखित विषयों में उनके अधिकार सीमित हैं:—

१—राज्य द्वारा स्वीकृत निम्नलिखित विधि तब तक अवैध होंगी, जब तक कि उन पर राष्ट्रपति की स्वीकृति न मिल जाय:—(१) जिन विधियों का सम्बन्ध राज्य द्वारा संपत्ति प्राप्त करने से होगा (२) समवर्ती सूची के किसी विषय संबंधी विधि, जिसका संसद द्वारा स्वीकृत विधि से विरोध हो, और (३) वे विधि, जिनका उद्देश्य उन वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर लगाना हो, जिन्हें संसद ने जनता के जीवन के लिये अत्यन्त आवश्यक ठहराया हो।

अनावश्यक शीघ्रता पर नियंत्रण रखने की व्यवस्था कर ही दी गई है। फिर, द्वितीय सदन अनावश्यक देर भी लगा सकता है।

देश की अधिकांश जनता को द्वितीय सदन की उपयोगिता में विश्वास नहीं है। इसका सबूत यह है कि उड़ीसा, आसाम और मध्यप्रदेश ने अपने विधान-मंडल में द्वितीय सदन नहीं रखा है। संविधान-निर्माताओं को भी इसमें अधिक विश्वास नहीं था, क्योंकि उन्होंने द्वितीय सदन को हटाए जाने की व्यवस्था बहुत सरल रखी है।

वैसे भी द्वितीय सदन, अधिकार और शक्ति की दृष्टि से, बहुत निर्बल रखे गए हैं। आर्थिक मामलों में उनके अधिकार नगण्य हैं। साधारण विधियों के सम्बन्ध में उन्हें केवल कुछ देर लगाने का अधिकार मिला है। सारी स्थिति पर दृष्टिपात करने से द्वितीय सदन की विशेष उपयोगिता प्रतीत नहीं होती। इसका व्यय बहुत-कुछ व्यर्थ है।

'ख' वर्ग के राज्यों के विधान-मंडल

विधान-मंडलों का संगठन—विधानमंडलों की दृष्टि से ये राज्य 'क' वर्ग के राज्यों से मिलते हुए ही हैं। हाँ, इनके विधान मंडलों का अभिन्न अंग राजप्रमुख होगा, जब कि 'क' वर्ग के राज्यों में राज्यपाल होगा। इनकी विधान-सभाओं के सदस्यों की संख्या इस प्रकार है :— हैदराबार १७५, मध्यभारत ९९, मैसुर ९९ पटियाला और पंजाब राज्य-संघ ६०, राजस्थान १६०, सौराष्ट्र ६०; त्रावेकोर-कोचीन १०८।

मैसूर राज्य के विधान-मंडल में विधान-परिषद भी है। उसके सदस्यों की संख्या ४० है।

कार्य-क्षेत्र—इन राज्यों के विधान-मंडलों का कार्यक्षेत्र लगभग वैसा ही है, जैसा 'क' भाग के राज्यों का। इन्हें भी राज्य-सूची और समवर्ती सूची के सब विषयों पर विधि या कानून बनाने का अधिकार है। समवर्ती सूची के विषयों के कानून बनाने में संसद को प्राथमिकता और प्रधानता रहेगी, अर्थात् राज्यों के विधान-मंडल उनके सम्बन्ध में कानून

उसी दशा में बना सकेंगे, जब संसद न बनाए। संसद उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन कर सकती है, और उन्हें रद्द भी कर सकती है।

जम्मू और कश्मीर के संबंध में कुछ विषयों में भिन्नता है। संसद को इस राज्य के संबध में केवल संघ-सूची के विषयों और समवर्ती सूची के केवल उन विषयों पर विधि निर्माण करने का अधिकार होगा, जिनके विषय में प्रवेश-पत्र द्वारा उस समय तय हुआ, जब कि इस राज्य ने भारतीय संघ में सम्मिलित होना स्वीकार किया था। इसके अतिरिक्त संसद को उन विषयों पर भी विधि बनाने का अधिकार होगा, जिनके विषय में राष्ट्रपति राज्य की सरकार की सम्मति से तय कर दे। ऐसे विषयों को राज्य की विधान-सभा के सम्मुख रखा जायगा और उसका निर्णय लिया जायगा। राष्ट्रपति कभी भी राज्य की विधान-सभा का परामर्श पाने पर आज्ञा निकाल कर उपरोक्त विषयों सम्बन्धी अतिरिक्त उपबन्ध समाप्त कर सकता है या कम कर सकता है।

बीसवाँ अध्याय

स्वायत्त राज्यों की न्यायपालिकाएँ

देश के वर्तमान उच्च न्यायालयों ने अपने आप को स्वाधीनता का गढ़ सिद्ध कर दिया है। **—एन. एम. जोशी**

पिछले दो अध्यायों में स्वायत्त राज्यों की कार्यपालिका और विधान-मंडलों के बारे में लिखा जा चुका है। अब इनकी न्यायपालिकाओं का विचार करते हैं। इन राज्यों के अन्तर्गत 'क' और 'ख' वर्ग के राज्य हैं। पहले 'क' वर्ग के राज्यों को लें।

'क' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका

उच्च न्यायालय—'क' वर्ग के राज्यों में से प्रत्येक में एक हाईकोर्ट या उच्च न्यायालय होगा। संविधान लागू होने से पहले जिन राज्यों में उच्चन्यायालय थे, वे संविधान द्वारा उन राज्यों के उच्च-न्यायालय स्वीकार कर लिए गए हैं। प्रत्येक न्यायालय में एक मुख्य न्यायाधिपति और अन्य न्यायाधीश होंगे। न्यायाधीशों की अधिकतम संख्या राष्ट्रपति नियत करेगा।

न्यायाधीशों की नियुक्ति और वेतन—प्रत्येक न्यायाधीश की नियुक्ति राष्ट्रपति भारत के मुख्य न्यायाधिपति तथा राज्य के राज्यपाल के परामर्श से करेगा और राज्य के मुख्य न्यायाधिपति को छोड़कर अन्य न्यायाधीशों की नियुक्ति में राष्ट्रपति राज्य के मुख्य न्यायाधिपति का भी परामर्श लेगा।

उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने के लिए किसी व्यक्ति में निम्न-लिखित योग्यताएँ होना आवश्यक होंगी :—वह (१) भारत का नागरिक

हो, (२) कम से कम १० वर्ष तक भारत के राज्य-क्षेत्र में किसी न्यायिक पद पर रहा हो या राज्यों के उच्चन्यायालयों में कम से कम १० वर्ष तक एडवोकेट (अधिवक्ता) रह चुका हो।

प्रत्येक न्यायाधीश ६० वर्ष की आयु तक अपने पद पर रह सकेगा। वह इसके पूर्व भी राष्ट्रपति को लिखित त्याग-पत्र देकर अपने पद से हट सकता है। उसे उसके पद से हटाने का कार्य राष्ट्रपति कर सकता है; वह उसे उसके पद से उसी दशा में हटा सकेगा, जब संसद के दोनों सदन अलग-अलग अपने कुल सदस्यों के बहुमत तथा ससद के सदनों की बैठक में उपस्थित और मत देनेवाले सदस्यों के दो-तिहाई मत से, प्रमाणित अयोग्यता अथवा दुराचरण के लिए, उसे पदच्युत करने की प्रार्थना करें। संविधान लागू होने के उपरान्त जो व्यक्ति किसी भी उच्च-न्यायालय में न्यायाधीश रह चुका है, वह भारत के किसी भी न्यायालय या अधिकारी के संमुख वकालत न कर सकेगा। यह नियम इसलिए रखा गया है कि न्यायाधीश निष्पक्ष रहें और अपना कार्य स्वतन्त्रता-पूर्वक करें।

उच्च न्यायालयों के मुख्य न्यायाधीश को ४०००) तथा अन्य न्यायाधीशों को ३५००) मासिक वेतन मिलता है और उनके कार्य-काल के अन्दर इसमें किसी प्रकार की कमी नहीं की जा सकती।

न्यायाधीशों की शपथ—प्रत्येक न्यायाधीश पद ग्रहण करने से पूर्व उस राज्य के राज्यपाल के सामने अपने पद सम्बन्धी निम्नलिखित शपथ ग्रहण करेगा :—

'मैं... अमुक.......जो उच्चन्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति (या न्यायाधीश) नियुक्त हुआ हूँ, ईश्वर की शपथ लेता हूँ (या सत्य-निष्ठा से प्रतिज्ञा करता हूँ) कि विधि द्वारा स्थापित भारत के संविधान के प्रति श्रद्धा और निष्ठा रखूँगा, तथा मैं सम्यक् प्रकार से और श्रद्धा-पूर्वक तथा अपनी पूरी योग्यता, ज्ञान और विवेक से अपने पद के कर्तव्यों

को भय या पक्षपात, अनुराग या द्वेष के बिना पालन करूँगा तथा मैं संविधान और विधियों की मर्यादा बनाए रखूँगा।

उच्च न्यायालयों का अधिकार ; न्याय सम्बन्धी—प्रत्येक उच्चन्यायालय दो प्रकार के कार्य करता है—न्याय सम्बन्धी और प्रबन्ध सम्बन्धी। न्याय सम्बन्धी अधिकारों की दृष्टि से उसके दो भाग होते हैं:— प्रारम्भिक ('आरिजिनल') और अपील भाग। साधारणतया 'आरिजिनल' भाग का कार्य-क्षेत्र हाईकोर्ट वाले नगर की सीमा से बाहर नहीं होता। इस भाग में उस स्थान के ऐसे सब दीवानी मामले जाते हैं, जो 'स्माल काज कोर्ट' (लघुवाद न्यायालय या अदालत खफीफा) में नहीं जा सकते; तथा ऐसे सब फौजदारी मुकदमे जाते हैं, जिनका फैसला अन्य स्थानों में सेशन जज की अदालतों में हो। इसी भाग में फौजदारी मामलों के उन अपराधियों का विचार होता है, जिनका विचार मुफस्सिल अदालतों में नहीं हो सकता। हाईकोर्ट वादी प्रतिवादी की प्रार्थना पर, अथवा न्याय के विचार से, मुकदमों को सब-जजों की अदालतों से उठा कर अपने इस (आरिजिनल) भाग में ले सकते हैं।

अपील भाग में 'आरिजिनल' भाग की तथा मुफस्सिल अदालतों की अपील सुनी जाती है।

उच्चन्यायालयों के क्षेत्र और अधिकार विधि द्वारा निश्चित हैं। संसद उनके क्षेत्राधिकार में परिवर्तन कर सकती है, और उसे घटा या बढ़ा सकती है। ऊच्चन्यायालयों से सब प्रकार के मुकदमों की अन्तिम अपील उच्चतम न्यायालय में जाएगी। जो मुकदमे प्रारंभिक रूप में उच्चन्यायालय में ही आरंभ होंगे, उनकी अपील उसी न्यायालय में दो या अधिक न्यायाधीशों के सामने जायगी।

प्रबन्ध सम्बन्धी अधिकार ; अधीन न्यायालयों का नियंत्रण—उच्च न्यायालय को अपने अधीन सब न्यायालयों के निरीक्षण

का अधिकार है। इसके द्वारा वह (१) अपने अधीन अदालतों से किसी मामले के कागजों को मांग सकता है, (२) अदालती कार्य-पद्धति के नियम निश्चित कर सकता है, (३) अदालतों के रजिस्टर हिसाब आदि रखने के सम्बन्ध में नियम बना सकता है, (४) उसके एटार्नी, शेरिफ, क्लर्क आदि कर्मचारियों की फीस नियत कर सकता है। इसके अतिरिक्त उसे नागरिकों के मूल अधिकारों की रक्षा के लिए किसी भी व्यक्ति या अधिकारी को और सरकार को भी, आदेश देने का अधिकार है।

उच्च न्यायालय अपने अधिकार-क्षेत्र के अन्दर किसी मुकदमे को एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय में भेज सकता है। यदि उसे यह विश्वास हो जाय कि उसके अधीन न्यायालय में कोई ऐसा मामला पेश है, जिसमें कोई ऐसा कानूनी प्रश्न उपस्थित है जिसमें संविधान की व्याख्या की आवश्यकता है तो वह उस मुकदमे को अपने पास मंगाकर स्वयं निपटा सकता है, अथवा उस मामले में कानून का जो प्रश्न उलझा हुआ है, उस पर अपना निर्णय देकर उसी न्यायालय के पास, उस निर्णय के अनुसार उसे निपटाने के लिए वापिस भेज सकता है। उच्च न्यायालय को कठोर सजा देने का अधिकार है; अपने अधीन न्यायालयों द्वारा दी हुई फाँसी तथा कालेपानी की सजा पर उसकी स्वीकृति आश्यक है।

जिला-न्यायालयों और उनसे छोटी अदालतों पर उच्चन्यायालय का नियंत्रण रहेगा। इस नियंत्रण के अंतर्गत नियुक्ति, तरक्की, छुट्टी आदि देने के सभी अधिकार सम्मिलित हैं, जो न्याय-विभागीय कर्मचारियों के लिए प्रयुक्त किए जायंगे।

उच्च न्यायालयों का महत्वपूर्ण कार्य—भारत के उच्च न्यायालय नागरिक अधिकारों की रक्षा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य करते रहे हैं। अँगरेजों के शासन-काल में भी उन्होंने शासकों के कितने ही कार्यों को समय समय पर अवैध ठहराया। यद्यपि अधिकारियों ने अनेक

बार अपनी बात रखने के लिए दूसरे कानून-कायदे बना लिए, उच्च न्याया-लयों ने उनको कानून की सीमा में रखने का कार्य तो किया ही। इसी प्रकार उच्च न्यायालयों ने पुलिस-अधिकारियों के कार्यों तथा नीचे की अदालतों के अनुचित फैसलों की खरी आलोचना करने के साथ अनेक बार व्यापक सिद्धान्त स्थिर किए, और जनता के हितों की रक्षा की।

अब भारत स्वतन्त्र होगया है, तो भी न्यायपालिका को अपना उत्तरदायित्व पूरा करते रहना है, और हमारे उच्च-न्यायालय प्रायः उसे कर रहे हैं। हाल की (सन् १९५० के अन्तिम भाग की) बात है कि पंजाब हाईकोर्ट ने मास्टर तारासिंह को रिहा करने के साथ यह महत्वपूर्ण निर्णय दिया कि दण्ड-विधान की १२४ ए० और १५३ ए० धाराएँ भारतीय संविधान द्वारा दी गई नागरिक स्वाधीनता और मूलभूत अधिकारों की भावना के विपरीत हैं, अतः अवैध हैं। निर्णय का यह वाक्य भी ध्यान देने योग्य है कि पार्टियां आती हैं जाती हैं, गवर्नमेंटें बनती और बिगड़ती हैं, और उनके लिए प्रयत्न करना राजद्रोह या असद् भाव फैलाना नहीं। जब तक सरकार को पलटने के लिए सशस्त्र प्रयत्न नहीं किया जाता, तब तक न्यायालय का कोई कार्यवाही करना भाषण-स्वातन्त्र्य और मत-प्रकाशन के लिए दी गई स्वतन्त्रता के विरुद्ध है।

इससे स्पष्ट है कि नागरिक अधिकारों की रक्षा करने में न्यायालयों का कैसा महत्वपूर्ण भाग रहता है। यह ठीक है कि बहुत से आदमी खर्च तथा परेशानी के विचार से उच्च न्यायालय तक नहीं पहुँच पाते—और इस दृष्टि से सुधार की आवश्यकता है—यह निर्विवाद है कि उच्च न्यायालय अपने स्वतंत्र निर्णयों से शासकों पर अच्छा नियंत्रण रखते हैं, और नागरिकों का बड़ा हित साधन करते हैं।

जिला-न्यायाधीश—उच्च न्यायालय के अधीन, प्रायः हरेक जिले में एक जिला जज होता है। जिले में वह न्याय सम्बन्धी सब से बड़ा अधिकारी होता है। उसके न्यायालय में किसी भी रकम के दीवानी मुकदमे

आरम्भ हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त वह अपने अधीन न्यायालयों से आयी हुई दीवानी तथा फौजदारी दोनों प्रकार की अपीलें सुनता है।

दीवानी के केवल वही मुकदमें उसके पास अपील के लिए जाते हैं, जो पाँच हजार रुपये से अधिक के न हों; अधिक रकम के मामलों की अपीलें सब-जज (सिविल जज) के न्यायालय से सीधी उच्च न्यायालय में जाती है।

जिला-न्यायाधीश की नियुक्ति तरक्की आदि, उच्च न्यायालय के परामर्श से, राज्यपाल करेगा। जिलाधीश के पद पर ऐसा ही व्यक्ति नियुक्त किया जायगा, जो राज्य या संघ की नौकरी में न हो, और जो या तो सात वर्ष तक वकील या एडवोकेट (अधिवक्ता) रह चुका हो, या जिसकी इस पद के लिए न्यायालय सिफारिश करे।

स्मरण रहे कि 'जिला-न्यायाधीश' पदावली के अन्तर्गत नगर-व्यवहार न्यायालय (सिटी सिविल कोर्ट) का न्यायाधीश, अपर जिला-न्यायाधीश (एडिशनल डिस्ट्रिक्ट जज), संयुक्त जिला-न्यायाधीश, सहायक जिला-न्यायाधीश, लघुवाद न्यायालय (स्माल काज कोर्ट) का मुख्य न्यायाधीश, मुख्य प्रेसीडेन्सी-दंडाधिकारी (चीफ प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट), अपर मुख्य प्रेसीडेन्सी दंडाधिकारी, सत्र न्यायाधीश (सेशन जज) और सहायक सत्र न्यायाधीश भी हैं।

अन्य न्याय-विभागीय कर्मचारी—जिला-जज के पद को छोड़कर अन्य न्याय-विभागीय कर्मचारियों की नियुक्ति के सम्बन्ध में, उच्च न्यायालय और लोक सेवा आयोग (पबलिक सर्विस कमीशन) के परामर्श से, राज्यपाल नियम निर्माण करेगा। 'न्याय विभागीय कर्मचारियों' के अंतर्गत केवल वे पदाधिकारी आते हैं, जो जिला-न्यायाधीशों का या उससे छोटा पद ग्रहण करते हैं।

जिला-जज के अधीन, जिले में दीवानी और फौजदारी के न्यायालय होते हैं, इनका आगे क्रमशः विचार किया जाता है।

दीवानी अदालतें (व्यवहार न्यायालय)—जिला-जज की अदालत के नीचे सब-जज और उसके नीचे मुन्सिफ की अदालत होती है। सब-जज को उत्तर-प्रदेश में सिविल जज कहा जाता है। उसकी अदालत में किसी भी रकम के मुकदमे दायर हो सकते हैं। मुन्सिफ की अदालत में दो हजार रु० तक के, और विशेष अधिकार दिए जाने पर पाँच हजार रु० तक के, मुकदमे दायर हो सकते हैं। कुछ बड़े-बड़े जिलों में लघुवाद-न्यायालय (स्माल काज कोर्ट या अदालत खफीफा) भी हैं, जो छोटे-छोटे मामलों में जल्दी तथा कम खर्च से अन्तिम निर्णय सुना देती हैं। प्रायः इनके फैसलों की अपील नहीं होती।

फौजदारी अदालतें (दंड-न्यायालय)—हरेक जिले में या कुछ जिलों के एक समूह में, एक 'सेशन्स कोर्ट' रहता है। इसका प्रधान भी जिला-जज ही होता है, जो फौजदारी के अधिकार रखने से, सेशन जज का काम करता है। उसे अन्य सहायक सेशन-जजों से इस काम में सहायता मिल सकती है। सेशन जज की अदालत, अपने क्षेत्र (जिले या जिला-समूह) में सबसे ऊँची फौजदारी अदालत है। उसमें उससे नीचे की फौजदारी अदालतों की अपील होती है। सेशन जज मृत्यु-दंड भी दे सकता है, पर ऐसा दंड दिए जाने से पूर्व उसकी पुष्टि राज्य के उच्च न्यायालय द्वारा होनी चाहिए। इसकी अदालत में फैसला जूरी या असेसरों की सहायता से होता है। असेसर जज को अपनी सम्मति पर चलने के लिए बाध्य नहीं कर सकते।

सेशन जज के नीचे मजिस्ट्रेट रहते हैं। बम्बई, कलकत्ता, और मदरास में 'प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट', छावनियों में 'छावनी मजिस्ट्रेट', एवं कुछ नगरों और कस्बों में 'आनरेरी' अर्थात् अवैतनिक मजिस्ट्रेट, और पहले, दूसरे, या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट रहते हैं। आनरेरी मजिस्ट्रेटों का पद अब कई स्थानों में तोड़ दिया गया है। प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेटों तथा अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेटों को दो साल तक की कैद और एक हजार रुपए

तक का जुर्माना करने का अधिकार होता है। दूसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट छः मास तक की कैद और दो सौ रुपए तक जुर्माना कर सकते हैं। तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट एक मास तक की कैद और पचास रुपये तक का जुर्माना कर सकते हैं।

दूसरे और तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के फैसले के विरुद्ध, जिला-मजिस्ट्रेट के यहाँ अपील हो सकती है; और अव्वल दर्जे के मजिस्ट्रेट के फैसले की अपील सेशन्सकोर्ट में चल सकती है। जिन मनुष्यों को मुकदमे की प्रारम्भिक दशा में सेशन्स कोर्ट ने दोषी ठहराया हो, उनकी अपील उस राज्य के उच्च न्यायालय में हो सकती है।

रेवन्यू कोर्ट—राजस्व या मालगुजारी सम्बन्धी सब बातों का फैसला करने के लिए कहीं-कहीं रेवन्यू कोर्ट, और कहीं-कहीं सेटलमेंट (बन्दोबस्त) कमिश्नर हैं। इनके अधीन कमिश्नर, कलेक्टर, तहसीलदार आदि रहते हैं, जिन्हें लगान, मालगुजारी और आबपाशी आदि के मामलों का फैसला करने का निर्धारित अधिकार है।

पंचायतें

इनका संगठन आदि दूसरे अध्याय में बताया गया है। यहाँ इनकी केवल न्याय सम्बन्धी बातों का विचार करना है। पंचायती अदालतों को कुछ छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी मामलों का फैसला करने का अधिकार है। इनमें प्रायः पाँच या अधिक सदस्य होते हैं, उनमें एक सरपंच होता है। इनमें पेश होनेवाले मुकदमों में किसी की ओर से कोई वकील पैरवी नहीं कर सकता। ये वादी-प्रतिवादी से कुछ फीस ले सकती हैं। इनके द्वारा फैसला कराने में बिलकुल थोड़ा खर्च होता है और इनके फैसलों की अपील भी नहीं होती। ये अपराधियों पर कुछ जुर्माना कर सकती हैं, इन्हें किसी को कैद करने का अधिकार नहीं होता।

इनका संगठन; उत्तरप्रदेश का उदाहरण—पंचायतों के कार्य को स्पष्ट करने के विचार से यहाँ पर उत्तर प्रदेश का उदाहरण

दिया जा रहा है। अन्य राज्यों की पंचायतों सम्बन्धी स्थिति इस से मिलती-जुलती है। इस राज्य में साधारणतया तीन से लेकर पाँच गांवों तक के क्षेत्र का एक सर्कल होता है। प्रत्येक सर्कल में एक पंचायती अदालत स्थापित होती है। किसी क्षेत्र की प्रत्येक ग्राम-सभा उस क्षेत्र की पंचायती अदालत के लिए निर्धारित योग्यता वाले प्रौढ़ आयु के पांच-पांच पंच चुनती है, जो आसानी से हिन्दी पढ़-लिख सकते हों। उनका चुनाव तीन साल के लिए होता है। उस क्षेत्र की सब ग्राम-सभाओं के इस प्रकार चुने हुए पंचों का पंच-मंडल ('पेनल') होता है। सब पंच अपने में से एक व्यक्ति को सरपंच चुनते हैं। सरपंच वही व्यक्ति चुना जाता है, जिसमें कार्यवाही लिखने की योग्यता हो।

सरपंच हरेक मुकद्दमे के लिए पंच-मंडल में से पांच पंचों का एक बेंच नियुक्त करता है, उसमें कम-से-कम एक पंच ऐसा होता है, जो गवाही और कार्यवाही लिख सके। प्रत्येक बेंच के पंचों में एक-एक पंच गांव-सभा के ऐसे इलाकों का रहनेवाला होता है, जिसमें वादी और प्रतिवादी रहते हैं।

पंचायती अदालत के अधिकार—पंचायती अदालतों को दीवानी, फौजदारी तथा माल के निर्धारित अधिकार हैं। दावे लिखित या जबानी हो सकते हैं। पंचायती अदालत के फैसले की अपील नहीं होती। परन्तु यदि किसी मामले में अन्याय हो तो उसकी निगरानी हो सकती है—दीवानी के मामलों की निगरानी मुन्सिफ के यहां, माल के मामलों की निगरानी हाकिम-परगना-माल के यहां, और फौजदारी के मामलों की निगरानी हाकिम परगना फौजदारी के यहां होती है। यदि कोई गवाह सम्मन तामील होने पर हाजिर न हो तो उस पर मुकदमा चलाया जा सकता है और २५) तक का जमानती वारन्ट भी जारी हो सकता है। पंचायती अदालत को दीवानी के १००) तक की मालियत के मुकदमे का फैसला करने का अधिकार होता है। सरकार इस

अधिकार को ५००) तक बढ़ा सकती है। अदालत १००) तक के दावे जो चल सम्पत्ति या उसके मूल्य या उसकी हानि के सम्बन्ध में हों, या मवेशियों द्वारा की गई क्षति की पूर्ति के लिए हों, कर सकती है। परन्तु वह साझेदारी के, वसीयत या गैर-वसीयत जायदाद के, सरकारी कर्मचारियों के विरुद्ध, नाबालिग की ओर से या उसके विरुद्ध, या कब्जा-आराजी के दावे नहीं सुन सकती।

फौजदारी के कुछ मुकदमों के उदाहरण ये हैं:—सार्वजनिक मार्ग पर लड़ाई, सम्मन तामील न करना या उल्लघंन करना, अश्लील क्रिया या गीत, मारपीट, हमला, किसी को बन्द करने के लिए हमला, जबरदस्ती बेगार, ५०) से कम मूल्य की चोरी, भूमि या मकान में अनधिकार-प्रवेश या अधिकार कर लेना, धमकी, स्त्री की लज्जा-अपहरण करने की चेष्टा आदि। जुर्माने में अदालत गदी का खर्चा दिला सकती है और क्षति-पूर्ति भी दिला सकती है। यदि अदालत को विश्वास हो जाय कि दावा निरर्थक, झूठा या केवल परेशान करने को किया गया है तो वह अभियुक्त को वादी से मुआवजा दिला सकती है, जो ५) से अधिक न हो। यदि अदालत की राय में कोई मुकदमा ऐसा हो जिसे सुनने का उसे अधिकार नहीं है, अथवा जिसमें वह अपराधी को उचित दंड नहीं दे सकती तो वह उस मुकदमे के वादी को उसका दावा वापिस कर देती है, ताकि वह उसे किसी मजिस्ट्रेट के सामने पेश करे। यदि अदालत के सरपंच का ऐसा विश्वास हो कि किसी व्यक्ति की ओर से शान्तिभंग की जाने की आशंका है तो जांच के बाद पंचायत उस व्यक्ति से १००) तक की जमानत मुचलका, १५ दिन तक के लिए, ले सकती है। पंचायती अदालत को कैद की सजा देने का अधिकार नहीं है; वह केवल १००) तक जुर्माना कर सकती है।

विशेष वक्तव्य—भारत के विविध राज्यों से जमींदारी प्रथा हट रही है; इससे जमींदारों और किसानों के बीच होनेवाले मुकदमे बन्द

हो जायँगे। पंचायतों के विस्तार से भी मुकदमेबाजी घटेगी। नागरिकों में सहयोग का भाव बढ़ने से इस दिशा में अच्छी प्रगति होगी।

'ख' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका

'ख' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका 'क' वर्ग के राज्यों की न्यायपालिका की ही तरह होगी। दोनों के उच्च न्यायालयों के कार्य और अधिकार लगभग समान होंगे; अन्तर यह होगा कि 'क' वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के न्यायाधीशों का वेतन संविधान द्वारा निश्चित किया गया है, किन्तु 'ख' वर्ग के राज्यों के उच्चन्यायालयों के न्यायाधीशों का वेतन राष्ट्रपति राजप्रमुखों के परामर्श से नियत करेगा। इन राज्यों के न्यायाधीशों के भत्ते, पेन्शन आदि के नियम संसद विधि द्वारा निश्चित करेगी और जब तक वह ऐसा कोई निश्चय न करे, तब तक राष्ट्रपति राजप्रमुख के परामर्श से निश्चित करेगा।

× × ×

कुछ विचारणीय बातें—न्यायपालिका को निस्पक्ष तो होना ही चाहिए, इसके अतिरिक्त १—न्याय प्राप्त करना ऐसा खर्चीला, और कष्ट-साध्य न हो कि वह सर्वसाधारण की पहुँच से बाहर हो। वह काफी सस्ता होना चाहिए। २—न्यायिक कार्यवाही में बहुत अधिक समय लगने से अनेक बार उसका उद्देश्य ही नष्ट हो जाता है। इस लिए यह कार्य जल्दी होने की व्यवस्था होनी चाहिए। ३—अपराध को केवल कानून की दृष्टि ही नहीं, मनोविज्ञान और समाज-शास्त्र की दृष्टि से देखा जाना चाहिए। आखिर, कानून भी लोक-हित के लिए ही है। इस सम्बन्ध में हमने विस्तार पूर्वक विचार अपनी 'अपराध-चिकित्सा' पुस्तक में किया है।

———

इक्कीसवाँ अध्याय

स्वायत्त राज्यों का संघ से सम्बन्ध

भारतीय संविधान की प्रवृत्ति शक्तियों का केन्द्रीकरण करने की ओर है। वित्तीय अवस्था उसके अनुकूल है। समय की गति और भारत की अखंडता भी यही अपेक्षा रखती है। राज्यों को केन्द्र के दान पर निर्भर बना दिया है—यह सोचना बताता है कि हम सर्व-प्रथम अपने को भारतीय नहीं मानते।

—अवनीन्द्रकुमार विद्यालंकार

संघात्मक शासन-प्रणाली वाले देश में संघ-सरकार और राज्यों की सरकार के अधिकार बंटे हुए होते हैं। उनके आपस के सम्बन्ध अधिकार-विभाजन के आधार पर होते हैं। संघ और राज्यों के सम्बन्ध तीन प्रकार के हैं :—

१—विधायी सम्बन्ध,

२—शासकीय सम्बन्ध,

३—न्यायिक सम्बन्ध,

४—वित्तीय सम्बन्ध,

इन पर क्रमशः विचार किया जाता है।

विधायी सम्बन्ध

संघीय संविधान में विधि-निर्माण सम्बन्धी अधिकारों को स्पष्ट रूप से संघ और राज्यों के बीच बाँट दिया जाता है। संविधान द्वारा यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि किन-किन विषयों पर संघ सरकार विधि-निर्माण करेगी और किन-किन विषयों पर राज्यों की सरकार। साधारणतया इन अधिकारों के विभाजन की दो व्यवस्था अपनायी जाती हैं। पहली व्यवस्था

में कुछ विशेष अधिकार संघ को दे दिए जाते हैं और शेष विषयों पर राज्यों की सरकार विधि बनाने की अधिकारी होती है। दूसरी व्यवस्था के अन्तर्गत कुछ निश्चित विषयों पर विधि बनाने का अधिकार राज्यों को, और शेष सब विषयों पर संघ को होता है। भारत में, अधिकांश में दूसरी व्यवस्था अपनायी गयी है। यहाँ शक्ति-वितरण में इस बात का ध्यान रखा गया है कि जो विषय सम्पूर्ण भारत के लिए महत्व के हैं, वे संघ-सूची में दिए गए हैं; जिन विषयों का महत्व केवल प्रादेशिक है, वे राज्य-सूची के अन्तर्गत किए गए हैं। जो विषय दोनों के महत्व के हैं, या जो वैसे तो प्रादेशिक महत्व के हैं, परन्तु जिनके सम्बन्ध में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि विभिन्न राज्यों में उनकी व्यवस्था सार्वजनिक दृष्टि से एक-सी हो, वे समवर्ती सूची में रखे गए हैं। जो विषय इन सूचियों में नहीं आये हैं, उन्हें अवशिष्ट विषय कहा गया है, और वे संघ के अधिकार-क्षेत्र में आते हैं। उन पर विधि-निर्माण करने का अधिकार संसद को है।

उपर्युक्त तीनों सूचियों का परिचय पहले दिया जा चुका है। संघ-सूची में ९७, राज्य-सूची में ६६ और समवर्ती सूची में ४७ विषय हैं। इन बड़ी बड़ी संख्याओं से यह स्पष्ट है कि इन सूचियों का निर्माण बहुत सूक्ष्म दृष्टि से किया गया है। स्मरण रहे कि राज्यों में से केवल 'क' और 'ख' वर्ग वालों को अर्थात् स्वायत्त राज्यों को ही कानून बनाने का अधिकार है। राष्ट्रपति द्वारा संकटकालीन स्थिति की घोषणा की जाने पर राज्य-सूची तथा समवर्ती सूची के विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संसद को कहाँ तक प्राप्त हो जाता है, यह पहले बताया जा चुका है। निदान, कानून-निर्माण में संसद की सत्ता सर्वोपरि है।

शासकीय सम्बंध

संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि राज्य अपनी कार्यपालिका शक्ति का प्रयोग इस भांति करें कि संसद की विधियों का, तथा संसद द्वारा निर्मित जो विधि उस राज्य में लागू हों—उनका, उचित रीति से पालन हो

सके और उसके कारण संघ की कार्यपालिका शक्ति के प्रयोग में किसी प्रकार का व्याघात या बाधा उपस्थित न हो। संघ इस सम्बन्ध में राज्यों को आवश्यक आदेश दे सकेगा। वह राष्ट्रीय महत्व के आवागमन के साधनों के निर्माण तथा उनकी रक्षा करने के लिए और राज्य की सीमाओं के अन्दर रेलों की रक्षा के लिये भी राज्यों को आवश्यक निर्देश दे सकेगा। इन निर्देशों के पालन में राज्य को जो अतिरिक्त व्यय करना पड़ेगा, वह संघीय सरकार देगी।

राष्ट्रपति, राज्य की सरकार की अनुमति से और संसद् विधि बनाकर राज्य के कर्मचारियों को संघीय सरकार के किसी भी काम को करने का आदेश दे सकती है। इस प्रकार के आदेशों के पालन में राज्य को जो भी अतिरिक्त धन-व्यय करना होगा उसे संघ की सरकार देगी।

रियासतों के पास संविधान आरंभ होने से पहले जो सेनाएँ थीं, वे उनके पास उस समय तक बनी रहेंगी, जब तक संसद् विधि द्वारा उनकी कोई दूसरी व्यवस्था न कर दे। ऐसी सभी सेनाएँ भारतीय सेना का अंग समझी जावेंगी, उन पर संघ सरकार का नियंत्रण रहेगा।

संसद् को अन्तर्राज्यिक नदियों या नदी की घाटियों के सम्बन्ध में उठनेवाले झगड़ों को निपटाने के लिए विधि बनाने का अधिकार है। वह चाहे तो विधि बनाकर उच्चतम न्यायालय और अन्य न्यायालयों को ऐसे झगड़ों के विषय में निर्णय देने से अलग कर सकती है।

यदि विभिन्न राज्यों के मध्य अथवा राज्यों और संघ के मध्य ऐसे विषयों में कोई झगड़े उठें, जिनमें सामान्य हित हो, तो राष्ट्रपति को उनकी जांच करने तथा उन पर सिफारिश करने के लिए एक अन्तर्राज्यिक परिषद बनाने का अधिकार है।

राज्यों को जो निर्देश संघ की ओर से समय-समय पर दिए जायंगे, उनका पालन यदि समुचित रीति से नहीं हुआ तो राष्ट्रपति इसका अर्थ

यह समझेगा कि राज्य में वैधानिक शासन असफल हो गया है और वह संकटकालीन घोषणा द्वारा राज्य के प्रशासन को अपने हाथ में लेगा।

इस भांति यह प्रगट ही है कि स्वायत्त राज्यों को अपने क्षेत्र में पूर्ण अधिकार होते हुए भी संघ सरकार को राज्यों के प्रशासन-क्षेत्र में हस्तक्षेप करने के अवसर हैं। 'ख' वर्ग के राज्यों पर संविधान लागू होने के १० वर्ष पर्यन्त संघ-सरकार का प्रशासकीय विषयों में नियंत्रण रहेगा; केन्द्र द्वारा शासित प्रदेशों का प्रशासन तो वह स्वयं करेगी ही। इस प्रकार संघ की कार्यपालिका शक्ति की प्रधानता स्पष्ट है।

न्यायिक सम्बन्ध

संघ तथा प्रत्येक राज्य के सार्वजनिक कार्यों, लेख-पत्रों तथा न्याय सम्बन्धी कार्रवाइयों को भारत के समस्त राज्य-क्षेत्र में पूर्ण मान्यता प्राप्त होगी। इनके प्रमाणित करने की रीति और शर्तों का, तथा इनके प्रभाव का निश्चय संसद के कानून द्वारा किया जायगा। भारत के किसी भी राज्य के दीवानी न्यायलयों के अन्तिम निर्णयों या आदेशों पर देश भर में अमल कराया जा सकेगा।

वित्तीय सम्बन्ध

अब संघ और राज्य के वित्तीय और धन विषयक सम्बन्धों को लें। इस प्रसंग में संचित निधि और आकस्मिक निधि का आशय जान लेना चाहिए।

संचित और आकस्मिक निधि—भारत सरकार की जो आय होगी या वह जो ऋण लेगी वह, भारत की संचित निधि होगी। इसी प्रकार किसी राज्य की सरकार की आमदनी और कर्ज की रकमें उस राज्य की संचित निधि होगी।

[संघ-सरकार अथवा राज्य-सरकार द्वारा प्राप्त अन्य सब रकमें क्रमशः

भारत के या राज्य के लोक-लेखों (सार्वजनिक हिसाब) में जमा की जायँगी ।]

संचित निधि से जो द्रव्य खर्च किया जायगा, वह जन-प्रतिनिधियों (विधान-मंडल) की स्वीकृति से ही किया जायगा ।

यदि कभी संघ या राज्य को ऐसे समय कुछ व्यय तुरन्त ही खर्च करने की आवश्यकता हो, जब संसद या विधान-सभा का अधिवेशन न हो रहा हो तो उसके लिए यह व्यवस्था की गयी है कि संसद या राज्यों के विधानमंडल विधि द्वारा 'आकस्मिक निधि' की स्थापना कर सकेंगे । भारत की आकस्मिक निथि और राज्यों की आकस्मिक-निधि अलग-अलग होगी । ये निधियाँ राष्ट्रपति, राज्यपाल और राज्यप्रमुख के हाथ में रहेंगी । इन्हें अधिकार होगा कि भूकम्प, बाढ़ या अकाल आदि के आकस्मिक कार्यों के लिए इस धन-राशि में से खर्च करने की मंजूरी दें ।

आय के समस्त साधन केन्द्र और स्वायत्त राज्यों के बीच में बाँट दिए गए हैं । राज्यों को जो आय के साधन दिए हैं, उनकी आय उन्हीं के पास रहेगी, परन्तु संघ को जो साधन दिए गए हैं, उनमें से कुछ की कुल आय या उसका निश्चित भाग राज्यों को दिया जायगा या दिया जा सकेगा ।

संघ सरकार की आय के साधन—संघ सरकार की आय के मुख्य-मुख्य साधन निम्नलिखित हैं—आयकर; (शराब-अफीम, भाँग आदि मादक द्रव्यों को छोड़कर) देश में उत्पन्न होनेवाली तम्बाकू तथा अन्य वस्तुओं पर उत्पत्ति कर; आयत-निर्यातकर; निगम (कारपोरेशन) और कम्पनी कर; (कृषि-भूमि को छोड़कर अन्य) सम्पत्ति के उत्तराधिकार पर कर; रेल के किराये पर कर, तथा रेल या समुद्र या वायु से ले जाने वाली वस्तुओं या यात्रियों पर सीमा-कर; स्टाक एक्सचेंज पर स्टाम्प-ड्यूटी ।

स्वायत्त राज्यों की आय के मुख्य-मुख्य साधन—राज्यों को जो आय के साधन दिए गए हैं उनमें से मुख्य-मुख्य ये हैं—मालगुजारी;

कृषि-आय पर कर; कृषि-भूमि के उत्तराधिकार पर कर; कृषि-भूमि पर सम्पत्ति कर; भूमि और भवनों पर कर; खनिज अधिकार पर कर; मानव उपयोग के लिए बनाई जाने वाली शराब, अफीम, भांग तथा अन्य मादक द्रव्यों पर कर; किसी स्थानीय क्षेत्र में प्रवेश करने वाली विक्रय-योग्य वस्तुओं पर कर; विद्युत शक्ति के उपभोग या विक्रय पर कर, समाचार-पत्रों को छोड़कर अन्य वस्तुओं के क्रय-विक्रय पर कर; समाचार-पत्रों में प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों को छोड़कर अन्य विज्ञापनों पर कर; सड़कों तथा अन्तर्देशीय जलपथों पर ले जाये जाने वाले यात्रियों तथा वस्तुओं पर कर; सवारियों, पशुओं और नौकाओं पर कर; वृत्तियों, व्यापारों, आजीविकाओं और नौकरियों पर कर; पथ, कर ('टोल'), मुद्रांक-शुल्क, आय-कर तथा अन्य करों की आमदनी में से संघ सरकार की ओर से मिलने वाले भाग आदि।

संघ तथा राज्यों में आय का वितरण—

१—निम्नलिखित कर संघ की ओर से लगाये जाँयगे, परन्तु उन्हें राज्य की सरकार वसूल करेगी और अपने लिए ही खर्च करेगी—मुद्रांक (स्टाम्प) शुल्क, तथा दवाइयों और शृंगार की वस्तुओं पर लगने वाला उत्पत्ति-कर।

२—निम्नलिखित कर संघ द्वारा लगाये जांयगे और वसूल किये जांयगे परन्तु इन मदों से प्राप्त समस्त आय संसद द्वारा निर्धारित विधि के अनुसार, जिन राज्यों में वे कर वसूल किए जांयगे, उन्हीं में बांट दी जायगी—(१) कृषि-सम्पत्ति को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर उत्तराधिकार कर; (२) कृषि-सम्पत्ति को छोड़कर अन्य सम्पत्ति पर कर (३) रेल, समुद्र तथा वायुमार्ग से ले जाये जाने वाले यात्रियों तथा वस्तुओं पर सीमा-कर (४) रेल किराये पर कर (५) श्रेष्ठिचत्वर (स्टाक ऐक्सचेंज) और वादा-बाजार पर कर (६) समाचारपत्रों के क्रय-विक्रय पर तथा उनमें प्रकाशित होने वाले विज्ञापनों पर कर।

३—कृषि-आय को छोड़ कर अन्य आय पर कर संघ-सरकार लगायेगी और वसूल करेगी परन्तु उससे होने वाली आमदनी को राष्ट्रपति निश्चित विधि द्वारा स्वयत्त राज्यों और संघ के बीच वितरण करेगा।

[केन्द्र द्वारा प्रशासित राज्यों से प्राप्त आमदनी संघ की ही होगी और उसका कोई विभाजन नहीं किया जायगा।]

अनुसूचित तथा आदिम जातियों के हितार्थ संघ सरकार द्वारा अनुमोदित योजनाओं पर राज्यों का जो व्यय होगा उसे संघ सरकार देगी। इसी भांति आसाम के स्वायत्त जिलों के शासन की उन्नति के लिए जो व्यय होगा उसे भी संघ-सरकार देगी। इसके अतिरिक्त आसाम के स्वायत्त जिलों के शासन में पहले दो वर्षों की औसत आमदनी से अधिक जो व्यय होगा उसे भी संघ सरकार देगी।

संसद को अधिकार है कि वह सहायता के रूप में उन राज्यों को केन्द्रीय आय में से अनुदान देना स्वीकार करे, जिन्हें वह इस सहायता के योग्य समझे हो।

बंगाल, बिहार, आसाम और उड़ीसा ऐसे राज्य हैं, जिनसे पटसन या पटसन की बनी हुई चीजें निर्यात की जाती हैं। ऐसे निर्यात पर निर्यात-कर संघ द्वारा वसूल किया जावेगा। इस से जो आमदनी होगी, उसका एक भाग उन राज्यों को दिया जायगा ; इसका निर्णय राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशों के आधार पर करेगा। इस मद की रकमें उपर्युक्त राज्यों को दस वर्ष तक ही दी जावेंगी। यदि इससे पूर्व निर्यात-कर समाप्त कर दिया गया तो ये रकमें भी बन्द कर दी जावेंगी।

'ख' वर्ग के राज्यों से समझौते—उपरोक्त वित्त सम्बन्धी व्यवस्था समस्त स्वायत्त राज्यों के लिए है। परन्तु 'ख' वर्ग के राज्यों के संबंध में संविधान ने प्रथम दस वर्ष के लिए संघ सरकार को निम्नलिखित विषयों में समझौता करने का अधिकार दिया है :—

[१] उस राज्य में संघ-सरकार द्वारा लगाये जानेवाले किसी कर को लगाना, उसे वसूल करना और उससे होने वाली आमदनी का वितरण।

[२] यदि किसी ऐसे राज्य की आय का कोई साधन संघ-सरकार को मिल गया है तो उससे होने वाली हानि की पूर्ति के लिए संघ की ओर से आर्थिक सहायता।

[३] उस राज्य की ओर से राज्यों के निजी खर्च के लिए संघ को दिया जाने वाला धन।

राष्ट्रपति को अधिकार है कि यदि वित्त-आयोग सिफारिश करे कि यह व्यवस्था आवश्यक नहीं है तो वह दस वर्ष से पहले भी (पाँच वर्ष के बाद) उस समझौते में परिवर्तन कर दे या उसे समाप्त कर दे।

वित्त-आयोग—संविधान आरंभ होने के दो वर्ष के अन्दर और उसके पश्चात प्रति पाँच वर्ष के बाद राष्ट्रपति एक वित्त-आयोग की नियुक्ति करेगा। उसमें एक सभापति और चार सदस्य रहेंगे। सदस्यों की योग्यता संसद निश्चित करेगी। आयोग का कार्य राष्ट्रपति के संमुख निम्नलिखित बातों के संबंध में सिफारिश करना है [१] संघ तथा राज्यों के बीच वितरण योग्य करों की आमदनी का वितरण [२] संघ द्वारा राज्यों को सहायता देने के सिद्धान्त [३] 'ख' वर्ग के राज्य के साथ किए गए आर्थिक समझौतों में परिवर्तन तथा [४] अन्य कोई ऐसा अर्थ सम्बन्धी विषय जिसके सम्बन्ध में राष्ट्रपति उससे परामर्श चाहे।

राष्ट्रपति वित्त-आयोग की सिफारिशें तथा उन सिफारिशों के आधार पर किए हुए कामों का विवरण संसद के सामने प्रस्तुत करेगा।

कुछ उपबंध—संविधान द्वारा यह निश्चित कर दिया गया है कि संघ और राज्यों की संपत्ति पर तथा उसकी बिक्री और खरीद पर एवं राजाओं को दी जाने वाली धन-राशि पर कोई भी कर नहीं लगेगा।

संघ की सम्पत्ति, जब तक संसद कोई अन्य व्यवस्था न कर दे, स्वायत्त राज्य के समस्त करों से मुक्त रहेगी। उसी भाँति स्वायत्त राज्यों की भी

संपत्ति संघ के कर से मुक्त होगी। परन्तु इससे संघ को स्वायत्त राज्य द्वारा संचालित किसी भी व्यापार पर कर लगाने में कोई बाधा उपस्थित न होगी, जब तक संसद उस व्यापार को सरकार के कार्यों में से ही एक न समझे।

स्वायत्त राज्यों की किसी भी विधि द्वारा किसी वस्तु की बिक्री या खरीद पर कर न लगाया जा सकेगा, यदि ऐसी बिक्री या खरीद [अ] उस राज्य के बाहर हुई हो, अथवा [आ] आयात-निर्यात के रूप में भारत में अथवा भारत से बाहर हुई हो। इसके साथ ही, कोई राज्य किसी वस्तु की खरीद या बिक्री पर कर न लगा सकेगा, यदि यह खरीद या बिक्री अन्तर्राज्यी व्यापार के सिलसिले में हुई हो। संसद विधि बनाकर इसमें परिवर्तन कर सकती है।

राज्य की ऐसी कोई भी विधि वैध न समझी जायगी जो किसी ऐसी वस्तु की खरीद या बिक्री पर कर लगाती हो, जो संसद द्वारा जनता के जीवन के लिए आवश्यक ठहरा दी गई हो। हाँ, ऐसी विधि उस दशा में वैध समझी जा सकेगी जब उस पर राष्ट्रपति की स्वीकृति प्राप्त हो जाय।

देशी रियासतों के राजाओं को समझौते के रूप में भारत सरकार द्वारा निजी खर्च की जो निश्चित कर-मुक्त धन-राशि देने का बचन दिया गया है, उस पर कोई भी कर नहीं लिया जायगा। यह धन-राशि भारत की संचित निधि से अनिवार्य रूप से दी जायगी, उस पर संसद का मत नहीं लिया जायगा।

संघ सरकार तथा राज्यों की सरकार का व्यय—संघ सरकार की व्यय की मुख्य-मुख्य मदें निम्नलिखित हैं—(१) थल, जल और नभ की सेनाओं पर व्यय (२) संघीय ऋण पर ब्याज (३) केन्द्रीय शासन व्यय (४) डाकखाना, तार, टेलीफोन (५) पेन्शन (६) कर्ज का भुगतान (७) राज्यों की सहायता (८) विकास की योजनाएँ (९) रेल।

राज्यों के खर्च की मुख्य मदें ये हैं—(१) पुलिस और जेल (२) शिक्षा (३) कृषि की उन्नति (४) सार्वजनिक स्वास्थ्य की रक्षा (५) स्थानीय

स्वराज्य (६) अस्पताल (७) राज्यों के सार्वजनिक ऋण का ब्याज (८) राज्य-शासन-व्यय आदि ।

ऋण सम्बन्धी व्यवस्था—संघ-सरकार को अधिकार है कि वह निर्धारित सीमाओं के अन्दर भारत की संचित निधि की जमानत पर ऋण ले ले । संघ सरकार राज्यों को ऋण दे सकती है और उसके ऋणों की गारन्टी भी दे सकती है । किन्तु जब तक किसी राज्य पर संघ-सरकार का ऋण हो या कोई ऐसा ऋण न चुक पाया हो, जिसकी जमानत संघ-सरकार ने दी हो, वह राज्य संघ-सरकार की स्वीकृति के बिना ऋण नहीं ले सकेगा।

विशेष वक्तव्य—राज्यों की आमदनी के साधन पर्याप्त और स्वतंत्र नहीं हैं, इसलिए उन्हें संघ की ओर से सहायता देने की व्यवस्था की गई है । इस व्यवस्था का कुछ क्षेत्रों में बहुत विरोध हुआ है । यह कहा जाता है कि राष्ट्र-निर्माण-कार्यों और विकास का उत्तरदायित्व राज्यों पर है, और जिन स्रोतों की आय बढ़ने वाली है, वे केन्द्र के अधीन हैं । परन्तु हम स्मरण रखें कि देश की आर्थिक अवस्था की यथेष्ट जांच हो जाने पर इस व्यवस्था में आवश्यक परिवर्तन आसानी से हो सकता है । फिर, वर्तमान परिस्थितियों में भारतीय संविधान की प्रवृत्ति केन्द्र को दृढ़ बनाने की ओर है, और वित्तीय व्यवस्था उसके अनुकूल ही है, जैसे कि विधायी, शासकीय और न्यायिक व्यवस्था उसके अनुकूल है ।

—:o:—

बाइसवाँ अध्याय

संघ सरकार द्वारा शासित राज्य

हमारे संविधान में कुछ ऐसी धाराएँ हैं, जो कुछ लोगों को आपत्तिजनक मालूम होती हैं। हमें यह मानना होगा कि दोष देश की परिस्थिति और जनता में है।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

पिछले चार अध्यायों में स्वायत्त राज्यों की शासनपद्धति का वर्णन किया गया। पर जैसा पहले कहा गया है, कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जो स्वायत राज्यों की श्रेणी में नहीं आते। यह बात अच्छी नहीं मालूम होती। इस पर आगे विचार किया जायगा। अस्तु, हमें यहाँ जिन राज्यों के शासन का विचार करना है, वे अभी दस हैं। उनमें से तीन (अजमेर, कुर्ग, और दिल्ली) तो पहले के 'चीफ कमिश्नरों के प्रांत' है, और निम्नलिखित राज्य पहले की रियासतें या उनके संघ हैं :—(१) भोपाल, (२) बिलासपुर, (३) हिमाचल प्रदेश और (४) विन्ध्य-प्रदेश, (५) मणिपुर, (६) त्रिपुरा और (७) कच्छ।

इन राज्यों का शासन—इन राज्यों का शासन राष्ट्रपति करेगा। उसे अधिकार है कि वह इन राज्यों में चीफ-कमिश्नर (मुख्य-आयुक्त) या उपराज्यपाल नियुक्त करे, या किसी पड़ोस के राज्य को शासन-भार सौंप दे। पड़ोस के राज्य को शासन-कार्य सौंपने से पूर्व राष्ट्रपति का कर्तव्य होगा कि वह पड़ोस के राज्य की सरकार से सम्मति ले ले और इस राज्य की जनता की इच्छा भी जान लें। जनता की इच्छा जानने के लिए वह जो भी तरीका उचित समझेगा, ग्रहण करेगा।

कानून-निर्माण—संसद को अधिकार है कि वह चीफ-कमिश्नर या उपराज्यपालों के राज्यों के लिए विधान-मंडल बनाए या किसी राज्य में विधान-मंडल हो तो उन्हें चालू रखे। ऐसे विधान मंडलों के कार्य, अधिकार और कार्य-प्रणाली को संसद ही निश्चित करेगी। उन राज्यों के विधान मंडलों का निर्माण निर्वाचन द्वारा अथवा नामजदगी द्वारा अथवा नामजदगी और निर्वाचन दोनों के द्वारा होगा। इसके अतिरिक्त संसद इन राज्यों के लिए मंत्री अथवा सलाहकारों की समिति का निर्माण करेगी।

इन राज्यों में से कुर्ग में पहले से ही विधान-परिषद है। जब तक संसद उसके अधिकार और कार्य आदि के सम्बन्ध में कुछ निश्चय नहीं करती, उसकी स्थिति और अधिकार वैसे ही रहेंगे, जैसे संविधान के पूर्व थे। जब तक राष्ट्रपति कोई निश्चित आदेश नहीं देगा, कुर्ग की राजस्व-संग्रह की पुरानी व्यवस्था ही रहेगी।

न्याय-व्यवस्था—संसद ही इन राज्यों के लिए उच्च न्यायालय बनाएगी या किसी मौजूदा उच्च न्यायालय को भी उस राज्य का उच्च न्यायालय घोषित कर देगी। इन राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में वे सब नियम और उपबन्ध लागू होंगे, जो 'क' वर्ग के राज्यों के उच्च न्यायालयों के सम्बन्ध में लागू होते हैं। जो उच्च न्यायालय इन राज्यों में से किसी राज्य के सम्बन्ध में संविधान लागू होने से पूर्व कार्य करते रहे हैं, वे वैसे ही कार्य करते रहेंगे।

लोकतंत्र और केन्द्र द्वारा शासन—इन राज्यों के सम्बन्ध में एक बात विशेष विचार करने की है। जब कि भारत लोकतंत्रात्मक गण-राज्य घोषित है, उसके किसी भाग को लोकतंत्री व्यवस्था से वंचित करना कैसे उचित कहा जा सकता है! जैसा ऊपर बताया गया है, वर्तमान अवस्था

में इस समय दस राज्य ऐसे हैं, जो स्वायत्त नहीं है; जिन्हें अपने शासन, कानून-निर्माण और न्याय-व्यवस्था के लिए साधारण अर्थात् शान्ति काल में भी केन्द्रीय सरकार के अधीन रहना पड़ता है। [कुर्ग में विधान-परिषद है, पर उसे विशेष अधिकार नहीं है]। यह ठीक है कि इन राज्यों के प्रतिनिधि संसद (लोकसभा और राज्य-परिषद) में हैं, परन्तु वही तो पर्याप्त नहीं है !

[इन राज्यों में विधान-सभाएँ न होने से यह प्रश्न उपस्थित होता है कि इनकी ओर से राज्य-परिषद में लिए जाने वाले प्रतिनिधियों के चुनाव की पद्धति क्या हो। दिसम्बर १९५० में कानून-मंत्री डा० अम्बेडकर ने संसद में कहा कि 'यदि इन राज्यों की स्थानीय संस्थाओं को निर्वाचन-क्षेत्र बनाया जाय तो वे काफी बड़े नहीं होते। इस लिए यह उचित समझा गया कि मताधिकार उन लोगों को भी दिया जाय जो हाई स्कूल अथवा उसकी बराबरी की किसी परीक्षा में उतीर्ण हो चुके हों। मनीपुर तथा त्रिपुरा में राज्य-परिषद् के चुनाव नहीं हो सकेंगे, क्योंकि वहां स्थानीय संस्थाएँ भी नहीं हैं, और न अधिक शिक्षित लोग ही हैं। त्रिपुरा आदिवासी क्षेत्र हैं और मनीपुर बहुत पिछड़ा है। वहाँ के प्रतिनिधि राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत किये जायंगे। 'ग' वर्ग के अन्य राज्यों का प्रतिनिधित्व निर्वाचन के द्वारा होगा।' संसद के अधिकांश सदस्यों ने केन्द्र द्वारा शासित राज्यों में निर्वाचित विधान-सभाएँ स्थापित करने की मांग की।]

सरकार की नीति—इस विषय में सरकार लोक-प्रतिनिधियों की भावनाओं से अपरिचित नहीं है, और उसकी नीति भी विरोधी नहीं है। इस वर्ष (१९५०) के आरम्भ में राष्ट्रपति के भाषण पर संसद में जो बहस हुई, उसका जवाब देते हुए उप-प्रधान मंत्री सरदार पटेल ने कहा था कि 'चीफ-कमिश्नरी-प्रदेशों के बारे में सरकार की नीति यह है कि वहां धीरे-धीरे शासन को उत्तरदायी बनाया जाय, ताकि लोग बोझ को ठीक तरह सम्हाल सकें और इन प्रदेशों में किसी किस्म की गड़बड़ न

होने पाये। यदि किसी चीफ-कमिश्नरी-प्रदेश में गड़बड़ होती है तो देश के दूसरे हिस्सों पर भी उसका असर पड़े बिना नहीं रह सकता। चीफ-कमिश्नरी-प्रदेशों की जनता को यह भरोसा रखना चाहिए कि उनकी मौजूदा स्थिति हमेशा कायम रहने वाली नहीं है, और जैसे-जैसे व्यक्तिगत कठिनाइयां दूर होती जायंगी, वैसे-वैसे उनके स्वशासन का मार्ग प्रशस्त होता जायगा। जहां तक विन्ध्य-प्रदेश * का ताल्लुक है, वहां की मौजूदा स्थिति के लिए वहां के कांग्रेसी-नेता ही बहुत हद तक जिम्मेदार हैं। यदि उन्होंने विवेक और समझदारी से काम लिया होता तो अन्य रियासती संघों की भांति विन्ध्य-प्रदेश भी लोकप्रिय शासन का उपभोग कर सकता था।'

कुछ ज्ञातव्य बातें—अस्तु, सरकार इन प्रदेशों की यह स्थिति अस्थायी मानती है, और यह आश्वासन देती है कि यथा-सम्भव शीघ्र ही इनके स्वशासन का मार्ग प्रशस्त होगा। इनमें से कुछ प्रदेशों के सम्बन्ध में कुछ उल्लेखनीय बातें आगे दी जाती हैं।

दिल्ली—सन् १९१२ से यह शहर ब्रिटिश भारत की राजधानी बना, तब से इसका महत्व बढ़ता गया है। पहले इसे पंजाब से अलग करके केन्द्रीय सरकार के अधीन किया गया और इसका शासन चीफ-कमिश्नर द्वारा कराया जाने लगा। यहां के नागरिकों ने यह व्यवस्था बदलवाने का बहुत प्रयत्न किया। सन् १९३० में इसका पृथक् प्रान्त बनाने की योजना बनी, जिसमें पंजाब का अम्बाला जिला और संयुक्तप्रान्त का मेरठ, आगरा आदि शामिल किया जाता। यह योजना अमल में नहीं आयी। पीछे सन् १९४७ में देश का विभाजन होने के समय, दिल्ली को स्वायत्त प्रान्त बनाने का आन्दोलन हुआ, पर संयुक्तप्रान्त और पंजाब दोनों ही की सरकारों के विरोध के कारण उसे सफलता न मिली। केन्द्रीय अधिकारी दिल्ली का प्रान्त बनाने के विरोधी थे (क्योंकि ऐसा होने से

---

* इसके विषय में आगे लिखा जायगा।

यह राजधानी का नगर उनके अधीन न रह कर एक प्रान्तीय सरकार के अधीन होजाता) तथापि वे यहां के निवासियों को स्वशासन में भाग देने के लिए सहमत थे। उनके आदेशानुसार, जून १६४६ में श्री के० एम० मुन्शी ने दिल्ली के शासन का एक ढांचा बनाया। उसकी मुख्य बातें ये थीं:—यहाँ एक लेफ्टिनेंट गवर्नर रहें और ३०–४० सदस्यों की विधान-सभा स्थापित की जाय। सभा के तीन प्रमुख सदस्यों का एक मंत्रिमंडल हो। लेफ्टिनेंट-गवर्नर शासन, कानून-निर्माण, न्याय, सार्वजनिक निर्माण-कार्य, और विश्वविद्यालय के बारे में भारत-सरकार का प्रतिनिधित्व करे। शेष बातें मंत्रिमंडल के अधीन हों, और समवर्ती सूची में रहें—अर्थात् उनके सम्बन्ध में दिल्ली की विधान-सभा और भारतीय पार्लिमेंट ये दोनों ही कानून बना सकें। विधान सभा के पास कानून बनाने का काम कम रहेगा, इस लिए वह दिल्ली कारपोरेशन के रूप में काम करे। मंत्रिमंडल को कर लगाने का अधिकार न हो। इस योजना से दिल्ली में न तो पूरा स्वायत्त शासन ही होता है, और न केन्द्रीय ही, अर्थात् दोहरा शासन होता है; फिर इससे खर्च भी काफी बढ़ता है, और उसका भार अकेला इस नगर के निवासियों से न उठने की दशा में वह भारत सरकार पर अर्थात् देश भर पर ही पड़ता है। अभी यह योजना अमल में नहीं आयी, और दिल्ली केन्द्र द्वारा शासित क्षेत्र बना हुआ है।

हाल में (दिसम्बर १६५० में) प्रधान मंत्री ने कहा था कि सरकार नयी दिल्ली को असाधारण नगर समझती है, जहां पर केवल अधिकारी वर्ग रहते हैं और कुछ लोगों को बहिर्देशीय अधिकार प्राप्त है। यह प्रधान-तया 'राजकीय नगर' है। साधारणतया प्रत्येक देश में ऐसे नगरों की व्यवस्था अन्य नगरों की अपेक्षा विभिन्न रूप से होती है, और हम लोग भी वैसा ही करने जा रहे हैं।'

अजमेर—अंगरेजों ने इसका शासन सन् १८१८ से अपने हाथ में लिया था। सन् १८२१ से १८७१ तक इस जिले का शासन संयुक्त-

प्रान्त के लेफ्टिनेंट गवर्नर द्वारा संचालित रहा; इस समय यहाँ के प्रबन्ध, कानून-निर्माण, न्याय, शिक्षा आदि की व्यवस्था संयुक्तप्रान्त के समान थी। बाद में आसपास की रियासतों पर नियंत्रण रखने के लिए यह भारत-सरकार के राजनैतिक विभाग द्वारा शासित होने लगा ; इस व्यवस्था में गवर्नर-जनरल का प्रतिनिधि ए०जी०जी० अपने पद की हैसियत से यहाँ का चीफ-कमिश्नर हुआ।* जनता का उस पर कोई नियंत्रण न था। राष्ट्रीय कार्यकर्ता बराबर इस क्षेत्र को स्वशासित प्रान्त बनाने का आन्दोलन करते रहे, पर कोई फल न निकला।

सन् १९२१ में श्री ई० एच० एस्वर्थ की अधीनता में नियुक्त कमेटी ने यही सिफारिश की कि इसे संयुक्तप्रान्त के साथ मिला दिया जाय। इसमें उस परिस्थिति को ध्यान में रखा गया था, जब कि देशी रियासतों का शासन-प्रबन्ध देश के शेष भागों से बिल्कुल अलग रखा जाता था। अब तो देश स्वाधीन है, और रियासतों को प्रान्तों के स्तर पर लाने का कार्यक्रम चल रहा है। अब राजस्थान भारत की एक स्वायत्त इकाई है, और अजमेर तो मानो उसका हृदय ही है। ऐसी दशा में इसे राजस्थान से अलग रखना उचित नहीं है। बीच में तो ऐसी आशा भी हो चली थी कि अजमेर राजस्थान में मिलनेवाला ही नहीं है, उसकी राजधानी भी बनने वाला है। उस बात को काफी समय हो गया, और राजधानी के लिए कई अन्य नामों का सुझाव आकर आखिर जयपुर को यह पद मिल गया। अस्तु, अब अजमेर प्रदेश जल्दी ही राजस्थान में मिल जाना चाहिए, जिससे यहाँ की जनता शासनिक तथा राजनैतिक अधिकार पाने के अतिरिक्त राजस्थान के विकास की योजनाओं में यथेष्ट भाग ले सके और समुचित लाभ उठा सके।

---

* सन् १९४० से इसका शासन सीधे गृह-विभाग द्वारा होने लगा ; उसी के द्वारा यहाँ के लिए चीफ-कमिश्नर की नियुक्ति होने लगी, जो गवर्नर जनरल के अधीन और उसके ही प्रति उत्तरदायी होता था।

विन्ध्य प्रदेश—यह संघ ४ अप्रेल १९४८ को, बघेलखंड और बुन्देलखंड की ३५ रियासतों को मिला कर 'ख' वर्ग का राज्य बनाया गया था, रीवाँ-नरेश इस के राजप्रमुख थे। कुछ समय बाद यहां राजनैतिक अशान्ति और कुव्यवस्था हो गयी। मंत्रिमंडल केन्द्रीय सरकार के प्रति उत्तरदायी था, जिसे अधिकार था कि अयोग्य मन्त्रिमंडल को भङ्ग कर दे और सारी व्यवस्था अपने हाथ में ले ले। इस अधिकार से केन्द्रीय सरकार ने यहां के मंत्रिमंडल को हटा कर १ जनवरी १९५० से इसे चीफ-कमिश्नर का प्रदेश बना दिया। दो मन्त्रियों पर भ्रष्टाचार के आरोप में मुकदमें चले।

जैसा कि वर्तमान काल में स्वभाविक ही है, जनता यहां की शासन-व्यवस्था से बहुत असंतुष्ट है। उसकी मांग है कि अनियंत्रित शासन का अन्त हो, विधान-सभा का चुनाव किया जाय, लोकप्रिय मन्त्रिमंडल की स्थापना हो, इस राज्य के जो भाग अन्य राज्यों में मिला दिए गए हैं वे फिर इस राज्य में जोड़े जायँ, और विन्ध्य-प्रदेश को 'ग' वर्ग से हटा कर पहले की तरह 'ख' वर्ग में रखा जाय। आशा है, उसकी मांग पूरी होने की व्यवस्था जल्दी की जायगी।

विशेष वक्तव्य—संघ सरकार द्वारा शासित अन्य राज्यों के सम्बन्ध में अलग-अलग विचार न कर हमें यहाँ यही कहना है कि इस समय विशेष परिस्थितियों के कारण, इन राज्यों का सघ सरकार द्वारा शासित होना भले ही आवश्यक समझा जाय, उनकी इस स्थिति का जितनी जल्दी अन्त होकर उनमें लोकतंत्री शासन की स्थापना हो उतना ही अच्छा है। उनके निवासियों को भी यह अनुभव करने को अवसर मिलना चाहिए कि हम अपनी शासन-व्यवस्था स्वयं करने लगे हैं; हमारी अपनी कार्यपालिका, विधान-सभा और न्यायपालिका है। इनमें से जिन राज्यों के आकार, क्षेत्रफल और आय आदि को इतना न बढ़ाया जा

सके कि वे स्वतंत्र इकाई बन जायँ, उन्हें उनके पास के ही किसी राज्य में मिलाने का विचार किया जाना चाहिए, जिससे उनके निवासी इसी प्रकार अपने स्वशासन के अधिकारों का उपयोग कर सकें।

× × ×

अन्दमान-निकोबार—पिछले पृष्ठों में 'क', 'ख' और 'ग' वर्ग के राज्यों की शासनपद्धति बतायी गयी है। भारतीय संघ के प्रदेशों का, इनके अतिरिक्त एक वर्ग और है—'घ' वर्ग। इस वर्ग के प्रदेशों को स्वतंत्र इकाई नहीं माना जाता। इनमें अन्दमान-निकोबार द्वीप-समूह तथा ऐसे अन्य क्षेत्र होंगे जिनका प्रशासन राष्ट्रपति चीफकमिश्नर या अपने किसी अन्य अधिकारी के द्वारा कराना चाहे। इस राज्य में कोई विधान-मण्डल नहीं होगा। राष्ट्रपति इस राज्य और अन्य क्षेत्रों के सम्बन्ध में ऐसे नियम निर्माण करेगा, जिससे वहाँ शान्ति और अच्छी सरकार की स्थापना हो। उसे अधिकार है कि वह संसद द्वारा बनाई विधियों में, और प्रचलित विधियों में जो इस राज्य पर लागू हों, संशोधन या परिवर्तन करदे।

इस क्षेत्र का नया रूप—इस क्षेत्र के विषय में सर्व साधारण की जानकारी बहुत कम रही है। भारतीय स्वाधीनता के पहले संग्राम सन् १८५७ से अँग्रेजों ने लम्बी सजा पाने वाले अपराधियों और राजनैतिक बंदियों को यहाँ भेजना शुरू कर उनको बहुत कष्ट दिये; विशेष जेलों का निर्माण कर इस उपजाऊ और सुरम्य द्वीप को जनता द्वारा 'कालापानी' नाम दिलवाया। लोग इसे पृथ्वी का नर्क समझने लगे। हमारे देश की आजादी के लिये लड़ने वाले बहुत से अज्ञात और ज्ञात शहीदों ने इस द्वीप पर अपने जीवन के बहुत से कष्ट-भरे दिन बिताए। म० गांधी के प्रयास से सन् १९२१ में यहाँ कैदी भेजे जाना बंद हुआ।

भारत के स्वाधीन होने पर इस क्षेत्र का भी कायाकल्प होना स्वभाविक

था। पंजाब और पश्चिमी बंगाल के शरणार्थी पुनर्वास सचिवालयों ने इन द्वीपों में एक खोज-मिशन भेजा तो मालूम हुआ कि पुनर्वास के लिए ये बहुत उपयुक्त हैं। इनकी कृषि-योग्य १६ लाख एकड़ भूमि में से अभी केवल सत्तर हजार एकड़ ही जोती जाती है। शेष का उपयोग बहुत आसानी से हो सकता है। ऐसा अनुमान है कि १७ हजार आबादी और २,५०८ वर्गमील क्षेत्रफल वाले इस प्रदेश में लगभग दस लाख आदमी अच्छी तरह बसाए जा सकते हैं। अपराधियों की बस्ती के गन्दे मकान तोड़कर सुन्दर स्वास्थ्यप्रद घर बनाए जा रहे हैं। सरकार यहां की राजधानी पोर्टब्लेअर और कलकत्ता तथा मद्रास के बीच में अच्छे और तेज यातायात का प्रबन्ध कर रही है।

आशा है, आवश्यक प्रबन्ध हो जाने पर यह क्षेत्र हमारी शरणार्थी समस्या को हल करने के अतिरिक्त बंगाल की खाड़ी में हिन्दुस्तान का मजबूत किला बन सकेगा और यहां रहने वाली हमारी ताकतवर नौ-सेना बंगाल की खाड़ी की रक्षा कर हिन्दुस्तान के पूर्वी भाग की रक्षा कर सकेगी।

तेइसवाँ अध्याय

आदिम-जाति-क्षेत्र

यह नहीं हो सकता कि आप तो आधुनिक जगत के नवीनतम साधनों और उपकरणों का भोग करें, और ये बेचारे आदिवासी उन सुख-साधनों से वंचित रहें।

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

निश्चय ही न तो मताधिकार, न धारा सभाएँ, न डालर और स्टर्लिंग क्षेत्र से आने वाली वस्तुएँ उनके लिए लुभावनी हैं। उनकी मांग तो केवल इतनी है कि क्यों न अब अधिक स्कूल, अस्पताल, पीने के पानी के कुएँ, सिंचाई के लिए अधिक नहरें और अधिक विद्युत शक्ति दी जाय।

—ठक्कर बापा

हमारी आदिम जातियाँ, इनकी घोर उपेक्षा—भारतीय जनता में हरिजन और आदिम जातियाँ ऐसी हैं, जो शिक्षा और आधुनिक सभ्यता में बहुत पिछड़ी हुई हैं। ये बहुत ही उपेक्षित रही हैं। हरिजनों की ओर तो फिर भी समाज का और नेताओं का ध्यान गया; वे अन्य लोगों के साथ गांवों और नगरों में रहते थे, इस लिए उनकी दशा सर्वसाधारण से छिपी नहीं रही। क्रमशः उनमें सुधार हुआ, चाहे उसकी गति मन्द ही रही। पर आदिम जातियों के बहुत से आदमी तो साधारण बस्तियों से दूर जंगलों और पहाड़ों में रहते हैं, जहां जाना आना बहुत ही कठिन है।

ब्रिटिश सरकार ने इनकी घोर उपेक्षा की; यही नहीं, उसने ईसाइयों को छोड़कर अन्य कार्यकर्ताओं का उनसे सम्पर्क नहीं होने दिया और उनके सुधार में तरह-तरह की बाधाएँ उपस्थित की। मांटफोर्ड सुधार (सन् १६१६) तथा प्रान्तीय स्वराज्य अधिनियम (सन् १६३५) से भी इन्हें कुछ राहत न मिली; उन्हें शेष भारतीयों जैसे भी अधिकार नहीं दिये गये। इनके अधिकांश निवास-स्थान वहिष्कृत या अपवर्जित (एक्स-क्लूडेड') और अर्द्ध-वहिष्कृत क्षेत्र ठहराए गए।

वर्तमान अवस्था—आदिम जातियों में लगभग ढाई करोड भारत-सन्तान की गणना है। संविधान में इन जातियों को 'अनुसूचित जन-जति' भी कहा गया है। इनकी अवस्था बहुत शोचनीय है। ये जन-जातियाँ अधिकांश में बिहार, उड़ीसा, आसाम, मध्यप्रदेश, मद्रास तथा राजस्थान में निवास करती हैं। इनकी कुल संख्या ३०० के लगभग है। ये प्रायः पहाड़ी एवं बन-प्रदेशों में गंवारू ढङ्ग से रहती हैं। कुछ आदमी शिकार करके, कुछ कृषि करके तथा कुछ शहरों के निकट होने पर मजदूरी आदि करके जीवन-निर्वाह कर लेते हैं। इन जातियों में सभ्यता का प्रचार करने तथा उन्हें राष्ट्रीय जीवन में समुचित स्थान देने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं हुआ है। ईसाई मिशनरियों ने जो कार्य किया वह खासकर अपने धर्म का प्रचार करने के लिए किया। हाँ, पिछले तीस साल से श्री ठक्कर वापा ने आदिवासियों की सेवा व उद्धार का प्रशंसनीय कार्य किया है; आप के तत्वावधान में देहली में इनकी उन्नति के लिए भारतीय आदिम जाति सेवक संघ की स्थापना भी हुई है। अब तो और भी कई संस्थाएँ इस दिशा में अच्छा कार्य कर रही है। इन जातियों तथा इनमें कार्य करनेवालों का, तथा जो काम हो रहा है, या होने की आवश्यकता है, उसका परिचय हमारी 'हमारी आदिम जातियाँ' नाम की पुस्तक में दिया गया है।

आदिम जातियाँ और नया संविधान—२६ जनवरी १९५० को भारत के 'सम्पूर्ण-प्रभुत्व-सम्पन्न-लोकतंत्रात्मक गणराज्य' का संविधान पास हो जाने से जहाँ जनता के नागरिक अधिकारों की घोषणा की गयी है, उससे आदिम जातियों के लोगों को भी बहुत राहत मिली है। भारतीय संविधान ने इनके लिए काफी संरक्षण दिये हैं; इन्हें अन्य देश-बंधुओं की समानता के स्तर पर लाने के लिए १० वर्ष की अवधि निश्चित की गई है।

संविधान में अनुसूचित जन-जातियों और अनुसूचित क्षेत्रों के शासन के लिए विशेष उपबन्धों की रचना की गयी है, ये समस्त उपबन्ध आसाम राज्य के अनुसूचित क्षेत्रों पर लागू नहीं होंगे।

अनुसूचित जन-जातियाँ और क्षेत्र—प्रत्येक राज्य की अनुसूचित जन-जाति और अनुसूचित क्षेत्र वे होंगे, जिन्हें राष्ट्रपति ऐसे होना घोषित करे। वह इस घोषणा में समय-समय पर परिवर्तन भी कर सकेगा। इस विषय में वह जो परिवर्तन करेगा वह केवल निम्नलिखित प्रकार के होंगे—(१) वह घोषणा कर सकता है कि किसी अनुसूचित क्षेत्र का कोई भाग अथवा संपूर्ण अनुसूचित क्षेत्र अब अनुसूचित नहीं रहा। (२) वह किसी भी अनुसूचित क्षेत्र की सीमाओं में परिवर्तन कर सकता है। (३) किसी नये राज्य की उत्पत्ति या किसी राज्य के संघ में सम्मिलित होने पर अथवा किसी राज्य की सीमा बदलने पर कि वह किसी ऐसे क्षेत्र को जो पहले राज्य का अंग नहीं था, अनुसूचित क्षेत्र घोषित कर सकेगा।

अनुसूचित क्षेत्रों का प्रशासन राज्य की कार्यपालिका के अंतर्गत रखा गया है और राज्य की कार्यपालिका इस सम्बन्ध में संघ की कार्यपालिका के नियंत्रण में रहेगी। राज्य के राज्यपाल या राजप्रमुख को इन क्षेत्रों में शान्ति और सुव्यवस्था रखने के लिए नियम बनाने का अधिकार होगा और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह संघ और राज्य की, इन क्षेत्रों

पर लगाने वाली विधियों में परिवर्तन कर सकेगा। ये नियम राष्ट्रपति के अनुमति के बगैर लागू न हो सकेंगे। संघ की कार्यपालिका को भी इन क्षेत्रों के प्रशासन के सम्बन्ध में विशेष निर्देष देने का अधिकार होगा, और राज्य का कर्तव्य होगा कि उन निर्देशों का पूर्णतः पालन करे। राज्यपाल या राजप्रमुख इन क्षेत्रों के सम्बन्ध में आदिम जाति मंत्रणा-परिषद से परामर्श लेकर ही नियम बनाएगा।

आदिम जाति मंत्रणा-परिषद्—प्रत्येक ऐसे राज्य में जिसमें अनुसूचित क्षेत्र हैं, एक 'आदिम जाति-मंत्रणा परिषद' होगी। राष्ट्रपति ऐसे राज्यों में भी ऐसी परिषद स्थापित कर सकेगा, जिनमें अनुसूचित जन-जातियाँ तो होंगी परन्तु अनुसूचित क्षेत्र नहीं होंगे। इस परिषद में २५ से अधिक सदस्य नहीं होंगे। इसके तीन-चौथाई सदस्य राज्य की विधान-सभा में अनुसूचित जन-जाति के प्रतिनिधि सदस्य होंगे। यदि अनुसूचित जन-जातियों के प्रतिनिधि विधान सभा में उतने नहीं होंगे, जितने कि आदिम जाति मंत्रणा परिषद के रिक्त स्थानों के पूर्ति कर सकें तो वे स्थान अन्य जन-जातियों के प्रतिनिधियों द्वारा भरे जावेंगे। इस परिषद का कार्य राज्य में आदिम जातियों के सुधार व जन-कल्याण सम्बन्धी ऐसे विषयों में परामर्श देना है, जिन्हें राज्यपाल या राजप्रमुख उसके पास भेजेगा। राज्यपाल या राजप्रमुख निम्नलिखित विषयों के लिए नियम बनायेगा (१) परिषद के सदस्यों की संख्या, उनकी नियुक्ति की पद्धति, और परिषद के अध्यक्ष की नियुक्ति की पद्धति तथा उसके अधिकारियों व कर्मचारियों की नियुक्ति। (२) परिषद के अधिकारियों की कार्य-विधि (३) इस सम्बन्ध की अन्य बातें।

संसद को अधिकार है कि वह उपर्युक्त उपबन्धों में परिवर्तन करदे।

आदिम जातियों की उन्नति की व्यवस्था— राष्ट्रपति को स्वायत्त राज्यों की आदिम जातियों एवं उनके क्षेत्रों की उन्नति के लिए

आदेश देने का अधिकार है। इन आदेशों के पालन में जो विशेष व्यय होगा, उसे संघ सरकार देगी। संघ सरकार इन क्षेत्रों की उन्नति के लिए विशेष योजना भी बनाएगी, जिससे कालान्तर में शासन की दृष्टि से ये क्षेत्र स्वायत्त राज्यों के समान स्तर पर आ जावें। इन योजनाओं में जो विशेष व्यय होगा वह संघ सरकार देगी। संघ सरकार आदिम जातियों के क्षेत्र वाले राज्यों की उन्नति के लिए विशेष अनुदान सहायता के रूप में प्रदान करेगी।

बिहार, मध्यप्रदेश और उड़ीसा के राज्यों की मंत्रिपरिषद में एक-एक मंत्री आदिम जातियों की उन्नति और देख-भाल के लिए रहेगा।

पिछड़े वर्गों के लिए आयोग—राष्ट्रपति कभी भी स्वायत्त राज्यों में आदिम जातियों की रक्षा की जांच तथा उनकी कठिनाइयों की जांच-पड़ताल करने के लिए एक कमीशन या आयोग नियुक्त करेगा। यह आयोग उनकी कठिनाइयों के निवारण तथा उनकी अवस्था में सुधार तथा तत्सम्बन्धी आर्थिक सहायता के लिए सिफारिशें करेगा। यह अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को देगा और वह उसे संसद के समक्ष अपने स्मृति-पत्र के साथ प्रस्तुत कराएगा, जिसमें वह रिपोर्ट के सम्बन्ध में की गई कार्यवाही का उल्लेख करेगा।

आसाम के अनुसूचित क्षेत्र का प्रशासन—आसाम के अनुसूचित क्षेत्रों की प्रशासन-व्यवस्था अन्य अनुसूचित क्षेत्रों से पृथक् की गई है। इस का मुख्य कारण यह है, कि सांस्कृतिक दृष्टि से आसाम की अनुसूचित जन-जातियाँ अन्य अनुसूचित जन-जातियों से अलग हैं। भारत के अन्य भागों की अनुसूचित जन-जातियों पर हिन्दू संस्कृति का प्रभाव विशेष रूप से पड़ा है, परन्तु आसाम की अनुसूचित जन-जातियों के विषय में ऐसा नहीं है। उनकी अपनी एक अलग ही संस्कृति है।

व उनके अधिकार। (६) ग्राम व नगर सम्बन्धी अन्य विषय; जैसे ग्राम पुलिस; सार्वजनिक स्वास्थ्य; स्वच्छता। (७) ग्राम-सभाओं व न्यायालयों द्वारा मुकदमों की व्यवस्था। (८) जाति के प्रमुखों की नियुक्ति। (९) संपत्ति का उत्तराधिकार। (१०) विवाह। (११) अन्य सामाजिक रिवाज। परिषद द्वारा उपरोक्त विषयों सम्बन्धी जो नियम बनाये, जायेंगे उन पर राज्यपाल की स्वीकृति प्राप्त करनी होगी और जब तक स्वीकृति प्राप्त नहीं की जायगी परिषद द्वारा निर्मित विधि सर्वथा प्रभाव-हीन होगी। अन्य विषयों में राज्यपाल को संसद द्वारा या विधान मंडलों द्वारा इन प्रदेशों के लिए निर्मित उन विधियों में संशोधन करने का अधिकार होगा, जो इन पर लागू हों।

जिला और प्रादेशिक परिषदों को वित्त सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त होंगे। प्रत्येक स्वायत्तशासी जिले या प्रदेश के लिए एक जिला निधि या प्रादेशिक निधि होगी, जिसमें जिला या प्रदेश की समस्त आय जमा होगी और इस सम्बन्ध में निर्मित नियमों के अनुसार उनमें धन जमा होगा या उनमें से धन निकाला जा सकेगा। परिषदों को अपनी सीमा के अन्तर्गत भूमि के सम्बन्ध में मालगुजारी निर्धारित करने तथा उसके संग्रह करने का अधिकार होगा।

जिला-परिषद को निम्नलिखित प्रकार के कर लगाने का अधिकार होगा—(क) व्यवसायों, व्यापार-उद्योग व धन्धों पर कर (ख) पशु, सवारी या वाहन अथवा नौका पर कर (ग) बाजार में बिक्री के लिए आने वाली वस्तुओं पर कर तथा नौका द्वारा आने जाने वाली वस्तुओं व व्यक्तियों पर कर। (घ) विद्यालय, चिकित्सालय तथा राजपथों के निमित्त कर। इन करों के अतिरिक्त आसाम की सरकार को जिला-परिषदों के क्षेत्रों में स्थित खानों से जो रायल्टी प्राप्त होगी, उसमें से परिषदों को भी, समझौते द्वारा निर्धारित भाग मिलेगा।

जिला परिषदों एवं प्रादेशिक परिषदों को न्यायपालिका सम्बन्धी अधिकार भी प्राप्त होंगे। राज्यपाल जिला-परिषदों को व्यवहार-प्रक्रिया संहिता (जाब्ता दीवानी) तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता (जाब्ता फौजदारी) के अधीन ऐसी प्रचलित विधियों के सम्बन्ध में मामले की सुनवाई के अधिकार दे सकेगा, जिनमें प्राणदण्ड, कालापानी या ५ वर्ष तक के कारावास के दण्ड की व्यवस्था है। इनको दिए हुए अधिकारों को राज्यपाल वापस भी ले सकेगा। जिला-परिषद एवं प्रादेशिक परिषद को अपने क्षेत्र में ग्राम समितियाँ या ऐसे न्यायालय स्थापित करने का अधिकार होगा, जिनमें ऐसे मामलों पर विचार किया जायगा जिनमें दोनों पक्ष आदिम जाति के हों।

जिला-परिषदों को अपने क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा-शालाएँ, चिकित्सालय, बाजार, मीनशालाएँ, पशुशालाएँ, राजपथ आदि निर्माण करने तथा उनकी व्यवस्था करने का अधिकार होगा।

राज्यपाल राज्य में जिला-परिषदों के शासन प्रबन्ध सम्बन्धी मामलें की जाँच के लिए जब भी उचित समझे, एक आयोग नियुक्त करेगा। वह समय-समय पर जिला-परिषदों के शासन-प्रबन्ध की जाँच के लिए भी आयोग नियुक्त करेगा, जो विशेष रूप से निम्नलिखित विषयों की परीक्षा करेगा—(१) जिले में शिक्षा, चिकित्सा, यातायात के साधनों की व्यवस्था। (२) जिले के सम्बन्ध में किसी विधि की आवश्यकता, (३) जिला-परिषदों द्वारा बनाए गए कानूनों व नियमों का पालन और जांच। इस आयोग की रिपोर्ट राज्यों की विधान सभा के सम्मुख प्रस्तुत की जावेगी।

आसाम के कुछ दूसरे अनुसूचित क्षेत्र (ख) भाग में हैं। ये क्षेत्र निम्नलिखित हैं—

(१) उत्तरी-पूर्वीय सीमान्त इलाका, जिसके अन्तर्गत बालीपारा सीमान्त

इलाका, तिराप सीमान्त इलाका, अबोर पहाड़ी जिला और मिसिमि पहाड़ी जिला भी हैं। (२) नागा आदिम जाति क्षेत्र। ये ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें अभी तक कोई व्यवस्थित प्रशासन नहीं है।

इस प्रदेश के कुछ भागों के विषय में तो भारत के प्रशासन-अधिकारियों को यथेष्ट ज्ञान भी नहीं है। नागा आदिम क्षेत्र में तो इस युग में भी मनुष्यों का शिकार किया जाता है। इस प्रदेश का शासन राष्ट्रपति आसाम के राज्यपाल द्वारा करेगा। राज्यपाल उसके प्रतिनिधि रूप में प्रशासन-कार्य चलाएगा और इन क्षेत्रों के प्रशासन चलाने में वह स्वतंत्र होगा, उसे मंत्रिपरिषद का परामर्श मानना आवश्यक न होगा। राज्यपाल को अधिकार होगा कि जब वह उचित समझे, कोई ऐसा उपबन्ध राष्ट्रपति की अनुमति से इन क्षेत्रों पर लगा दे, जो आसाम के स्वायत्त जिलों पर लागू हो।

आदिम जातियों का विधान-मंडलों में प्रतिनिधित्व—

संविधान में आदिम जातियों की उन्नति के लिए जो व्यवस्था की गयी है, उसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, इसके अतिरिक्त लोकसभा और विधान-सभाओं में उनके वास्ते स्थान सुरक्षित किए गए हैं। आगे के नक्शे में यह दिखाया जाता है कि १ मार्च १९५० को विभिन्न राज्यों की कुल आबादी और आदिम जातियों की आबादी कितनी-कितनी थी और उसकी ओर से लोकसभा तथा राज्यों की विधान-सभाओं में कितने-कितने स्थान निर्धारित हैं।

क वर्ग के राज्यों में से उत्तर प्रदेश के, और ख वर्ग के राज्यों में से जम्मू-कश्मीर और पटियाला तथा पंजाब-राज्य-संघ के अंक नहीं हैं।

[यह नकशा भारतीय आदिम जाति सेवक संघ के मासिक पत्र (नवम्बर १९५०) के आधार पर बना है, जो किंग्सवे, देहली से प्रकाशित होता है।]

राज्य	कुल जन संख्या (लाख में)	आदिम जातियों की जनसंख्या (लाख में)	लोक सभा		विधान सभाएँ	
			कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य	कुल सदस्य	आदिम जातियों के सदस्य
[क वर्ग]						
आसाम (स्वायत्त जिलों सहित)	८५	१७·६	१२	२	१०८	२७
बिहार	३६४	४२·१	५५	६	३३०	३५
बम्बई	३२७	३०·४	४५	४	३१५	२६
मध्यप्रदेश	२०६	२४·६	२६	३	२३२	२७
मद्रास	५४३	६·०	७५	१	३७५	४
उड़ीसा	१४४	२६·२	२०	४	१४०	२८
पंजाब	१२६	०·२	१८	०	१२६	०
पश्चिमी बंगाल	२४३	११·८	३४	२	२३८	१२
[ख वर्ग]						
हैदराबाद	१७७	२४	२५	०	१७५	२
मध्यभारत	७६	६·५	११	१	९९	१२
मैसूर	८०	०·१	११	०	९९	०
राजस्थान	१४७	४·५	२०	१	१६०	५
सौराष्ट्र	४०	०·७	६	०	६०	१
त्रावणकोर-कोचीन	९६	०·२	१२	०	१०८	०
योग्य	२६८१	१७·८	३७३	२४	२५६५	१८२

चौबिसवाँ अध्याय

जिले का शासन

"जिलाधीश जिले के शासन का केन्द्र-बिन्दु है; वह जनता और सरकार के बीच की कड़ी है।"

नितान्त केन्द्रगत शासन का सबसे बड़ा दुर्गुण यह होता है कि सरकार जो काम करना चाहती है और उसके लिए जिन उपायों का वह अवलम्बन करना चाहती है, उन्हें जब दूर-दूर के गांवों में कार्यान्वित किया जाता है, तब काम की शक्ल योजना तथा अभीष्ट से बिलकुल ही भिन्न हो जाती है।

—मा० द्वारकाप्रसाद मिश्र

राज्य के भाग—पिछले अध्यायों में राज्यों की शासनपद्धति का वर्णन किया गया है। ये राज्य बहुत बड़े-बड़े हैं। किसी-किसी का तो क्षेत्रफल एक-एक लाख वर्ग मील से अधिक और जन-संख्या कई-कई करोड़ है। इनके अधिकारी लोक-जीवन से दूर रहते हैं, उन्हें लोगों की स्थानीय आवश्यकताओं की पूरी जानकारी नहीं होती। वे नीति सम्बन्धी बातों का ही विचार कर सकते हैं। उस नीति पर अमल कराने के लिए यह आवश्यक है कि राज्यों को छोटे-छोटे भागों में विभाजित किया जाय। ऐसा किये बिना उनका शासन अच्छी तरह नहीं हो सकता। वैसे भी अब विकेन्द्रीकरण की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यह भावना फैल रही है कि देश की छोटी-छोटी इकाइयों को अधिक से अधिक उत्तरदायित्व सौंपा जाय। अस्तु, भारत में खासकर शासन की सुविधा के लिए प्रत्येक राज्य कई-कई हिस्सों में बंटा है।

कमिश्नरियाँ—यहाँ मद्रास राज्य को छोड़कर प्रत्येक बड़े राज्य में चार छः कमिश्नरियाँ हैं। कमिश्नरी के अफसर को कमिश्नर कहते हैं। वह शासन सम्बन्धी कोई कार्य स्वयं नहीं करता, केवल जिला-अफसरों के काम की जाँच-पड़ताल करता है। जिलों से जो रिपोर्ट या पत्रादि राज्य-सरकार के पास जाते हैं, वे सब कमिश्नरों के हाथ से गुजरते हैं। कमिश्नरों को म्युनिसपेलटियों का काम देखने-भालने के भी कुछ अधिकार हैं; परन्तु इनका विशेष सम्बन्ध मालगुजारी से रहता है, ये मालगुजारी के बन्दोबस्त में परामर्श देते हैं, और विशेष दशा में उसे वसूल करने के कार्य को स्थगित कर सकते हैं। ये माल के मुकदमों की अपील भी सुनते हैं।

कमिश्नरियाँ विशेष उपयोगी नहीं समझी जातीं। इन्हें तोड़ने का विचार बहुत समय से है; अब इस दिशा में विशेष प्रयत्न होने की आशा है।

जिले; उनका क्षेत्रफल और जनसंख्या—प्रत्येक कमिश्नरी में एक या अधिक जिले हैं। इस प्रकार किसी राज्य में, खासकर 'ग' वर्ग के राज्यों में एक-दो ही जिले हैं और किसी में बहुत अधिक। उत्तर-प्रदेश में तो जिलों की संख्या पचास से ऊपर है। यह संख्या समय-समय पर घटती-बढ़ती रहती है। कभी मितव्ययिता के विचार से जिलों की संख्या घटाना आवश्यक समझा जाता है तो कभी कोई जिला शासन की दृष्टि से बहुत बड़ा मालूम होने पर उसका कुछ भाग अलग करके दूसरे जिले में मिला दिया जाता है, अथवा एक नया ही जिला बना दिया जाता है। पहले बताया जा चुका है कि पिछले दिनों में देशी रियासतों की स्थिति बदलने से राज्यों का पुनस्संगठन हुआ है; इस लिए कुछ स्थानों में आवश्यकतानुसार जिलों की भी पुनर्रचना हो रही है।

प्रत्येक जिले का औसत क्षेत्रफल चार हजार वर्गमील, तथा उसकी औसत मनुष्य-संख्या नौ लाख है; कोई जिला छोटा होता है, कोई

बड़ा। इसी प्रकार किसी की आबादी कम है, किसी की बहुत अधिक। जिलों की सीमा निश्चित करने में प्रायः यह विचार रखा जाता है कि प्रत्येक जिले के शासक को मालगुजारी तथा प्रबन्धादि का काम बहुत-कुछ समान ही करना पड़े।

शासन-व्यवस्था में जिले का स्थान— राज्यों में शासन की इकाई जिला की है। शासन की कल जैसी एक जिले में चलती दिखलाई पड़ती है, वैसी ही प्रायः अन्य जिलों में भी है। जैसे अफसर एक जिले में काम करते हैं, वैसे ही दूसरों में भी। जनता के कामकाज का मुख्य स्थान और लोक-व्यवहार का केन्द्र जिला है। जो मनुष्य अन्य जिलों या राज्यों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते, उन्हें भी बहुधा अपने जिले के भिन्न-भिन्न स्थानों में, शासन या न्याय सम्बन्धी कुछ-न-कुछ काम पड़ जाता है। यहाँ के प्रबन्ध को देखकर जनसाधारण समस्त देश के राजप्रबन्ध का अनुमान किया करते हैं।

जिलाधीश का महत्व—प्रत्येक जिला एक जिलाधीश के अधीन होता है। जिलाधीश जिले का 'कलेक्टर' भी होता है। कलेक्टर का अर्थ है, वसूल करनेवाला। उसका एक मुख्य कार्य मालगुजारी वसूल करना होने के कारण उसे साधारण बोलचाल में 'कलेक्टर' कहते हैं। (पूर्वी पंजाब, अवध और मध्यप्रदेश में वह डिप्टी कमिश्नर कहलाता है।)

जिले के लोगों के लिए जिलाधीश ही सरकार का प्रतिनिधि है। उच्च कर्मचारियों को वे भले ही न जानें, जिलाधीश से तो उन्हें काम पड़ता ही रहता है। इसी की योग्यता पर सरकार के नियमों से प्रजा का यथेष्ट लाभ होना अथवा न होना, निर्भर है; और, जैसा इसका बर्ताव रहता है, उसी से अधिकांश जन-समाज सरकार की नीति का अन्दाज लगाते हैं। यह जो कार्य करता है, उसे सरकार का कार्य कहा जाता है;

इसकी कही हुई बात सरकार की कही हुई बात समझी जाती है। सरकार को बहुत-सी बातों का ज्ञान उतना या वैसा ही होता है, जैसा वह कराता है। इससे यह कहा जा सकता है कि वह सरकार का हाथ-मुंह ही नहीं, आंख कान भी है। यह तो स्पष्ट ही है कि वह जनता और सरकार के बीच की कड़ी है, वह एक की बात दूसरे के सामने रखता रहता है।

जिलाधीश के अधिकार—जिले में, उसका वेतन तो विशेष ऊँचा नहीं होता, पर अधिकारों के विचार वही सब से बड़ा माना जाता है। पहले इस पद पर प्रायः आई० सी० एस० (इंडयन सिविल सर्विस) का सदस्य नियुक्त होता था, जिसके लिए इंगलैंड में शिक्षा दी जाती थी; कुछ दशाओं में प्रान्तीय सिविल सर्विस के अनुभवी व्यक्तियों को भी यह पद दिया जाता था। अब आई० ए० एस० (इंडयन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस) के आदमी इस पद पर नियुक्त किए जाते हैं। इस विषय में विशेष आगे, सरकारी नौकरियों के प्रसंग में, लिखा जायगा। यहाँ यही कहना है कि उसका जिले में होनेवाले विविध प्रकार के कार्यों से सम्बन्ध होता है, और इस लिए उसे कई प्रकार के अधिकार होते हैं।

राजस्व या माल सम्बन्धी अधिकार—जिलाधीश का एक मुख्य कार्य जिले का राजस्व एकत्र करना है। इस कार्य के प्रसंग में उसका सम्बन्ध जिले के गांव-गांव की जनता से होता है; यहां तक कि वे उसे 'कलेक्टर' नाम से ही अधिक जानते है। 'कलेक्टर' का अर्थ है, एकत्र या वसूल करनेवाला। वह मालगुजारी घटा-बढ़ा नहीं सकता; हाँ अकाल, महामारी आदि संकट के समय वह राज्य की सरकार से उसे घटाने का अनुरोध कर सकता है।

मालगुजारी वसूल करने में कलेक्टर का सम्बन्ध किसानों से तथा उन सब लोगों से हो जाता है, जो किसी प्रकार खेती से सम्बन्धित हों। भारतवर्ष में गांवों का और खेती का विस्तार ध्यान में लाने से कलेक्टर के इस

अधिकार-क्षेत्र का सहज ही अनुमान हो सकता है। किसानों को तकावी देने का काम उसी के द्वारा किया जाता है। वह माल (मालगुजारी) के बड़े-बड़े मामलों का फैसला करता है, और छोटे मामलों की अपील सुनता है।

न्याय और शान्ति सम्बन्धी अधिकार—जिलाधीश की संयुक्त उपाधि 'कलेक्टर-मजिस्ट्रेट' उसके डबल कार्य की बोधक है। कलेक्टर की हैसियत से किए जानेवाले कार्यों का उल्लेख ऊपर किया गया है। जिला-मजिस्ट्रेट की हैसियत से वह जिले भर की छोटी अदालतों का निरीक्षण करता है। उसे अव्वल दर्जे की मजिस्ट्रेटी के अधिकार होते हैं, जिनसे वह एक अपराध पर साधारणतः दो साल तक की कैद और एक हजार रुपए तक का जुर्माना कर सकता है। जिले की सब प्रकार की सुख-शान्ति का वही उत्तरदाता है। वह स्थानीय पुलिस का निरीक्षण भी करता है। पुलिस उसकी आज्ञा मानती है। जलूसों की व्यवस्था और दंगों का दमन करने में वह पुलिस-सुपरिंटेन्डेन्ट की सलाह से काम करता है, और समय-समय पर आवश्यक आदेश जारी करता रहता है। वही पेट्रोल या बन्दूक आदि का लाइसेन्स देता है।

अन्य अधिकार—जैसा पहले कहा गया है, जिले में शासन सम्बन्धी कोई विभाग ऐसा नहीं है, जिसका जिलाधीश से सम्बन्ध न हो। वह सब का ही निरीक्षण या नियंत्रण करता है। उदाहरण के लिए स्थानीय आबकारी, स्टाम्प ड्यूटी, जिला-कोष आदि भी उसी के अधीन हैं। यद्यपि जिले में राज्य-शासन के भिन्न-भिन्न विभागों के बड़े-बड़े पदाधिकारी, अपने-अपने विभागों की देख-रेख के लिए रहते हैं—जैसे पुलिस-सुपरिंटेन्डेन्ट, जेलों का सुपरिन्टेण्डेण्ट, स्कूल इन्सपेक्टर, इन्जीनियर, सिविल सर्जन, जंगलों के चीफ कन्जरवेटर इत्यादि—तो भी इन सब विभागों की सुव्यवस्था का उत्तरदायित्व जिलाधीश पर है। प्रत्येक विभाग का प्रधान अपने कार्यों के लिए स्वतन्त्र होते हुए भी अपने आप को उस से नीचे समझता है। जिलाधीश स्थानीय स्वशासन संस्थाओं का भी निरीक्षण

करता है। जिला-बोर्ड तथा म्युनिस्पेलटियां साधारणतया उसकी निगरानी में काम करती हैं। इस बात का निश्चय करने में, कि कहाँ पुल, सड़क इत्यादि बनने चाहिएँ, कहाँ सफाई का प्रबन्ध होना चाहिए, तथा जिले के किन-किन भागों को स्थानीय स्वराज्य का अधिकार मिलना चाहिए, उसी की सम्मति प्रमाणिक मानी जाती है। जिले में जो भी प्रबन्ध ठीक न हो, उसका सुधार करना, और हरेक बात की रिपोर्ट उच्च कर्मचारियों के पास भेजना, उसी का कर्तव्य है। जिले की आन्तरिक दशा जानने तथा उसे सुधारने के विचार से उसे देहातों में दौरा करना होता है।❀

इस प्रकार इतने भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य उसके सुपुर्द हैं कि उसके लिए उन सब को स्वयं भली प्रकार चलाना दुस्तर है। इसलिए बहुत से काम उसके अधीन कर्मचारी ही कर डालते हैं, और वह उनके कागजों पर हस्ताक्षर कर देता है। हाँ, इससे उसकी जिम्मेवारी कम नहीं होती; जिले के शासन सम्बन्धी सब कार्य का उत्तरदाता वही होता है। आजकल सरकारी काम में कागजी कार्रवाई बहुत बढ़ गई है, इससे जिलाधीश को जनता की वास्तविक दशा जानने के लिए, उससे सीधे सम्पर्क में आने का अवकाश बहुत कम मिलता है। वह प्रायः अपने अधीन कर्मचारियों की रिपोर्ट या कुछ खास-खास लोगों की बातों के आधार पर ही अपनी राय कायम कर लेता है।

जिलाधीश का प्रभाव—जिलाधीश को शासन-प्रबन्ध के

❀ आज कल खाने-पीने की चीजों का कंट्रोल (नियंत्रण) और राशनिंग होने से, रोजमर्रा के काम की अनेक वस्तुओं का मूल्य-निर्धारण तथा मकानों का नियंत्रण होने से, सरकारी काम बहुत बढ़ा हुआ है; इसका स्वाभाविक परिणाम यह है कि जिलाधीश का अधिकार-क्षेत्र बहुत बढ़ा हुआ है।

सम्बन्ध में कुछ स्वतत्र अधिकार नहीं हैं, वह प्रान्तीय सरकार के आदेशानुसार कार्य करनेवाला कर्मचारी है, तथापि जिले भर में उसका प्रभाव बहुत अधिक होता है। वह सब बड़े-बड़े धनी प्रतिष्ठित व्यक्तियों के सीधे सम्पर्क में आता है; सेठ, साहूकार, जमींदार या महन्त सब उसको प्रसन्न रखना चाहते हैं। बहुत से आदमी उसके नाम पर कुछ सार्वजनिक कार्य करने के इच्छुक रहते हैं। यदि उसमें लोक-सेवा की अभिलाषा हो और उसका व्यक्तित्व ऊँचा हो तो वह उन्हें विविध हितकर योजनाओं के लिए प्रोत्साहन दे सकता है, और जिले के निवासियों की सामूहिक उन्नति करने में बहुत सफलता प्राप्त कर सकता है। इसके विपरीत, यदि उसे जनता पर अपना रौबदौब या आतंक जमाने की ही चिन्ता हो तो उसका प्रबन्ध-काल जिले के लिए एक अभिशाप ही होगा।

शासन और न्याय का पृथक्करण—पहले बताया जा चुका है कि जिलाधीश को शासन सम्बन्धी अधिकार भी हैं, और न्याय सम्बन्धी भी। वह अपने जिले की शान्ति का उत्तरदाता है, इसलिए पुलिस पर उसका नियंत्रण रहता है। पुलिस उसे इस बात की सूचना देती रहती है कि जिले में किस-किस व्यक्ति का व्यवहार या आचरण उसकी दृष्टि से आपत्तिजनक है। जिस व्यक्ति को पुलिस अपराधी ख्याल करती है, उसकी गिरफ्तारी के लिए वह जिलाधीश की अनुमति ले सकती है, अथवा जिलाधीश चाहे तो वह भी किसी व्यक्ति को पुलिस द्वारा गिरफ्तार करा सकता है। जब जिलाधीश ऐसे मुकदमों का फैसला करता है तो मानो वादी स्वयं ही न्यायाधीश बन जाता है। ऐसी दशा में न्याय-कार्य स्वतंत्रता-पूर्वक न होना, पुलिस की बात रखने का प्रयत्न होना और अभियुक्त के साथ अन्याय होना स्वाभाविक ही है। इसलिए यह आवश्यक है कि शासन और न्याय-कार्य पृथक्-पृथक् हों, जिलाधीश या उसके सहायक या अधीन पदाधिकारियों को मजिस्ट्रेट के अधिकार न रहें। फौजदारी मुकदमों का फैसला (दीवानी मुकदमों की तरह) मुन्सफी की अदालतों

द्वारा हुआ करे; कारण, मुन्सिफ जिलाधीश के अधीन नहीं होते, वे स्वतन्त्रता-पूर्वक फैसला कर सकते हैं।

इससे यह भी लाभ होगा कि जिलाधीशों को अपने अन्य कर्तव्यों का पालन करने के लिए अधिक अवकाश मिलेगा। निस्सन्देह इस सुधार को अमल में लाने से खर्च कुछ अधिक होगा, परन्तु न्याय और जनहित के लिए वह आवश्यक ही है। अब राज्य-सरकारें क्रमशः इस सुधार को अमल में ला रही हैं।

जिले के अन्य कार्यकर्ता—जिले में अनेक प्रकार के कार्य होते हैं, यथा :—शान्ति रखना, झगड़ों का फैसला करना, मालगुजारी वसूल करना, सड़क, पुल आदि बनवाना, अकाल में लोगों की सहायता करना, रोगियों का इलाज करना, म्यूनिसपल और लोकल बोर्डों की निगरानी, जेलखाना और पाठशाला आदि का निरीक्षण करना इत्यादि। इन विविध कार्यों के लिए जिले में कई एक अफसर रहते हैं, जैसे पुलिस-सुपरिंटेंडेण्ट, डिस्ट्रिक्ट-जज, मुन्सिफ, एग्जीक्यूटिव इंजिनयर, सिविल सर्जन, जेल-सुपरिण्टेंडेण्ट, तथा स्कूल-इन्स्पेक्टर आदि। ये अफसर अपने पृथक् पृथक् विभागों के उच्च अधिकारियों के अधीन होते हैं, परन्तु शासन के विचार से, जिला-जज और मुन्सिफ आदि को छोड़कर, सब पर जिला-मजिस्ट्रेट ही प्रधान होता है। 'जिले का हाकिम' वही कहा जाता है। उसके कार्य में सहायता देने के लिए डिप्टी और सहायक मजिस्ट्रेट रहते हैं।

जिले के कार्यकर्ताओं को कानून बनाने का अधिकार नहीं होता। इनका मुख्य काम यह है कि ये राज्य सरकार के कानून को व्यवहार में लावें, तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करें; हाँ, कानून बनाने में अप्रकट रूप से इतना भाग इनका अवश्य रहता है कि इनकी रिपोर्ट के आधार पर सरकार स्थानीय परिस्थिति का अनुमान करती है, और तदनुसार कानून बनाती है।

जिले के भाग, और उनके अधिकारी—शासन की दृष्टि से प्रत्येक जिले के जो भाग होते हैं, उन्हें सबडिविजन कहते हैं। हरेक सबडिविजन एक डिप्टीकलेक्टर, अथवा 'एक्स्ट्रा एसिस्टेंट कमिश्नर' के अधीन रहता है। अपनी-अपनी अमलदारी में, सबडिविजनों के अफसरों के अधिकार थोड़े-बहुत भेद से, कलेक्टर मजिस्ट्रेटों के समान ही होते हैं। इन्हें एस० डी० ओ० भी कहते हैं, यह 'सबडिविजनल आफीसर' का संक्षेप है। बिहार को छोड़कर, अन्यत्र प्रत्येक जिले के अन्तर्गत ५-६ तहसील (या ताल्लुके) हैं। जिले के ये भाग सब-डिप्टी-कलेक्टरों या तहसीलदारों के अधीन हैं; ये कर्मचारी प्रजा और सरकार को एक दूसरे के विषय में आवश्यक सूचना देते रहते हैं, और अपने इलाके के माल और फौजदारी के काम के भी उत्तरदाता हैं। ये अपने हल्के में दौरा करके म्युनिसिपेलटियों और जिला-बोर्डों का भी काम देखते हैं। इनके सहायक कर्मचारी नायब तहसीलदार, पेशकार, कानूनगो, रेवन्यू-इन्स्पेक्टर आदि होते हैं। प्रायः एक तहसील में एक या अधिक परगने, और कई सर्कल या हल्के होते हैं। परगने का अधिकारी 'हाकिम परगना' कहलाता है।

गाँवों के अधिकारी—तहसीलदारों के अधीन, गाँवों में नम्बरदार (पटेल), चौकीदार और पटवारी रहते हैं। नम्बरदार गाँव का सबसे बड़ा अधिकारी होता है। यह जमींदारों से मालगुजारी तथा आबपाशी की रकम वसूल करके तहसील में भेजता है, वहाँ से वह जिले में भेजी जाती है। यह अपने गाँव में शांति रखने का प्रयत्न करता है। चौकीदार पहरा देता है और चौकसी करता है। वह पुलिस में प्रति सप्ताह यह खबर देता है कि गाँव में उस सप्ताह के भीतर कितनी मृत्यु हुई, और कितने बालकों का जन्म हुआ। वह गाँव की चोरी, कत्ल तथा अन्य अपराधों की भी रिपोर्ट करता है। चौकीदारों का अफसर 'मुखिया' कहलाता है। पटवारी अपने हल्के (ग्राम या ग्राम-समूह) के किसानों और जमींदारों

के भूमि सम्बन्धी अधिकारों के कागज तथा रजिस्टर आदि रखता है। कोई खेत या उसका कुछ हिस्सा बिक जाय या किसी खेत का मालिक बदल जाय या मर जाय तो पटवारी इस बात की रिपोर्ट तहसील में करता है, और अपने कागजों में उचित सुधार कर लेता है। वह खेतों के नक्शे तथा 'खेवट' 'खतौनी' आदि रखता है। इन सब कर्मचारियों के यथेष्ट कर्तव्य-पालन पर ही तहसील और जिले का शासन अच्छा होना निर्भर है।

विशेष वक्तव्य—जिले का शासन, भारत के स्वतंत्र होने पर भी, बहुत कुछ उसी ढंग से हो रहा है, जैसा पहले, अंगरेजों के समय में, होता था। और, अंगरेजी शासन वास्तव में एकतंत्री सत्ता थी, जो एक केन्द्र से सारे देश पर राज करती थी। ब्रिटिश सरकार ने अधिकारों का केन्द्रीकरण कर रखा था, उसने अपने मुट्ठी भर आदमियों को उत्तरदायित्व के पदों पर नियुक्त कर उन्हें खूब अधिकार सौंपे हुए थे। उसने देश भर में प्रायः एक ही प्रकार की शासन-व्यवस्था स्थापित की थी, जिसके मुख्य दो उद्देश्य थे—(क) लगान वसूल करना और (ख) जनता पर नियंत्रण रखना, जिसे 'शान्ति और सुव्यवस्था' कहा जाता था। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अंगरेजों ने कलेक्टर या डिप्टी-कमिश्नर में जिले भर के शासन को केन्द्रित किया। यही नहीं, उन्होंने कुछ हद तक गांव के शासन को भी, पटेल या मुकद्दम में केन्द्रित कर दिया था, इस पदाधिकारी पर गांव का लगान वसूल करने के साथ शान्ति और सुरक्षा को जिम्मेदारी भी रहती थी। यह एक प्रकार से 'गांव का हाकिम' था, जैसे कि जिलाधीश जिले का हामिक था।

इस समय जिलाधीश को निम्नलिखित कार्य रहते हैं :— (१) लगान वसूल करना, (२) शान्ति और सुव्यवस्था , (३) न्याय और (४) जिले का विकास। इन सब कामों का उत्तरदायित्व एक व्यक्ति पर रहना विकेन्द्रीकरण या जनतंत्री नीति के विरुद्ध है। शासन और न्याय

को पृथक् करने की उपयोगिता पहले बतायी जा चुकी है। जमींदारी-उन्मूलन से, जमीदारों और किसानों के बीच होने वाले मुकदमें बन्द हो जायंगे; इससे जिलाधीश का इन मुकदमों सम्बन्धी कार्य स्वयं ही हट जायगा। उसे जिले के विकास कार्य में सहायता देने के लिए विकास-बोर्ड स्थापित करने की बात चल रही है। आवश्यकता है, जिलों में जिला-परामर्श-समितियाँ स्थापित करने और जिलाधीश की सत्ता को नियंत्रित तथा विकेन्द्रित करने की योजना का विचार किया जाय। पंचायतों की उन्नति से गांवों में पटेल (नम्बरदार) की सत्ता मर्यादित होगी ही।

पच्चीसवाँ अध्याय

स्थानीय शासन-संस्थाएँ; (१) पंचायतें आदि

(ग्राम-स्वराज्य की जो मेरी कल्पना है, उसके अनुसार) गाँव का शासन चलाने के लिए हर साल गाँव के पांच आदमियों की पंचायत चुनी जायगी। इसके लिए नियमानुसार एक खास योग्यता वाले गाँव के बालिग स्त्री-पुरुषों को अधिकार होगा कि वे अपना पंच चुनलें। इस पंचायत को सब प्रकारकी सत्ता और अधिकार रहेंगे— यह पंचायत अपने एक साल के कार्यकाल में स्वय ही धारा-सभा, न्याय-सभा, और कार्यकारिणी सभा का सारा काम करेगी।

—म० गांधी

पंचायत-पद्धति का समुचित बिकास करना हो तो वह पार्टीबन्दी को बुनियाद पर नहीं हो सकता। 'पंच-परमेश्वर' का पुनरुत्थान समग्र और सामूहिक लोकराज की नींव पर ही हो सकता है।

—श्रीमन्नारायण अग्रवाल

'स्थानीय स्वराज्य—' अँगरेजों के शासन-काल में, खासकर सन् १८७० से जनता स्थानीय मामलों में कुछ स्वाधीन हुई। किसी पराधीन देश में, जिन विषयों का सम्बन्ध किसी एक शहर, कस्बे या गाँव से हो, उनके प्रबन्ध के लिए तथा वहाँ की जनता की सामूहिक सुविधाओं की व्यवस्था करने के वास्ते, वहाँ के ही आदमियों का

अधिकार प्राप्त होना 'स्थानीय स्वराज्य' कहलाता है। और, इन अधिकारों का उपयोग करने के लिए बनाई हुई संस्थाओं को स्थनीय-स्वराज्य-संस्थाएँ कहते हैं। इस प्रकार 'स्थानीय स्वराज्य' और 'स्थानीय स्वराज्य संस्थाएँ', शब्द उस समय के चले हुए हैं, जब देश पराधीन था। पर शब्द चल पड़े हैं, आदमी इनका प्रयोग करने में विशेष तर्क से काम नहीं लेते। यदि विचार किया जाय तो अब भारत के स्वतंत्र हो जाने पर इन शब्दों की जगह हमें क्रमशः 'स्थानीय शासन' और 'स्थानीय शासन-संस्थाएँ' या संक्षेप में 'स्थानीय संस्थाए' शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।

स्थानीय संस्थाओं का महत्व—इन संस्थाओं का बड़ा महत्व है। भिन्न-भिन्न शहरों और देहातों की परिस्थिति तथा आवश्यकताएँ अलग-अलग होती हैं। केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार को उनके विषय में ब्योरेवार ज्ञान नहीं होता, और वे इन कार्यों की ऐसी अच्छी तथा मित-व्ययिता-पूर्वक व्यवस्था नहीं कर सकतीं, जैसी स्थानीय व्यक्तियों की संस्थाएँ कर सकती हैं। आदमियों को अपने स्थान की समस्याओं और आवश्यकताओं का ज्ञान अधिक होता है, और उन्हें उनकी पूर्ति करने में रुचि भी विशेष होती है। वे स्थानीय कार्यों को बड़े उत्साह से करते हैं, और उनका अनुभव प्राप्त करके वे प्रान्त और देश के विविध राजनैतिक कार्य करने के अधिक योग्य हो जाते हैं। स्थानीय संस्थाओं के द्वारा अनेक आदमियों को लोकसेवा का अवसर सहज ही मिल सकता है।

स्थानीय संस्थाओं की एक और विशेषता है। गाँव या नगर में हर एक आदमी अपने यहाँ के बहुत से आदमियों को निजी तौर पर जानता है, और उनके गुण-दोषों तथा स्वभाव आदि से परिचित रहता है। इसलिए स्थानीय संस्था का कोई कर्मचारी जनता से अपने व्यवहार की बातें छिपी नहीं रख सकता, वह सहज ही धोखा-धड़ी नहीं कर सकता,

वह रिश्वत या घूस आदि नहीं ले सकता तथा किसी प्रकार का अनैतिक व्यवहार करने का साहस नहीं कर सकता। वह जानता है कि ऐसा करने से तुरन्त ही स्थानीय लोकमत उसके विरुद्ध हो जायगा, जिसे कोई भला आदमी कभी पसन्द नहीं करता।

आजकल लोगों का जीवन बड़ा व्यस्त हो चला है। शहरों के तीन-तीन चार-चार या अधिक मंजिलों वाले बड़ी-बड़ी विशाल इमारतों में रहनेवाले आदमी प्रायः एक-दूसरे से अपरिचित से रहते हैं, यहाँ तक कि वे उनका नाम या पेशा आदि भी नहीं जानते। फिर-आजकल शहरों का आकार-प्रकार बढ़ता ही रहता है। ऐसी परिस्थिति में स्थानीय संस्था की उक्त विशेषता जाती रहती है। विचारशील सज्जनों का मत है कि बड़े-बड़े नगरों को ऐसे कई-कई हिस्सों में बांट दिया जाय कि एक बस्ती के आदमी आपस में अधिक-से-अधिक सम्पर्क रख सकें। अस्तु, वर्तमान अवस्था में भी अधिकांश स्थानीय संस्थाओं में उपर्युक्त विशेषता बहुत-कुछ बनी हुई है।

प्राचीन व्यवस्था—प्राचीन समय में यहाँ चिरकाल तक स्थानीय कार्य गाँवों में ग्राम-संस्थाओं, और नगरों में व्यवसाय-संघों आदि द्वारा होता रहा। भारतवर्ष की पंचायतें बहुत प्रसिद्ध रही हैं। प्रत्येक गाँव स्वावलम्बी होता था; पंचायत उसकी रक्षार्थ पुलिस रखती थी, छोटे-मोटे झगड़ों का निपटारा करती थी। पंचायत का यहां इतना विश्वास था कि अब तक 'पंच-परमेश्वर' कहावत चली आती है। वह भूमि-कर वसूल करके राजकोष में भेजती थी; तालाब, पाठशाला, मन्दिर, पुल, सड़क आदि सार्वजनिक उपयोगिता के कामों की व्यवस्था करती थी। अपने क्षेत्र में वह यथेष्ट शक्तिशाली होती थी। सरकारी कर्मचारी उसका आदर करते थे। राजा बादशाह तक उसके काम में दखल नहीं देते थे। सरकारी कर्मचारी मुखिया द्वारा गांव का हाल मालूम करते, और शासक को

उसकी सूचना देते थे। प्रजा को इससे विशेष मतलब नहीं होता था कि प्रधान शासक कौन है, और उसकी क्या नीति है। क्रमशः राजवंश बदले, क्रान्तियाँ हुईं, बारी-बारी से हिन्दू (क्षत्रीय, राजपूत), पठान, मुगल, मराठे, सिक्खों का प्रभुत्व हुआ। परन्तु सब विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी ग्राम्य संस्थाओं ने अपना अस्तित्व और स्वतन्त्रता बनाए रखी।

प्रायः लोगों की धारणा है कि प्राचीन काल में यहां गांवों में तो पंचायतें खूब थीं, परन्तु नगरों या शहरों में स्थानीय संस्थाएँ विशेष प्रभावशाली न थीं। परन्तु प्राचीन ग्रन्थों से, खासकर कौटिल्य के अर्थशास्त्र से यह गलत धारणा सहज ही दूर हो जाती है। उस समय प्रत्येक शहर का प्रबन्ध करने के लिए वहाँ के निवासियों की एक संस्था थी, जिसकी कई कमेटियाँ होती थीं। प्रत्येक कमेटी अपने निर्धारित कार्यों को अच्छी तरह पूरा करती थी। नगर-निवासियों की शिक्षा, स्वास्थ्य और व्यापार आदि की उचित व्यवस्था की जाती थी। गलियों, सड़कों और बाजारों की सफाई का पूरा प्रबन्ध था। कोई दुकानदार अपनी चीजों के अनुचित दाम नहीं ले सकता था, न वहाँ कोई मिलावट कर सकता था और न सड़ी-गली या खराब चीजें ही बेच सकता था। स्थानीय संस्थाओं की कर्तव्यपरायणता तथा शासकों द्वारा उन्हें यथेष्ट अधिकार तथा प्रतिष्ठा मिलने की बात इस समय भी कितनी अनुकरणीय है!

अंगरेजों के शासन-काल में—अंगरेजी शासन के प्रारम्भिक समय में ग्राम्य संस्थाओं की आय और अधिकार प्रान्तीय सरकारों द्वारा ले लिए जाने पर, ग्राम-संगठन का क्रमशः ह्रास हो गया। यद्यपि कहीं-कहीं पञ्चायती मन्दिर और धर्मशाला आदि बनते रहे, ये प्राचीन व्यवस्था के स्मृति-चिन्ह मात्र थे।

सन् १९२१ के लगभग प्रत्येक प्रान्त में पञ्चायत-कानून बनाया गया। इसके अनुसार बहुत से स्थानों में पञ्चायतें खुल गयीं। परन्तु स्मरण रहे

कि इनके अधिकार पुरानी पञ्चायतों की अपेक्षा बहुत कम थे। इनके सदस्य नामजद होते थे, ग्रामवालों के प्रतिनिधि नहीं। ये एक प्रकार की सरकारी संस्थाएँ ही थीं। इनका कार्य सरकारी कर्मचारियों की सहायता से, और उनके ही निरीक्षण और नियंत्रण में होता था।

सन् १९३५ के संविधान के बाद, एक प्रकार से प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना हुई। तब प्रान्तीय सरकारों का ध्यान इन स्थानीय संस्थाओं की उन्नति और प्रगति की ओर जाना स्वाभाविक ही था। इस समय इनकी जांच के लिए विविध प्रान्तों में कमेटियाँ बैठाई गईं, उन्होंने प्रायः अपने-अपने प्रान्त की संस्थाओं के सम्बन्ध में बहुत असन्तोष प्रकट किया। प्रान्तीय सरकारें इनकी स्थिति सुधारने का प्रयत्न कर रही थीं, परन्तु सन् १९३९ में द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ हो जाने के समय प्रान्तों के कांग्रेसी मन्त्रिमंडलों ने इस्तीफा दे दिया, और यह काम जहाँ का तहाँ रह गया।

वर्तमान स्थानीय शासन-संस्थाएँ—भारतवर्ष की वर्तमान स्थानीय-शासन संस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

१—पंञ्चायतें,

२—जिला-बोर्ड आदि,

३—म्युनिसपेलटियाँ, कारपोरेशन, नोटीफाइड एरिया,

४—इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, और पोर्ट-ट्रस्ट।

इनके दो भेद किए जा सकते हैं। पञ्चायतें और जिला-बोर्ड आदि गाँवों के लिए हैं, और अन्य संस्थाएँ शहरों के लिए। मध्य प्रदेश में जनपद सभाएँ स्थापित की गयी हैं, जिनका कार्यक्षेत्र ग्राम्य और शहरी दोनों प्रकार का है।

(क) पंचायतें

स्वतंत्र भारत और पंचायत-राज—सन् १९४७ में भारतवर्ष के स्वतंत्र हो जाने पर यहाँ की सरकार ने यह अनुभव किया कि यह

देश गाँवों का देश है; यहाँ की ८८ प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है उसमें नवजीवन का सञ्चार करने के लिए, गाँवों में पञ्चायत-राज कायम किया जाय, जिससे आदमी अपने-अपने गाँव का शासन अपने हाथ में लें। वे अपने झगड़े अपने आप निपटा सकें; फौजदारी, दीवानी तथा माल के मुकदमों का बिना वकील की सहायता के फैसला कर सकें। यही नहीं; वे शिक्षा, चिकित्सा और यातायात के लिए पाठशाला, औषधालय और सड़कें भी आदि बनवा सकें।

उत्तर प्रदेश का उदाहरण—अब हम पञ्चायतों के कार्य, अधिकार, और आय आदि की बातों को स्पष्ट करने के लिए उत्तर प्रदेश की पञ्चायतों की मुख्य-मुख्य बातों का उल्लेख करते हैं। अन्य प्रान्तों की पञ्चायतों सम्बन्धी स्थिति इससे मिलती जुलती है, अथवा बहुत-कुछ इस तरह की होने वाली है। इस प्रकार आगे के वर्णन से भारत की वर्तमान पञ्चायतों के सम्बन्ध में साधारण ज्ञान हो जायगा। पञ्चायतों के न्याय सम्बन्धी कार्यों या अधिकारों के विषय में हम पहले लिख चुके हैं, अतः यहाँ उनकी अन्य बातों का ही विचार किया जायगा।

ग्राम-सभा—पहले ग्राम-सभाओं के विषय में जान लेना चाहिए, क्योंकि इनसे ही ग्राम-पञ्चायतों का निर्माण होता है। साधारणतया लगभग एक-एक हजार आबादी वाले गाँव या ग्राम-समूह में ग्राम-सभा स्थापित की जाती है। यदि किसी गाँव की आबादी एक हजार से कम हो और उसे निकटवर्ती (तीन मील के भीतर) गाँव या गाँवों में न मिलाया जा सके, तो उसमें एक पृथक् ग्राम-सभा होती है। हिसाब लगाने पर तीन गाँवों में एक ग्राम-सभा की औसत आती है। ग्राम-क्षेत्र के सब प्रौढ़ अर्थात् इक्कीस वर्ष या अधिक आयु के व्यक्ति ग्राम-सभा के आजीवन सदस्य होते हैं। लेकिन ऐसा कोई व्यक्ति किसी ग्राम-सभा का सदस्य नहीं होता—(क) जिसका दिमाग खराब हो, या (ख) जिसे कोढ़ हो, या (ग) जो दिवालियापन से बरी नहीं किया गया हो, या (घ) जो

सरकारी कर्मचारी हो, या (च) जिसे चुनाव सम्बन्धी किसी अपराध के लिए दंड मिल चुका हो, या (छ) जो नैतिक अपराध का दोषी हो, और जिसे नेकचलनी के लिए ज़मानत जमा करने की आज्ञा दी गई हो। इसमें शर्त यह है कि (ग), (च) और (छ) प्रतिबन्ध सरकार द्वारा हटाए जा सकते हैं।

ग्राम-सभा की प्रति वर्ष दो बैठकें अवश्य होती हैं—खरीफ की बैठक और रबी की बैठक। खरीफ की बैठक में अगले वर्ष के बजट पर विचार होकर उसे स्वीकार किया जाता है; रबी की बैठक में पिछले वर्ष के हिसाब पर विचार होता है। ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से एक (सभापति प्रधान या सदर) और एक उपसभापति चुनती है, जो तीन-तीन वर्ष तक अपने पद पर रहते हैं। सभा के सदस्यों की कार्य-निर्वाहक संख्या (कोरम) उनकी कुल संख्या का पाँचवाँ हिस्सा होती है।

गाँव-पंचायत की स्थापना और संगठन—प्रत्येक गाँव-सभा अपने मेम्बरों में से एक कार्यकारिणी कमेटी का चुनाव करती है। यह कमेटी गाँव-पंचायत कही जाती है। इसके निर्वाचित सदस्यों की संख्या सभा के सभापति और उप-सभापति के अतिरिक्त, सभा के क्षेत्र की जन-संख्या के अनुपात से ३० से ५१ तक होती है—

(१) यदि जनसंख्या १००० से अधिक न हो............३० सदस्य

(२) यदि जनसंख्या १००० से अधिक हो,
किन्तु २००० से अधिक न हो......................३६ ,,

(३) यदि जनसंख्या २००० से अधिक हो,
किन्तु ३००० से अधिक न हो......................३६ ,,

(४) यदि जनसंख्या ३००० से अधिक हो,
किन्तु ४००० से अधिक न हो......................४५ ,,

(५) यदि जनसंख्या ४००० से अधिक हो..............५१ ,,

परिगणित जातियों के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात से सुरक्षित स्थानों की संख्या का हिसाब लगाते समय आधे से कम राशि-भागों को छोड़ दिया जायगा और जो अपूर्णांक आधे से कम न हों, उन्हें पूर्णांक गिना जायगा। अल्पसंख्यक जाति का एक मेम्बर अवश्य होगा।

गाँव-सभा के सभापति तथा उपसभापति गाँव-पंचायत के भी सभापति और उपसभापति होंगे।

पंचायत के निर्वाचित सदस्य तीन वर्ष के लिए सदस्य रहेंगे परन्तु कुल सदस्यों में से एक-तिहाई हर वर्ष अवकाश ग्रहण करते जायँगे। चुनाव संयुक्त निर्वाचन-पद्धति के अनुसार किया जायगा।

निर्वाचन—जिलाधीश प्रत्येक ग्राम-सभा के लिए एक निर्वाचन अध्यक्ष की, और हरेक निर्वाचन क्षेत्र के लिए सहायक निर्वाचन-अध्यक्ष की नियुक्ति करता है, और उस क्षेत्र के अन्तर्गत पंचायत के सभापति उप-सभापति तथा सदस्यों और पंचायती अदालत के पंचों की उम्मेदवारी तथा चुनाव के निमित्त इसकी बैठक के लिए एक तारीख, समय और स्थान नियत करता है और इसकी घोषणा डुग्गी पिटवाकर या अन्य प्रकार से की जाती है।

निर्वाचन-अध्यक्ष प्रत्येक निर्वाचन क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए आवश्यक पोलिंग अफसरों (मत-गणनाधिकारियों) को नियुक्त करता है।

उम्मेदवारी का प्रस्ताव साधारण कागज पर होता है, जिसमें उम्मेदवार का नाम, विवरण, तथा उस पद का नाम जिसके लिए वह खड़ा हो रहा है, दिया जाता है। उस पर उम्मेदवार के तथा प्रस्ताव और अनुमोदन करनेवाले दो प्रौढ़ व्यक्तियों के हस्ताक्षर होते हैं।

विभिन्न पदों अर्थात् (क) सभा के सभापति, (ख) उप-सभापति, (ग) पञ्चायत के सदस्य, और (घ) पञ्चायती अदालत के पञ्च के चुनाव की कार्रवाई अलग-अलग की जाती है।

निर्वाचन-क्षेत्र के प्रत्येक मतदाता को उतने ही मत देने का अधिकार होता है, जितने कि उस क्षेत्र के पञ्चायत के सदस्यों तथा ग्राम-सभा के अन्य पदों के लिए, जैसी भी दशा हो, उम्मेदवार हों।

प्रत्येक समूह का मत-गणनाधिकारी सभा के सभापति, उप-सभापति, पञ्चायत के सदस्य तथा पञ्चायती अदालत के पदों के लिए खड़े होने वाले प्रत्येक स्वीकृत उम्मेदवार के लिए हाथ उठवा कर मत लेता है, और निर्वाचन-अध्यक्ष को लिखित सूचना देता है कि प्रत्येक उम्मेदवार को कितने मत प्राप्त हुए। जब उम्मेदवारों को मिलनेवाले मतों की समानता हो तो उनमें से कौन सा उम्मेदवार सफल घोषित किया जाय—इसका निर्णय लाटरी द्वारा (चिट्ठी डालकर) निर्वाचन-अध्यक्ष और उम्मेदवारों के सामने किया जाता है।

पंचायत के कर्मचारी—पञ्चायत को अधिकार है कि वह तहसीलदार द्वारा स्वीकृत योजना के अनुसार कर्मचारियों को नियुक्त करे। नियुक्ति के समय कर्मचारी की आयु २० से ३५ वर्ष तक की होनी चाहिए। पञ्चायत के मंत्री की इंटरमिजियट (एफ० ए०) तक की योग्यता होनी आवश्यक है, दूसरे कर्मचारियों को हिन्दुस्तानी मिडल या एंग्लो-वर्नाक्यूलर की आठवीं कक्षा पास होना चाहिए।

पंचायत के अधिकार; जन-मार्गों आदि के संबंध में—पंचायत का नियन्त्रण ऐसे सब सार्वजनिक मार्गों तथा जन मार्गों पर है जो उसके अधिकार-क्षेत्र में हों। वह उनको अच्छी दशा में बनाए रखने और उनकी मरम्मत करने के लिए आवश्यक काम करती है, और

(क) नए पुल या पुलिया बनवायगी; उन्हें आवश्यकतानुसार बदल देगी, छोड़ देगी या बन्द कर देगी; उन्हें चौड़ा या गहरा करेगी।

(ख) ऐसी झाड़ी या पेड़ की शाखा को काटेगी, जो सार्वजनिक मार्ग पर झुक आई हो।

(ग) सार्वजनिक उपयोग में आनेवाले किसी श्रोत (चश्मे) का पानी केवल पीने या खाना बनाने आदि के काम के लिए सुरक्षित रखने की घोषणा करेगी।

सफ़ाई सम्बन्धी सुधार—गाँव-पंचायत को यह अधिकार है कि वह नोटिस द्वारा किसी भूमि या इमारत के मालिक को निम्नलिखित बातें करने के लिए आदेश दे :—

(क) किसी पाखाने, पेशाबखाने, नाबदान, नाली, चहबच्चा या दूसरी गन्दगी का बर्तन, मोरी का गन्दा पानी कूड़ा-करकट या मैल जमा करने की जगह, जो ऐसी भूमि या इमारत से संबधित हो, बन्द करना, हटाना, उसमें परिवर्तन करना, उसकी मरम्मत करना, उसकी सफाई करना, कीटाणुनाशक दवाइयों द्वारा उसे शुद्ध करना या अच्छी दशा में रखना ; या किसी ऐसे पाखाना, पेशाबखाने या नाबदान को जो किसी सड़क या नाली पर खुलता हो, हटाना या उसके किसी दरवाजे आदि को बदलना या उसके लिए नाली बनाना, या उसे एक उपयुक्त छत और दीवार या आड़ द्वारा राहगीरों या पड़ोस में रहनेवालों की दृष्टि से छिपाए रखना।

(ख) किसी निजी कुएँ, तालाब, हौज, जोहड़ (पोखर) गड्ढा या खुदी हुई गहरी जगह को जो उस भूमि या इमारत में हो जो स्वास्थ्य के लिए हानि-कारक हो, पड़ोस में रहने वालों के लिए नागवार हो, साफ करना, उसकी मरम्मत करना, उसे ढक देना, भरना, गहरा करना या उसमें से पानी निकालना।

(ग) वहाँ से बनस्पति, पेड़ों के नीचे उगनेवाली छोटी झाड़ियाँ नागफनी आदि को साफ करा देना।

(घ) वहां से धूल, गोबर, गलीज खाद या किसी बदबूदार चीज को हटाना और भूमि या इमारत की सफाई करना।

कुछ अफ़सरों के दुराचार की रिपोर्ट—यदि किसी पंचायत को अपने क्षेत्र के भीतर रहनेवाले किसी आदमी से अमीन, टीका लगानेवाले, कान्स्टेबल, पटवारी, सिंचाई-विभाग के पतरौल या किसी सरकारी विभाग के चपरासी के विरुद्ध सरकारी कर्त्तव्यों के पालन करने में दुराचार सम्बन्धी शिकायत मिले और उसका प्रगट रूप से प्रमाण हो तो उस पंचायत को अधिकार है कि वह उस शिकायत को अपनी रिपोर्ट के साथ उपयुक्त अधिकारी के पास भेज दे। उस अधिकारी का कर्त्तव्य होगा कि वह आवश्यक जांच करने पर उचित कार्रवाई करे और उसके नतीजे की सूचना पंचायत को भेज दे।

पंचायतों के ऐच्छिक कार्य—कुछ कार्य ऐसे हैं, जिनका करना पंचायतों की इच्छा और सुविधा पर निर्भर है। उदाहरण के लिए कोई पंचायत नीचे दी हुई बातों के सम्बन्ध में भी व्यवस्था कर सकती है:— (क) जन मार्ग के दोनों ओर तथा दूसरे सार्वजनिक स्थानों में पेड़ों को लगाना और उन्हें अच्छी दशा में रखना। (ख) मवेशियों की नस्ल सुधारना, उनकी चिकित्सा और उनके रोगों की रोक-थाम करना। (ग) गन्दे गड्ढों को भरवाना और भूमि को समतल कराना। (घ) गांव की रक्षा और चौकी पहरे के लिए, पंचायत और पंचायती अदालतों को उनके काम में सहायता करने के लिए और उनके द्वारा जारी किए हुए सम्मनों और नोटिसों की तामील करने के लिए गाँव-स्वयंसेवक दल का संगठन करना। (च) सरकारी ऋण प्राप्त करने, उसे आपस में बाँटने और उसके चुकाए जाने के सम्बन्ध में किसानों की सहायता करना और उनको परामर्श देना। (छ) सहकारिता सम्बन्धी कामों की उन्नति और बढ़िया बीज और औजारों के गोदाम (भण्डार) स्थापित करना। (ज) पुस्तकालय, वाचनालय, अखाड़े और क्लब आदि का संचालन करना। (झ) सार्वजनिक उपयोगिता के ऐसे अन्य कार्य करना, जिससे गाँववालों की नैतिक और भौतिक उन्नति हो। (ट) जिला-बोर्ड की अनुमति

से लोगों की भलाई के ऐसे अन्य कार्य करना जो जिला-बोर्ड के कार्यों के अन्तर्गत हों।

गाँव-कोष—गाँव-पञ्चायत के कोष को गाँव-कोष कहते हैं। इसमें निम्नलिखित रकमें जमा होती हैं :—

(१) जो पञ्चायत द्वारा लगाए हुए टैक्सों से वसूल हों।

(२) जो प्रान्तीय सरकार गाँव-सभा के सुपुर्द करे।

(३) जो किसी अदालत के हुक्म से जमा की जायँ।

(४) जो किसी अपराध के सम्बन्ध में राजीनामा होने पर प्राप्त हों।

(५) जो पञ्चायत के कर्मचारियों द्वारा इकट्ठा किया हुआ कूड़ा, गोबर, खाद, तथा मरे हुए जानवरों की लाशें बेचने से मिलें।

(६) जो नजूल की जमीन के लगान आदि के भाग के रूप में मिलें।

(७) जो सरकार, जिला-बोर्ड या दूसरे स्थानीय अधिकारी दें।

(८) जो ऋण या दान के रूप में प्राप्त हों।

पंचायतों की आर्थिक स्थिति—साधारण तौर पर पंचायतों की आय के साधन बहुत कम मालूम होते हैं, और उन्हें सरकार या जिला-बोर्ड की सहायता पर निर्भर रहना पड़ेगा। परन्तु पञ्चायतों को हिम्मत से काम लेना चाहिए, और स्वावलम्बी बनना चाहिए, गाँव में जो आदमी सम्पन्न या धनवान हों, उनसे दान के रूप में यथेष्ट सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। जो भाई पैसा खर्च नहीं कर सकते, वे लोक-हित के कामों में अपने शारीरिक श्रम से सहयोग प्रदान कर सकते हैं। मिसाल के तौर पर वे सड़क बनाने, कुएँ खोदने और नालियों आदि के बनवाने में सहायता कर सकते हैं। अस्तु, यह आवश्यक है कि पञ्चायत के अधिकारी और कार्यकर्त्ता अपने सद्व्यवहार, ईमानदारी और मितव्ययिता से गाँव वालों के विश्वास-पात्र हों, और गांव-फंड का एक-एक पैसा खूब सोच समझ कर खर्च करें।

(ख) जिला-बोर्ड आदि

बोर्ड के भेद—अब गांवों मे शिक्षा स्वास्थ्य आदि का कार्य करने वाली दूसरी संस्था—जिला-बोर्ड या जिला-मंडली आदि—का विचार करें। जिला-बोर्डों की स्थापना अंगरेजों ने सन् १८७० के बाद की। उनके द्वारा ग्राम-पञ्चायतों की शक्ति का ह्रास हो जाने पर उन्होंने अनेकानेक गांवों के बड़े-बड़े क्षेत्रों का कार्य संगठित करने के लिए बोर्ड बनाए। 'बोर्ड' शब्द का अर्थ संस्था या समिति है, चाहे वह किसी भी कार्य सम्बन्धी हो, परन्तु यहाँ इससे केवल उसी संस्था का आशय लिया जाता है, जो गांव वालों की सुविधाओं और उन्नति की व्यवस्था करे तथा उनके दैनिक जीवन में सहायक हो।

बोर्डों के निम्नलिखित तीन भेद हैं; किसी-किसी प्रान्त में तो इनमें से तीनों ही प्रकार के बोर्ड हैं; और कहीं-कहीं केवल दो या एक ही तरह के हैं:—

१—लोकल बोर्ड। यह एक गाँव में या कुछ ग्रामों के समूह में होता है।

२—ताल्लुका या सब-डिविजनल बोर्ड। यह एक ताल्लुके या सब-डिविजन में होता है। यह लोकल बोर्डों के काम की देख-भाल करता है।

३—जिला बोर्ड। यह एक जिले में होता है, और जिले भर के लोकल बोर्डों या ताल्लुका-बोर्डों का निरीक्षण करता है।

आसाम में केवल तालुका-बोर्ड ही हैं। मदरास में कुछ गांवों को मिलाकर उनकी यूनियन-कमेटियाँ बनाई गई हैं।

बोर्डों का संगठन; सदस्य—जिला-बोर्ड स्थापित करने का अधिकार राज्य-सरकार को है। उत्तर-प्रदेश में पचास से अधिक जिला-बोर्ड हैं। प्रत्येक बोर्ड में कुछ सदस्य, एक सभापति, एक सेक्रेटरी तथा

कुछ अन्य कर्मचारी रहते हैं। प्रत्येक जिला-बोर्ड के सदस्यों की संख्या राज्य के जिला-बोर्ड कानून से निश्चित रहती है। जिले के शहरी इलाके को छोड़कर शेष भाग को कुछ निर्वाचन-क्षेत्रों में बांट दिया जाता है, और प्रत्येक निर्वाचन-क्षेत्र से दो-तीन सदस्य चुने जाते हैं। इस प्रकार एक जिला-बोर्ड में चालीस-पैंतालीस सदस्य हो जाते हैं। सदस्यों का चुनाव लगभग चार वर्ष में होता है, पर राज्य-सरकार चुनाव की अवधि को बढ़ा सकती है। सदस्य अवैतनिक होते हैं; हां, उन्हें दौरे का भत्ता मिलता है।

सदस्यों का चुनाव संयुक्त प्रणाली से होता है; अर्थात् किसी उम्मेदवार के लिए केवल उसकी जाति या सम्प्रदाय के नहीं, वरन् सभी जातियों या सम्प्रदायों के निर्वाचक अपना मत दे सकते हैं। निर्वाचन या मतदान के लिए बालिग होना आवश्यक है, पर कोई ऐसा व्यक्ति निर्वाचित नहीं हो सकता, जो भारतीय नागरिक न हो, अथवा जो पागल या दिवालिया हो। जिला-बोर्ड का उद्देश्य गांवों की जनता की असुविधाएँ दूर करना तथा उसकी सेवा और उन्नति करना है; इसलिए मतदाताओं को उनका चुनाव करते समय अपने उत्तरदायित्व को भली भांति ध्यान में रखना चाहिए।

सभापति—जिला-बोर्ड के सदस्यों के नये चुनाव के साथ ही एक व्यक्ति बोर्ड का सभापति चुना जाता है। उसे जिला-बोर्ड के क्षेत्र के सब निर्वाचक प्रत्यक्ष मत से चुनते हैं। उपसभापति का निर्वाचन सदस्यों द्वारा ही होता है, और वह सभापति की अनुपस्थिति में उसका कार्य सम्पादन करता है। सदस्यों की तरह सभापति भी अवैतनिक होता है, और उसे दौरे के लिए भत्ता दिया जाता है। उसे कुछ वार्षिक भत्ता दिए जाने का विचार चल रहा है। अस्तु, वर्तमान दशा में प्रायः सभापति और सदस्यों को नियमानुसार विशेष आय नहीं होती, तो भी इन पदों को प्राप्त करने के लिए प्रायः बहुत जोर का संघर्ष रहता है। कुछ

आदमी इसलिए ही इन पदों के लिए चुनाव लड़ते हैं कि वे इनसे अनुचित लाभ उठा सकें,—अपने यार-दोस्त या सगे-सम्बन्धियों को सड़क आदि का ठेका दे सकें, या किसी प्रकाशक की पुस्तक अपने जिले के स्कूलों में जारी करा सकें। यह भावना लोक-हित-घातक है। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि निर्वाचन खूब सोच समझ कर किया जाय।

सेक्रेटरी आदि—प्रत्येक जिला-बोर्ड का एक सेक्रेटरी होता है। यद्यपि वह सभापति के अधीन होता है, वास्तव में सब काम की देख-भाल का काम उसी पर रहता है। बोर्ड के सब कर्मचारी उसके निरीक्षण में काम करते हैं। इस प्रकार इसके पद का महत्व स्पष्ट है। इसे निर्धारित वेतन मिलता है। बोर्ड में इसके अतिरिक्त एक इंजिनियर, एक स्वास्थ्य-पदाधिकारी, एक सफाई-निरीक्षक आदि विविध कर्मचारी रहते हैं। इनके अलावा बहुत से कलर्क और चपरासी आदि भी काम करते हैं। इन्हें भी निर्धारित वेतन दिया जाता है।

कार्य-पद्धति; कमेटियाँ—जिला-बोर्ड अपना कार्य कई कमेटियों या समितियों द्वारा करता है। नया चुनाव होने के बाद जब बोर्ड की पहली मीटिंग होती है तो सदस्य विविध कार्यों के लिए अलग-अलग कमेटि याँ बना देतें हैं, यथा शिक्षा-कमेटी, स्वास्थ्य-कमेटी, सफाई-कमेटी, पानी-कमेटी, निर्माण-कमेटी आदि। प्रत्येक कमेटी में तीन-चार या अधिक सदस्य होते हैं, और एक सभापति होता है। कमेटियों में शिक्षा-कमेटी बड़ी मानी जाती है; इसका सभापति जिला-बोर्ड के शिक्षा विभाग का चेयरमेन कहलाता है। इसका सम्बन्ध सैकड़ों अध्यापकों और हजारों विद्यार्थिओं से होता है। इन कमेटियों की मीटिंग समय-समय पर होती रहती है, और इनमें आवश्यक विषयों पर विचार होता है। बोर्ड के सदस्यों की मीटिंग महीने में एक बार होती है, आवश्यकता होने पर अधिक बार भी हो सकती है।

जिला-बोर्ड के कार्य—बोर्ड अपने क्षेत्र में शिक्षा, स्वास्थ्य यातायात और सफाई आदि के कार्य करता है, इसके अतिरिक्त उसे कृषि और पशुओं की उन्नति भी करनी होती है। इस प्रकार उसके मुख्य कार्य ये हैं:—१—सड़कें बनवाना और उनकी मरम्मत करवाना, पेड़ लगवाना तथा उनकी रक्षा करना। २—प्रारम्भिक शिक्षा का प्रचार करना (देहातों में प्राइमरी या मिडिल स्कूल जिला-बोर्डों के ही होते हैं।) ३—चिकित्सा और स्वास्थ्य का प्रबन्ध करना, चेचक या प्लेग आदि का टीका लगवाना, पशुओं के इलाज के लिए पशु-चिकित्सालय की व्यवस्था करना। ४—बाजार, मेला, नुमायश या कृषि-प्रदर्शनी आदि का प्रबन्ध करना। ५—पीने के पानी के प्रबन्ध के लिए तालाब या कुएँ खुदवाना या उनकी मरम्मत करवाना। ६—कांजी हौज अर्थात् ऐसे स्थान की व्यवस्था करना, जहाँ खेती आदि को नुकसान पहुँचाने वाले जानवर रोक कर रखे जाते हैं। [जिस आदमी का, पशु नुकसान करते हों, वह उन्हें इस स्थान में भेज देता है, जब उनका मालिक उन्हें लेने के लिए आता है, तो उसे निर्धारित जुर्माना देना पड़ता है।) ७—घाट, नाव, पुल आदि का प्रबन्ध करना। ८—सार्वजनिक सुभीते के अन्य आवश्यक कार्य करना। इस प्रकार बोर्डों का कर्तव्य महान है।

बोर्डों की आय—बोर्डों की आय अधिकतर उस महसूल से होती है जो भूमि पर लगाया जाता है, और जो सरकारी वार्षिक राजस्व या मालगुजारी के साथ ही प्रायः एक आना या अधिक फी रुपये के हिसाब से वसूल करके इन बोर्डों को दे दिया जाता है। इसके अतिरिक्त विशेष कार्यों के लिए सरकार उन्हें कुछ रकम कुछ शर्तों से प्रदान कर देती है। मकान बनाने आदि की सुधार-योजनाओं के लिए वे खुले बाजार में ऋण भी ले सकते हैं। आय के अन्य साधन तालाब, घाट, सड़क पर के महसूल-पशु चिकित्सा और स्कूलों की फीस, काँजी हौज की आमदनी, मेले नुमायशों पर कर, तथा सार्वजनिक उद्यानों का भूमि-कर हैं। प्रायः

लोकल बोर्डों या ताल्लुका-बोर्डों की कोई स्वतंत्र आय नहीं होती; उन्हें समय-समय पर जिला-बोर्डों से ही कुछ रुपया मिल जाता है। वे उस रुपये को जिला-बोर्डों की इच्छा या सम्मति के विरुद्ध खर्च नहीं कर सकते।

सरकारी नियंत्रण—जिला-बोर्डों के काम की देख-भाल कलेक्टर (या डिप्टी-कमिश्नर) अथवा कमिश्नर करते हैं। कलेक्टर को इस सम्बन्ध में बहुत अधिकार हैं; जब वह यह समझे कि जिला-बोर्डों का कोई काम, या कोई प्रस्ताव आदि ऐसा है, जिससे सार्वजनिक हित की हानि होगी तो वह उस काम को बन्द कर सकता है, तथा उस प्रस्ताव को अमल में लाये जाने से रोक सकता है। यदि प्रान्तीय सरकार यह समझे कि कोई बोर्ड अपना काम ठीक तरह नहीं करता और अपने अधिकारों का दुरुपयोग करता है, तो वह उसे तोड़ सकती है। इस दशा में उसका नया चुनाव होगा।

बोर्डों और पंचायतों का सम्बन्ध—लोकल बोर्ड, तालुका बोर्ड और जिला-बोर्डों आदि के कर्तव्य अपने-अपने क्षेत्र में उसी प्रकार के हैं, जैसे पंचायतों के हैं। उनके कुछ कार्यों में तो पूर्ण रूप से समानता है। वास्तव में दो प्रकार की संस्थाओं के कार्यों में स्पष्ट भेद होना चाहिए, जिससे एक क्षेत्र के एक कार्य की पूरी जिम्मेदारी एक ही संस्था पर हो। इस दृष्टि से बोर्डों का पुनः संगठन होना चाहिए। हमारा सुझाव है कि स्थानीय प्रबन्ध की सारी जिम्मेवरी गाँव-पञ्चायतों पर रहे, और जिला-बोर्ड अपने क्षेत्र की पञ्चायतों के ऊपर एक निरीक्षक संस्था हो। वह नीति निर्धारित करे और ऐसी योजनाओं में सहायक और पथ-प्रदर्शक हो जिनका सम्बन्ध कई पञ्चायतों के क्षेत्र से, अथवा जिले भर से हो। ऐसा होने की दशा में जिला-बोर्ड का नाम जिला-पञ्चायत हो सकता है। यह जिला-पञ्चायत जिला-मजिस्ट्रेट के लिए ग्राम-सम्बन्धी विषयों में एक अच्छी सलाहकार कमेटी का काम दे सकती है।

(ग) जनपद सभाएँ

जनपद सभा का क्षेत्र और सदस्य —मध्यप्रदेश में जिला-बोर्ड को पहले जिला-कौंसिल कहा जाता था। सन् १६४८ से जिला कौंसिलों, तथा लोकल और तालुका-बोर्डों को समाप्त करके जनपद योजना काम में लाई जा रही है। प्रत्येक तहसील या तालुका में जदपद सभा स्थापित की गयी है। इस इकाई का क्षेत्रफल मोटे तौर पर डेढ़ सौ, दो सौ वर्ग मील के लगभग है। राज्य की म्युनिसपेलटियां पूर्ववत अपनी स्वतंत्र अवस्था में हैं। प्रत्येक जनपद सभा में उस क्षेत्र की जनसंख्या के अनुसार २० से ४० तक सदस्य होंगे। इनका चुनाव नागरिक तथा ग्रामीण दोनों क्षेत्रों से बालिग मताधिकार के अनुसार हुआ करेगा। (अभी आरम्भ में तो सदस्य नामजद कर दिए गए हैं)।

स्थायी समितियाँ—प्रत्येक जनपद सभा में अर्थ, लोककर्म, सार्वजनिक स्वास्थ्य, शिक्षा, कृषि तथा विकास विभागों की छः स्थायी समितियां होंगी, तथा स्वतः उनके द्वारा निर्वाचित अध्यक्ष होगा। यद्यपि स्थायी प्रबंध सम्बन्धी नीति-निर्धारण का कार्य सम्पूर्ण जनपद सभा द्वारा ही किया जायगा तथापि उसका कार्यान्वित करना इन्हीं स्थायी समितियों के हाथ में रहेगा तथा इसमें इनको सरकारी कर्मचारियों की सहायता भी प्राप्त होती रहेगी।

कर्मचारी—प्रत्येक जनपद सभा में एक चीफ एग्जीक्यूटिव अफसर और एक डिप्टी-चीफ-एग्जीक्यूटिव अफसर रहेगा, जो क्रमशः उस तहसील या तालुके का सब-डिविजनल अफसर तथा तहसीलदार हो। अन्य वैभागिक कर्मचारियों की सेवा प्राप्त करने की भी व्यवस्था रखी गई है, जिनमें से टैक्निकल अधिकारी तत्सम्बन्धी स्थायी समिति के सचिव के रूप में कार्य करते रहेंगे।

आर्थिक व्यवस्था—म्युनिसपेलटियाँ जनपद सभा को नियमित रूप से निश्चित धन राशि देंगी। व्यक्तिगत बाजारों को सार्वजनिक बाजार घोषित करने के उपरान्त मिलने वाले कर, तथा मालिक-मकबूजा जमीन के मालिक या ठेकेदार से (जिनकी संख्या मालगुजारी उन्मूलन के उपरान्त बहुत बढ़ जाने वाली है) उनके लगान पर प्रति रुपया १८ पाई का 'सेस' जनपद सभाओं की आय के प्रधान स्त्रोत हैं। कृषि-इतर आय पर शिक्षा-कर तथा प्रति रुपया पीछे बारह पाई का ऐच्छिक कर लगाने का भी अधिकार जनपद को है। अन्य प्रकार के कर भी, जनपद सभा द्वारा प्रांतीय सरकार की अनुमति से, लगाये जा सकते हैं।

जनपद सभा के अधिकार—नागपुर और जबलपुर म्युनिसपल कारपोरेशन—केवल ये दो संस्थाएँ जनपद सभाओं से पूर्ण स्वतंत्र रहेंगी। शेष सब क्षेत्र में जनपद सभाओं को म्युनिसपेलटियों से अधिक महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व सौंपा गया है। यदि कोई नगरपालिका अपने क्षेत्र में जल-पूर्ति, रोग-प्रतिबंध, औषधि-प्रचार, सड़कों के निर्माण आदि विशिष्ट कार्य को ठीक ढंग से नहीं चला रही है तो सभा को यह अधिकार है कि वह तत्सम्बन्धी शिकायतों को सरकार के पास भेजे और सरकारी जांच के बाद आवश्यक कार्रवाही के लिये स्थानीय अधिकारियों को उचित आदेश दे। आवश्यक होने पर सरकार सम्बन्धित कार्य को कुछ निर्धारित समय के लिये सभा के अधिकार में दे सकती है और सभा इस कार्य के लिये खर्च की गई रकम नगरपालिका से वसूल कर सकती है। राज्य-सरकार नगरपालिका के सम्बन्ध में अपने अन्य अधिकार भी जनपद सभाओं को सौंप सकती है।

जनपद सभा को यह अधिकार है कि वह अपने क्षेत्र की ग्राम-पंचायतों के कार्य का परीक्षण, निरीक्षण तथा नियंत्रण करे। उसका यह प्रमुख कर्तव्य होगा कि वह ग्राम–पंचायतों के द्वारा उन कार्यों को उचित रूप से संपन्न कराये।

गांव वालों का उत्तरदायित्व—भारत के स्वाधीन होने पर गांव वालों को अपनी स्थानीय संस्थाओं—पंचायतों, जिला-बोर्डों और जनपद-सभाओं—द्वारा अपने क्षेत्र की भौतिक तथा नैतिक उन्नति करने का अपूर्व अवसर मिला है। उन्हें चाहिए कि अपने उत्तरदायित्व को समझें और अपने नये अधिकारों का सोच-समझ कर सावधानी से उपयोग करें। बहुत से स्थानों में जातिगत, साम्प्रदायिक या अन्य प्रकार की दलबन्दी का रोग बुरी तरह घुसा हुआ है, आदमी तुच्छ स्वार्थों की पूर्ति में लगे हुए हैं। इन बातों का परित्याग होना चाहिए। हम सर्वोदय की भावना रखें। तभी उक्त संस्थाओं का उद्देश्य पूरा होगा।

इस समय अधिकतर गांव बीमारियों के केन्द्र बने हुए हैं, वे इतने गन्दे हैं कि वहाँ, खासकर शहर वालों का रहना कठिन है। इन गांवों को सुन्दर स्वच्छ और निरोग बनाना है, इन्हें भले आदमियों के रहने योग्य बनाना है, ग्राम-जीवन की महिमा बढ़ानी है। इस महान कार्य को करने के लिए गाँव वाले और गाँव-पंचायतें कटिबद्ध हो जायँ।

छब्बीसवाँ अध्याय

स्थानीय शासन-संस्थाएँ

(२) म्युनिसपेलटियाँ आदि

ऐसे समय में जब लोग अपने मौलिक अधिकारों के प्रति सर्वाधिक, और मौलिक कर्तव्यों के प्रति न्यूनतम, जागरुक हैं, यह आपका (स्थानीय संस्थाओं का) काम है कि नागरिक जीवन के प्राथमिक दायित्व और कर्तव्य का आप स्वयं पालन करें और उन सब लोगों को बताएँ जो नित्य आपके निकट सम्पर्क में आते हैं। जहाँ तक सम्भव हो, स्वावलम्बन, और जहाँ आवश्यक हो सहयोगात्मक उद्योग, दोनों नागरिक जीवन की कुंजी हैं।

—सरदार पटेल

पिछले अध्याय में गांवों से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं का विचार किया गया; अब म्युनिसपेलटियों आदि ऐसी संस्थाओं का विचार करेंगे, जिनका कार्य-क्षेत्र शहर या नगर हैं। इन क्षेत्रों की परिस्थिति ध्यान में रखना उपयोगी है।

शहरों की समस्याएँ—भारत में लगभग ८६ प्रतिशत जनता गाँवों में, और शेष ११ प्रतिशत जनता शहरों में रहती है। परन्तु जैसा पहले कहा गया है कि शहरों में रहने वालों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। व्यापार, उद्योग-धंधों आदि की वृद्धि के कारण नए-नए शहर बनते जा रहे हैं। प्रायः हरेक शहर की आबादी बढ़ रही है, इससे उनका विस्तार बहुत अधिक हो गया है। कुछ शहर अपनी पहली सीमा

से बाहर इतने बढ़ गए हैं कि उनकी नई बस्ती पुरानी से भी अधिक हो गई है। शहरों की पुरानी चारदिवारियों को जगह-जगह से तोड़ कर पुरानी बस्ती को नई बस्ती से जोड़ा गया है। कुछ शहर तो अपने पास के गाँवों को भी अपने अन्दर मिला चुके हैं। फिर भी उनमें वहाँ के आदमियों के रहने के लिए जगह काफी नहीं है। मकानों का किराया बेहद बढ़ा हुआ है। अनेक आदमी बहुत अधिक किराया देने को तैयार रहने पर भी मकान नहीं पा रहे हैं, और किसी तरह अपने यार-दोस्तों या सगे सम्बन्धियों के यहाँ अथवा धर्मशाला या होटलों आदि में गुजर करते हैं। यह बात थोड़े ही समय चल सकती है, इसलिए इन्हें बार-बार नए निवास-स्थान की तलाश करने की समस्या का सामना करना पड़ता है।

शहरों में मकान कई-कई मंजिलों के हैं। इनमें हवा और रोशनी की समुचित व्यवस्था नहीं होती। नीचे की मंजिल में रहनेवालों को गर्मी की मौसम में रात में सोने की बड़ी असुविधा रहती है, सबके लिए ऊपर छतों पर जगह नहीं होती। कितने ही मकानों की छतों का बहुत सा भाग टीन, छप्पर, कवेलुओं या खपरेलों से छाया हुआ होने के कारण सोने योग्य नहीं होता। इस प्रकार बहुत से आदमी रात को सड़कों या गलियों में सोते हैं, जहाँ पास में ही गन्दे पानी की नालियाँ बहती रहती हैं। शहरों के मकानों में पानी का अलग ही कष्ट है। अधिकतर शहरों में अब कुंओं का तो चलन रहा ही नहीं, नलों का प्रबन्ध है, और वह काफी नहीं है। प्रायः पानी चौबीसों घंटे न आकर, निर्धारित समय में ही आता है। वह भी कहीं-कहीं तो दूसरी मंजिल पर भी मुश्किल से पहुँच पाता है; फिर तीसरी या चौथी मंजिल की तो बात ही क्या!

शहरों में सड़कें और नालियाँ कुछ खास-खास बाजारों में ही ठीक हैं। जरा अन्दरूनी या भीतरी हिस्सों में जाइए, तो आपको उनकी दुर्गति स्पष्ट हो जायगी। बस्ती इतनी घनी हो गई है कि सड़कें यातायात के लिए बहुत कम चौड़ी मालूम होती हैं। आदमी नागरिकता के ज्ञान से इतने

यह निश्चित रहता है। प्रत्येक निर्वाचक, म्युनिसपेलटी का सदस्य बनने के लिए उम्मेदवार हो सकता है। जिसके पक्ष में अधिक मत या 'वोट' आते हैं, वह सदस्य चुना जाता है। [सदस्य के लिए अँगरेजी शब्द 'मेम्बर' है, यह भी बोलचाल में काम आता है।] सदस्य 'म्युनिसपल कमिश्नर कहलाते हैं। म्युनिसपल कमिश्नर होकर आदमी अपने नगर के सुधार तथा उन्नति का बहुत काम कर सकते हैं, उन्हें जनता की सेवा का बहुत अवसर मिलता है। जो सज्जन शिक्षित हों और इस कार्य के लिए यथेष्ट समय देकर जनता की सेवा करना चाहें, उन्हें ही यह पद प्राप्त करना चाहिए। केवल प्रतिष्ठा के लए 'म्युनिसिपल कमिश्नर' बनना, और पीछे अपना कर्तव्य और उत्तरदायित्व ठीक तरह न निभाना अनुचित है।

सभापति, उपसभापति—सभापति म्युनिसपल बोर्ड के निर्वाचकों के प्रत्यक्ष मत से चुना जायगा। उपसभापति सदस्यों द्वारा ही चुना जाता है। इस पद के लिए प्रायः दो व्यक्ति चुने जाते हैं—एक सीनियर वाइस-चेयरमेन कहलाता है; दूसरा, जिसका पद इससे छोटा होता है, जूनियर वाइस-चेयरमेन कहा जाता है। सभापति और उपसभापति अवैतनिक होते है, अर्थात् इन्हें कुछ वेतन नहीं मिलता; हाँ, दौरे का भत्ता दिया जाता है।

कर्मचारी—सभापति और उपसभापति के अतिरिक्त प्रत्येक म्युनिसपेलटी में कुछ वेतन पाने वाले कर्मचारी होते हैं। इनमें सेक्रेटरी का पद बहुत महत्व का होता है। वह म्युनिसपल आफिस का प्रधान कर्मचारी होता है। उसकी नियुक्ति तो म्युनिसपल कमेटी द्वारा ही होती है, परन्तु उसमें प्रायः शर्त यह रहती है कि उस आदमी को सरकार पसन्द करले।

सफाई के काम की देख-भाल के लिए हैल्थ-आफिसर तथा सेनिटरी इन्स्पेक्टर, और मेहतरों के काम की निगरानी के लिए जमादार रहते हैं।

नल या पानी के इन्तजाम के लिए तथा सड़क, पुल आदि की मरम्मत के लिए इंजिनियर और ओवरसियर होते हैं। इनके अलावा कुछ और भी कर्मचारी रहते हैं।

म्युनिसपेलटियों के कार्य—साधारण तौर से म्युनिसपेलटियों के मुख्य कार्य ये हैं :—

(१) सर्वसाधारण की सुविधा की व्यवस्था करना। सड़कें बनवाना, उनकी मरम्मत कराना, उन पर छिड़काव कराना और पेड़ लगवाना, डाक-बंगला या सराय आदि सार्वजनिक मकान बनवाना, कहीं आग लग जाय तो उसे बुझवाना, अकाल में या जल की बाढ़ या अन्य विपत्ति के समय जनता की सहायता करना, व्यापार और उद्योग-धंधों की उन्नति, मकान बनवाना या नगर-निर्माण योजना अमल में लाना, सिनेमाघर बनवाना, मजदूरों का कुशल-क्षेम।

(२) स्वास्थ्य-रक्षा। अस्पताल या औषधालय खोलना, चेचक और प्लेग के टीके लगाने तथा मैले पानी बहने का प्रबन्ध करना, और छूत की बीमारियाँ रोकने के लिए उचित उपाय काम में लाना। पीने के लिए स्वच्छ जल (नल आदि) की व्यवस्था करना, खाने के पदार्थों में कोई हानिकारक वस्तु तो नहीं मिलायी गयी है, इसका निरीक्षण करना, शारीरिक उन्नति के उपाय, व्यायाम आदि की व्यवस्था।

(३) शिक्षा। विशेषतया प्रारम्भिक शिक्षा के प्रचार के लिए पाठ-शालाओं की समुचित व्यवस्था करना, मेले और नुमायश कराना।

(४) रोशनी (जिसमें बिजली की रोशनी भी सम्मिलित है) कराना, ट्रामवे तथा छोटी रेलों के बनाने में सहायता देना।

कार्य-पद्धति—म्युनिसपेलटी अपने कार्य की सुविधा के लिए सारा प्रबन्ध विविध कमेटियों द्वारा करती है। प्रत्येक कमेटी में प्रायः ५ से १० तक सदस्य होते हैं। हर एक कमेटी का एक सभापति होता है।

एक व्यक्ति दो या अधिक कमेटियों का भी सदस्य हो सकता है। कमेटियों की नियुक्ति बोर्ड स्वयं करता है। कमेटी में ऐसे आदमी भी मिला लिए जाते हैं जो म्युनिसपेलटी के सदस्य न हों, पर उस विषय में अनुभवी हों, जिसकी कि वह कमेटी है। ऐसे सदस्य को 'को-आप्टेड' या मिलाए हुए सदस्य कहते हैं। मुख्य कमेटियाँ निम्नलिखित होती हैं—(१) राजस्व (फाइनेन्स) कमेटी, (२) शिक्षा कमेटी, (३) स्वास्थ्य कमेटी, (४) निर्माण-कार्य (पब्लिक वर्क्स) कमेटी, (५) चुङ्गी ('आक्ट्राय') कमेटी।

राज्य-सरकार म्यूनिस्पेलटी के काम की देख-भाल और नियन्त्रण करती है। कमिश्नर बजट की जाँच करता है और अनुचित समझे जाने वाले खर्चे को रोक सकता है।

आमदनी के साधन—इन संस्थाओं की आमदनी के मुख्य-मुख्य साधन ये हैं :—(१) चुङ्गी। अधिकतर उत्तर भारत, बम्बई और मध्यप्रदेश में; यह इन संस्थाओं की सीमा के अन्दर आनेवाले माल तथा जानवरों पर लगती है। उत्तरप्रदेश में इस कर की इतनी प्रधानता है कि कुछ जिलों में म्युनिसपेलटियों का नाम ही चुङ्गी पड़ गया है। (२) मकान और जमीन पर कर (विशेषतया आसाम, बिहार, उड़ीसा, बम्बई, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में)। (३) व्यापार और पेशों पर कर (विशेषतया मदरास, उत्तरप्रदेश, बम्बई, मध्यप्रदेश और पश्चिमी बंगाल में)। (४) सड़कों और नदियों के पुलों पर कर (विशेषतया मदरास, बम्बई, और आसाम में)। (५) सवारियों, गाड़ी, बग्घी, साइकिल मोटर और नाव का शुल्क। (६) पानी, रोशनी, हाट-बाजार, कसाई-खाने, पाखाने आदि का शुल्क (७) हैसियत, जायदाद और जानवरों पर कर। (८) यात्रियों पर कर। यह कर निर्धारित दूरी से अधिक के फासले से आने वालों पर लगता है और प्रायः रेलवे टिकट के मूल्य के साथ ही वसूल कर लिया जाता है। (९) म्युनिसिपल स्कूलों की फीस। (१०) कांजी हौस की फीस।

इसके अतिरिक्त म्युनिसिपल बोर्डों को राज्य की सरकार से भी आर्थिक सहायता मिलती है और वे स्वयं भी व्यापार करके अपनी आय बढ़ा सकते हैं। प्रत्येक बोर्ड के पास कुछ निजी सम्पत्ति भी होती है, जिसकी बिक्री करके या उसे किराए पर देकर वह आय प्राप्त कर सकता है। राज्य-सरकार की अनुमति से वह नए कर भी लगा सकता है। आवश्यकता पड़ने पर वह उससे, अपनी स्थिति के अनुसार, ऋण भी ले सकता है।

खर्च और उसका ढंग—म्युनिसपेलटियों का व्यय उनके अनेक कर्तव्यों के पालन में होता है। विशेष व्यय सार्वजनिक सुविधा, सार्वजनिक सुरक्षा, सार्वजनिक शिक्षा, सामान्य प्रशासन में और आय एकत्रित करने में तथा ऋण चुकाने आदि में होता है। म्युनिसपेलटियों द्वारा प्रति वर्ष लाखों रुपया खर्च किया जाता है। परन्तु बहुत सी म्युनिसपेलटियों में संतोषप्रद कार्य नहीं होता। इसका मुख्य कारण म्युनिसपल कर्मचारियों तथा बोर्ड के सदस्यों की असावधानी, तथा अनुत्तरदायित्व पूर्ण ढ़ङ्ग से कार्य करना है। उन्हें अपनी स्वार्थपरता को छोड़कर ईमानदारी से काम नहीं करना चाहिए।

सरकारी नियंत्रण—प्रायः म्युनिसपेलटियों को धन की बड़ी जरूरत रहती है। जिन कामों के लिए वे सरकार से सहायता लेती हैं, उनके सम्बन्ध में उन्हें सरकारी शर्तों का पालन करना पड़ता है। कुछ म्युनिसपेलटियों को अपना वार्षिक बजट सरकार से स्वीकार कराना होता है, तथा कुछ के लिए यह आवश्यक है कि यदि वे कोई नया कर लगावें तो पहिले उसकी स्वीकृति ले लें। म्युनिसपेलटियों के कामों की देख-रेख सरकार करती है, यदि किसी का काम ठीक न हो तो सरकार उसे तोड़ भी सकती है।

कारपोरेशन

कलकत्ता, बम्बई और मदरास शहर में कारपोरेशन स्थापित हैं। इनके कार्य तथा कार्यपद्धति आदि म्युनिसपैलटियों के ही समान हैं; केवल इनका दर्जा ऊँचा है। बड़े शहरों की आवश्यकताओं की पूर्ति के विचार से इनका संगठन प्रभावशाली बनाया जाता है। इनके सदस्यों का चुनाव तीन साल के लिए होता है। कारपोरेशन के चेयरमेन को 'मेयर' और वाइस-चेयरमेन को 'डिप्टी मेयर' कहते हैं। ये दोनों पदाधिकारी इसके सदस्यों में से ही चुने जाते हैं। इनका चुनाव प्रतिवर्ष होता है। इन्हें वेतन नहीं दिया जाता। कारपोरेशन अपने सारे कामों की देखरेख के लिए एक वैतनिक पदाधिकारी नियुक्त करती है, जिसे एक्जीक्यूटिव अफसर कहते हैं। इसके अतिरिक्त एक इन्जीनियर, एक स्वास्थ्य-अफसर, एक सहायक एक्जीक्यूटिव अफसर होते हैं। सब को कारपोरेशन स्वयं नियुक्त करती है, परन्तु राज्य सरकार से इनकी मंजूरी लेनी होती है। कारपोरेशन अपने सदस्यों की विभिन्न कमेटियों का संगठन करके उन्हें भिन्न भिन्न कार्य बांट देती है।

नागपुर और जबलपुर आदि में भी कारपोरेशन स्थापित करने का विचार हो रहा है।

टाउन एरिया और नोटिफाइड एरिया

जिन कस्बों की जनसंख्या दस हजार से लेकर बीस हजार तक होती है, उनकी स्थानीय शासन-संस्थाएँ 'टाउन एरिया' कही जाती है, और जिनकी जनसंख्या पांच हजार और दस हजार के बीच में होती है, उनकी स्थानीय शासन-संस्थाएँ 'नोटीफाइड एरिया' कहलाती है। ये अधिकतर पंजाब और उत्तरप्रदेश में है। इन्हें म्युनिसपेल्टियों के थोड़े-थोड़े अधिकार होते हैं। ये अपने-अपने क्षेत्र में स्वच्छता, पीने के पानी का प्रबन्ध, सड़कों का प्रबन्ध, हानिकारक व्यापार एवं व्यवसाय पर नियन्त्रण रखने आदि का कार्य करती

हैं। म्युनिसपेलटियों की अपेक्षा इनकी आय कम होती है, और इनके अधिकतर सदस्य मनोनीत होते हैं।

टाउन-एरिया के लिए एक टाउन समिति (कमेटी) होती है। इसमें एक चेयरमेन, पाँच और सात के बीच में चुने हुए सदस्य, और दो मनोनीत सदस्य होते हैं। इन सदस्यों की अवधि चार साल की होती है। इनका निर्वाचन तथा काम म्युनिसपेल्टी के समान ही होता है।

नोटीफाइड एरिया के लिए तीन या चार सदस्यों की एक समिति होती है। इसके सदस्य या तो सरकार द्वारा निर्धारित नियमों के अनुसार, वोटरों द्वारा निर्वाचित होते हैं, या कमिश्नर द्वारा मनोनीत, या कुछ निर्वाचित और कुछ मनोनीत होते हैं। इसका चेयरमेन या तो सरकार द्वारा मनोनीत होता है या जनता द्वारा निर्वाचित। इनमें अन्य विविध कर्मचारी होते हैं, जो अपने-अपने क्षेत्र में कार्य करते हैं।

इन समितियों के अधिकार और कर्तव्य सीमित होते हैं। म्युनिसपेलटियों से इनकी आय कम होती है। ये केवल छोटे-छोटे कर जैसे घर, भूमि, तथा जायदाद पर कर लगा सकती है। प्रत्येक क्षेत्र [एरिया] का एक फंड होता है। इसके फंड को नीचे लिखे श्रोतों से आय होती है :—न्यायालय द्वारा दिलवाई हुई रकम, करों की आय, जुर्मानों की आय, एरिया के कर्मचारियों द्वारा एकत्रित गोबर आदि की बिक्री की आय, नजूल की भूमि का किराया, उसकी बिक्री की आय, जिला-बोर्ड और सरकार की दी हुई सहायता। इस कोष का रुपया सड़कों का निर्माण कराने उनकी मरम्मत कराने, कुँए तथा तालाब खुदवाने और उनको सुरक्षित रखने, पीने का पानी का प्रबन्ध करने, सफाई तथा रोशनी आदि का प्रबन्ध करने में और अपने क्षेत्र की उन्नति में खर्च किया जाता है। सरकारी कर्मचारी एस० डी० ओ० (सब-डिवीजन-अफसर) या तहसीलदार इनके कार्यों की देख-रेख करते हैं।

केन्टूनमेंट बोर्ड

बड़े नगरों के वे भाग, जिनमें सेना रहती है, म्युनिसपेलटी के अधिकार-क्षेत्र से बाहर होते है। ऐसे क्षेत्रों के लिए निर्वाचित बोर्ड 'केन्टूनमेंट (छावनी) बोर्ड' कहलाता है। इसका सभापति कोई सरकारी कर्मचारी होता है। इस बोर्ड के अधिकार और कर्तव्य म्युनिसपेलटी की तरह के होते हैं। इसके प्रबन्ध पर अन्तिम नियंत्रण सेना-विभाग का रहता है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट

बड़े-बड़े शहरों की उन्नति या सुधार के लिए कभी-कभी विशेष कार्य करने होते हैं; जैसे सड़कों को चौड़ी करना, घनी बस्तियों को हवादार बनाना, गरीबों और मजदूरों के लिए मकानों की सुव्यवस्था करना आदि। इन कामों को म्युनिसपेलटियाँ नहीं कर सकतीं; उन्हें तो अपना रोजमर्रा का काम ही बहुत है। अतः इनके वास्ते 'इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट' बनाये जाते हैं। ये कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद लखनऊ और कानपुर आदि में हैं। इनके सदस्य प्रान्तीय सरकार, म्युनिसपेलटियों तथा व्यापारिक संस्थाओं द्वारा नामजद किए जाते हैं। इनकी नियुक्ति तीन वर्ष के लिए की जाती है। ट्रस्ट की बैठक साधारणतया प्रति मास होती है। सदस्य अपने में से किसी को चेयरमैन चुन लेते हैं। ट्रस्ट एक वैतनिक सेक्रेटरी तथा अन्य कर्मचारियों को नियुक्त करता है। वह अपने अधिकारगत भूमि आदि का किराया या कीमत तथा आवश्यकतानुसार ऋण या सहायता लेता है।

इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट की स्थापना इसलिए की जाती है कि वह शहर को या उसके खास-खास हिस्सों को नए ढंग से, एक निर्धारित योजना के अनुसार, बसाने का प्रबन्ध करे, जिससे घरों की बनावट में हवा और रोशनी का काफी ध्यान रखा जाय। शहर को नए ढंग से बसाने या उसमें कुछ परिवर्तन करने में कुछ लोगों को बहुत हानि भी सहनी पड़ती है। उनके मकान गिराए जाते हैं और उन्हें मुआवजे में मामूली रकम मिलती है।

इसलिए अनेक स्थानों में इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट का बहुत विरोध होता है। परन्तु लोगों को लोकहित की भावना से एक सीमा तक अपनी निजी हानि सहने के लिए तैयार रहना चाहिए।

पोर्ट ट्रस्ट

उन बड़े-बड़े नगरों में जो समुद्र के किनारे पर हैं—जैसे कलकत्ता, बम्बई, तथा मदरास में कारपोरेशन, तथा इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट के अतिरिक्त पोर्ट-ट्रस्ट भ स्थापित किए गए हैं। इन संस्थाओं का मुख्य कार्य, समुद्र के किनारे घाट बनवाना, मालगोदाम बनवाना, माल की लदाई और उतराई की समुचित व्यवस्था रखना, माल को गोदामों में सुरक्षित रखना और उसकी देखभाल रखना, यात्रियों की सुविधा का प्रबन्ध करना और बन्दरगाहों की अन्य आवश्यकताओं को पूरा करना है। इन ट्रस्टों के सदस्य कुछ तो सरकार द्वारा मनोनीत होते हैं, कुछ चेम्बर-आफ-कामर्स जैसी व्यापारिक संस्थाओं से निर्वाचित और कुछ कार्पोरेशन द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। कलकत्ते के अतिरिक्त सब पोर्ट-ट्रस्टों में निर्वाचित सदस्यों की संख्या मनोनीत सदस्यों से अधिक रहती हैं। समुद्रतट, नगर के निकटवर्ती समुद्र-भाग या नदी पर इनका अधिकार होता है। इनकी पुलिस अलग रहती है। इनके सभासद कमिश्नर या ट्रस्टी कहलाते है। इनके प्रबन्ध में सरकारी नियंत्रण अधिक रहता है। पोर्ट ट्रस्ट की आय के साधन ये हैं:—माल की लदाई और उतराई, गोदामों के किराये तथा जहाजों के कर। इन्हें आवश्यक कामों के लिए कर्ज लेने का भी अधिकार है।

× × ×

विशेष वक्तव्य—हमारी स्थानीय शासन संस्थाओं में, कुछ थोड़े से अपवादों को छोड़ कर, ऊँची योग्यता या आदर्श वाले व्यक्ति कम जाते हैं; अनेक आदमी कोई खास कार्यक्रम लेकर नहीं पहुँचते; व्यक्तिगत स्वार्थ,

कीर्ति या यश आदि के लिए जाते हैं, और दलबन्दी करते हैं, जिससे सार्वजनिक हित की उपेक्षा होती है। मतदाताओं को चाहिए कि मित्रता या रिश्तेदारी आदि का लिहाज छोड़कर, कार्य करनेवाले सदस्य निर्वाचित किया करें, और समय-समय पर इस बात की जांच करते रहें कि सदस्य अपने कर्तव्य का समुचित पालन करते हैं या नहीं। पुनः हमारी अधिकांश म्युनिसपेलटियों की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं है। इनकी आय बहुत कम है, और इन्हें अपने कार्य के लिए, आवश्यक धन के वास्ते परमुखापेक्षी रहना पड़ता है। इसलिए इनके द्वारा किए जाने वाले कार्यों का असन्तोषप्रद रहना स्वाभाविक ही है।

यह भी उल्लेखनीय है कि यद्यपि इन संस्थाओं की स्थापना का कार्य आरम्भ हुए, सौ वर्ष होने को आए, अब तक इन्हें स्थानीय पुलिस आदि सम्बन्धी नवीन अधिकार नहीं दिए गए। अब देश स्वतंत्र हो गया है; आशा है, ये अपने महान् कर्तव्यों को पूरा करने योग्य बनाई जायंगी। अन्य बातों में इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इनके सदस्य अपने उत्तरदायित्व का ध्यान रखें। जनता में उन्हें 'नगर-पिता' कहा जाता है। उन्हें चाहिए कि वे नगर निवासियों के हित और उन्नति में उसी प्रकार लीन रहें, जैसे एक योग्य पिता अपनी संतान के लिए रहता है।

---:०:---

सत्ताइसवाँ अध्याय

सरकारी नौकरियाँ

जनता की अभिलाषा-आकांक्षाओं को साकार बनाने का कार्य मन्त्रियों का होता है। परन्तु मन्त्रियों की बनाई हुई योजनाओं व आदेशों को ठीक ढंग से कार्य-रूप में परिणत करने का कर्तव्य-भार शासन-यन्त्र का ही होता है। अब यदि उस शासन-यन्त्र की चालक नौकरशाही विरोधी भाव, कर्तव्यभावना-हीन व निकम्मी हो तब फिर क्या होगा!

—'प्रताप'

सरकारी नौकरों का महत्व—शासन-कार्य का जनता के लिए यथेष्ट हितकर होना, या न होना कायदे-कानून के अतिरिक्त, बहुत-कुछ सरकारी कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव और देश-हितैषिता पर निर्भर होता है। देश का संविधान कितना ही अच्छा क्यों न हो, उसके मंत्री कितने ही लोकप्रिय और देश-प्रेमी क्यों न हों, यदि उनके अधीन काम करनेवाले सरकारी कर्मचारी योग्य न हों तो शासन अच्छा नहीं हो सकता। जनता को सुखी रखने और देश की उन्नति करने के लिए कर्तव्य-परायण, सेवा-भावी, निष्पक्ष और ईमानदार सरकारी कर्मचारियों की आवश्यकता है। इसके अतिरिक्त लोकतंत्रात्मक शासन-प्रणाली में मंत्रि-परिषद तो समय-समय पर बदला करती है परन्तु राज्य के कर्मचारी अपने स्थानों पर बने रह कर इस परिवर्तन से प्रशासन कार्य में कोई अव्यवस्था होने से रोक सकते है। मंत्रि-परिषद का कार्य नीति निर्धारित करना होता है। राज्य के स्थायी कर्मचारी ही उस नीति के अनुसार शासन-

कार्य चलाते हैं। इससे इनका महत्व स्पष्ट है। भारत अब स्वतंत्र हो गया है। तथापि सरकारी नौकरियों का ढांचा बहुत कुछ वही है, जो अँगरेजों के समय में था; अँगरेजों की चलाई हुई कुछ परम्पराएँ अभी बनी हुई है। इसलिए भारत की सरकारी नौकरियों सम्बन्धी वर्तमान स्थिति का विचार करने से पहले यह जानलें कि अँगरेजों के समय में यहां उनकी क्या व्यवस्था थी।

अँगरेजों के समय में सरकारी नौकरियाँ—भारतवर्ष में सर्वोच्च पदों के लिए नियुक्तियां सम्राट् द्वारा होती थीं। इनमें गवर्नर-जनरल, कमांडरनचीफ, तथा बङ्गाल, बम्बई और मदरास के गवर्नर आदि शामिल थे। इन पदों से नीचे इंडियन सिविल सर्विस (आई० सी० एस०) का दर्जा था, इसकी ट्रेनिंग इंगलैंड में होती थी। इसके कर्मचारी प्रायः प्रांतों का ही काम करते थे, परन्तु क्योंकि इनकी भर्ती भारत मंत्री-द्वारा समस्त भारत के लिए होती थी, ये आल-इंडिया (अखिल भारत वर्षीय) सर्विस वाले कहलाते थे। इनमें से ही जिला-मजिस्ट्रेट, सेशन जज, कमिश्नर, आदि की नियुक्ति होती थी। यहां तक कि ये बंगाल, बम्बई और मदरास को छोड़कर, अन्य प्रांतों के गवर्नर तक हो सकते थे। इनके बाद, दूसरा नम्बर उन कर्मचारियों का था, जो प्राविन्शल (प्रान्तीय) सिविल सर्विस (पी० सी० एस०) के भिन्न-भिन्न विभागों में, अपनी योग्यतानुसार नियत किए जाते थे। भरती के लिए कभी तो परीक्षा होती थी, और कभी नीचे की सर्विस के आदमी उसमें बदल दिए जाते थे। प्रांतीय सिविल सर्विस में प्रान्त का नाम होता था, जैसे मदरास सिविल सर्विस। इस सर्विस में डिप्टी कलेक्टर, मुन्सिफ, स्कूलों के इन्स्पेक्टर, कालेजों के प्रोफेसर, आदि कर्मचारी होते थे। प्रान्तीय सर्विस के बाद सबार्डिनेट सर्विस या छोटे कर्मचारियों का नम्बर था। इनकी नियुक्ति भिन्न-भिन्न प्रान्तीय सरकारें, अथवा उनके विविध विभागों के उच्चाधिकारी करते थे।

भारतवर्ष में सर्व-साधारण के लिए, इंडियन सिविल सर्विस का ही राज्य था। कलेक्टर तथा जनता से सम्बन्ध रखनेवाले अन्य उच्च अधिकारी इसी सर्विस के होते थे। अंगरेज सरकार इस सर्विस को शासन का 'फौलादी चौखटा' कहती थी। इसका संगठन ही इस ढंग पर किया गया था कि जनता पर मजबूती से हकूमत हो सके। अधिकारियों में हकूमत की भावना भरी होती थी, लोकसेवा की कल्पना उनके दिमाग में नहीं आती थी।

वर्तमान व्यवस्था—भारत के स्वतन्त्र होने पर 'इंडियन सिविल सर्विस' समाप्त कर दी गई, अब उसकी जगह भारतीय शासकीय सेवा या इंडियन एडमिनिस्ट्रेटिव सर्विस' (आई० ए० एस०) की व्यवस्था की गई है। अब किसी पदाधिकारी की नियुक्ति भारत-मन्त्री द्वारा नहीं होती, और न उसके लिए इंगलैंड में जाकर परीक्षा देने की जरूरत रही। अब सब नियुक्तियां तथा परीक्षाएँ और ट्रेनिंग आदि यहां ही होती हैं। सरकारी नौकरियां यहां की सभी जातियों तथा सम्प्रदायों के लिए समान रूप से खुली हुई हैं। स्त्रियाँ भी उन्हें प्राप्त कर सकती हैं, और कर रही हैं। नौकरियों के दो भेद हैं:—(१) सैनिक, और (२) असैनिक (सिविल) या मुल्की। पहले सैनिक सेवाओं का विचार करते हैं।

(१) सैनिक सेवाएँ

संसार की वर्तमान स्थिति में देश-रक्षा के लिए सैनिक सेवा का महत्व स्पष्ट है। भारत के स्वतन्त्र होने पर अब देश-रक्षा का दायित्व हम पर ही है। इसलिए सेना सम्बन्धी ज्ञान की ओर नागरिकों की यथेष्ट रुचि होनी चाहिए!

सैनिक व्यवस्था—भारतीय सेना की व्यवस्था के लिए मंत्रि-परिषद में रक्षा-मंत्री रहता है, और मंत्रि परिषद संसद के प्रति उत्तरदायी है। देश की रक्षा का कार्य इतना महत्वपूर्ण है कि इसके लिए रक्षा-मंत्री

के अतिरिक्त मंत्रिपरिषद् की एक रक्षा समिति है। इसका सभापति प्रधान मंत्री होता है और अन्य तीन सदस्य उपप्रधान मंत्री, अर्थ मंत्री, रक्षा मंत्री हैं। यातायात मंत्री भी अपनी व्यक्तिगत हैसियत से इसमें सम्मिलित हैं। देश की सैनिक नीति निर्धारित करने का कार्य इस समिति के हाथ में है परन्तु इसका निर्णय मंत्रिपरिषद् के संमुख प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है, और उसका निर्णय अन्तिम होगा।

रक्षा-सचिवालय के अधीन भारत की सेना के तीनों अङ्ग हैं—थल सेना, जल सेना और नभ सेना। तीनों अंगों के अलग-अलग सेनापति हैं, जो अपने-अपने विभाग का संचालन करते हैं। प्रत्येक अंग का प्रधान कार्यालय देहली में स्थित है। इसके अंतर्गत, व्यवस्था की दृष्टि से और कई विभाग हैं, जो सैनिकों की भर्ती और उनके लिए शस्त्रास्त्र, अन्य आवश्यक वस्तुओं एवं खाद्यान्न आदि की व्यवस्था करते हैं।

सैनिकों की भर्ती, सैन्य संचालन, सैन्य विसर्जन आदि का कार्य एडजूटैंट जनरल का विभाग करता है। सेना सम्बन्धी निर्माण कार्य के लिए सेना का इंजिनियरिंग विभाग अलग है। सैन्य दल की गति तथा उनके भोजन एवं निवास आदि की व्यवस्था 'क्वार्टर मास्टर जनरल' का विभाग करता है। सैनिक कार्यवाही के लिए सैन्य संचालन विभाग है।

थल सेना—भारत की थल सेना में इस समय तीन कमान्ड हैं। (१) पूर्वी कमान्ड (केन्द्र राँची) (२) पश्चिमी कमान्ड (केन्द्र दिल्ली) (३) दक्षिणी कमान्ड (केन्द्र पूना)। थल सेना में पूर्ण रूप से भारतीयकरण हो गया है; अब किसी भी कार्यवाहक पद पर विदेशी अफसर नहीं हैं। भर्ती के सम्बन्ध में सैनिक-असैनिक जातियों का भेद-भाव समाप्त कर दिया गया है।

नौ सेना—विभाजन के कारण भारतीय नौ सेना बहुत कमजोर हो गई थी। उसे ठीक करने तथा उसका राष्ट्रीयकरण करने के लिए सरकार ने एक दस-वर्षीय कार्यक्रम स्वीकार किया है। करांची की युवक शिक्षण

(बोयूज़ ट्रेनिंग) संस्था पाकिस्तान में चले जाने से जो कमी हो गई थी, वह विजगापट्टम में नया स्कूल खुल जाने से दूर हो गई है। वहाँ एक नौसैनिक कालेज खोलने का भी विचार हो रहा है। इस योजना के अमल में आजाने पर भारतीयों को नौसैनिक ट्रेनिंग के लिए इंगलैंड भेजने की जरूरत नहीं रहेगी।

हवाई सेना—आधुनिक युग में स्थल सेना और नौ सेना की अपेक्षा हवाई सेना का महत्व बढ़ता जा रहा है। इसका प्रारम्भ १ अप्रेल १९३२ को हुआ था। सन् १९४७ में पाकिस्तान बन जाने पर इसका भी विभाजन होना अनिवार्य था। विभाजन के बाद इसमें सात लड़ाकू बेड़े और एक ढुलाई का बेड़ा रह गया। भारत की विशालता देखते हुए यहाँ की हवाई सेना अभी पर्याप्त नहीं कही जा सकती; इसके और अधिक विकास की आवश्यकता है। भारत सरकार इस ओर प्रयत्नशील है।

सैनिक शिक्षा—देश की रक्षा का कार्य अच्छी तरह तभी किया जा सकता है, जब कि सेना के अफसरों की शिक्षा का उचित प्रबन्ध हो। योग्य उम्मेदवारों के चुनाव के लिए 'सिलेक्शन बोर्ड' की स्थापना की गई है, जो शिक्षा सम्बन्धी योग्यता की आवश्यक परीक्षाओं के अतिरिक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षा भी लेते हैं। इससे यह लाभ होता है कि मनुष्य के चरित्र, धैर्य्य आदि का पता लग जाता है, जिसकी सेना में भारी आवश्यकता होती है। अब तक भारतीय सेना के उच्च अफसरों की शिक्षा इंगलैंड के सैंढर्स्ट आदि मिलिटरी स्कूलों में होती थी। कुछ वर्षों से देहरादून में थल-सेना सम्बन्धी शिक्षा के लिए एक मिलिटरी कालेज कार्य कर रहा है। अब भारतीय रक्षा-सचिवालय के अन्तर्गत एक सैनिक शिक्षा संबन्धी विभाग की स्थापना की गई है, जिसके अन्तर्गत विविध संस्थाएँ कार्य कर रही हैं।

राष्ट्रीय एकाडेमी—भारत सरकार ६ करोड़ रु० के खर्च से एक राष्ट्रीय एकेडेमी स्थापित करने का विचार कर रही है। जून १९४९ से पूना से १० मील दूर खड़कवासला में इसका निर्माण-कार्य प्रारंभ हो गया है। इसमें सेना के तीनों अंगों की शिक्षा की व्यवस्था होगी। साधारण कोर्स तीन वर्ष का होगा। भारतीय सेना के प्रत्येक भावी अफसर को तीनों प्रकार की शिक्षा ग्रहण करनी होगी, परन्तु वह जिस प्रकार की सेना में प्रविष्ट होने वाला होगा, उसकी विशेष शिक्षा प्रदान की जावेगी। इस एकडेमी बनने तक के लिए देहरादून, की ही मिलिटरी एकेडेमी में, जिसका नाम अब 'आर्मड फोर्सेज-ऐकेडेमी' कर दिया गया है, एक इन्टर-सर्विस-विंग स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त कई शिक्षालय कार्य कर रहे हैं।

राष्ट्रीय केडेट कोर—युवकों में देश की रक्षा की ओर रुचि पैदा करने के लिए एक राष्ट्रीय केडेट कोर (सैनिक शिक्षा-दल) का संगठन किया गया है। इसमें सब प्रान्तों और रियासतों से छात्रों को भरती किया गया है। इसकी बड़ी शाखा में कालेजों और विश्व-विद्यालयों के २५,००० और छोटी शाखा में स्कूलों के ५०,००० विद्यार्थी लिए जा चुके हैं। शीघ्र ही एक शाखा लड़कियों के लिए स्थापित की जाने वाली है।

प्रादेशिक सेना—राष्ट्रीय केडेट कोर केवल छात्रों के लिए है। नागरिकों के लिए एक प्रादेशिक सेना संगठित करने की योजना बनाई गई है। इसमें १,३०,००० आदमियों को भरती किया जायगा। पहले जो प्रादेशिक सेना थी, उसमें केवल स्थल सेना के दस्ते रहते थे, लेकिन अब इसमें सेना की तीनों शाखाओं के दस्ते रहेंगे। इसमें दो प्रकार की इकाई (यूनिट) होंगी—प्रान्तीय और शहरी। प्रान्तीय इकाइयों की भर्ती देहाती क्षेत्रों से होगी। ट्रेनिंग प्राप्त कर लेने पर यह सेना न केवल नियमित सेना की सहायक के रूप में काम करेगी वरन् दूसरी रक्षा-पंक्ति के रूप में देश की समुद्रवर्ती तथा हवाई रक्षा व्यवस्था को भी संभालेगी,

तथा संकट-काल में देश की शान्ति-रक्षा का कार्य स्वयं संभाल कर नियमित ('रेग्यूलर') सेना को अधिक महत्व के कार्यों के लिए मुक्त करेगी।

सेना और सामाजिक कार्य—विदेशी शासन के हटने से जनता और सैनिकों को एक दूसरे से अलग करनेवाली विदेशी सत्ता की दीवार टूट गई है; अब सैनिकों को नागरिक हित के कार्यों में सहायक होना चाहिए। जो सैनिक देश के मुल्की (असैनिक) कार्य करने योग्य हों, उनसे अवकाश के समय दूसरे उपयोगी कार्य लिये जायँ। उदाहरण के लिए जो लोग सड़कें, पुल आदि तैयार करने में कुशल हों, वे शान्ति-काल में देश के निर्माण-कार्य में योग दें; इसी प्रकार सैनिक चिकित्सक शान्ति के समय देश में स्वास्थ्य और चिकित्सा की उन्नति में सहायक हों। इससे जनता को सैनिक व्यय का यथेष्ट लाभ मिल सकेगा, और देश का व्यय-भार बढ़े बिना ही बहुत सा लोकोपयोगी कार्य होता रहेगा। सेना इस दिशा में सहयोग दे रही है, उसका निरंतर जारी रहना और उसमें प्रगति होते रहना आवश्यक है।

सैनिक सेवाओं की बात यहीं समाप्त करके अब असैनिक सेवाओं का विचार करते हैं, इनसे लोगों का अधिक सम्बन्ध और सम्पर्क रहता है।

(२) असैनिक सेवाएँ

असैनिक सेवा निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त है—

१—अखिल भारतीय सेवाएँ। इनमें भारतीय प्रशासन सेवा और भारतीय पुलिस सेवा हैं। स्वतंत्रता के बाद 'इंडियन फारेन सर्विस' (भारतीय बैदेशिक सेवा) का संगठन और हुआ है। इन सेवाओं के आदमी देश भर में कहीं भी रखे जा सकते है।

(२) संघीय सेवाएँ। इनमें रेलवे सेवा, भारतीय डाक व तार सेवा, भारतीय आयात निर्यात सेवा, उच्चतम न्यायालय, भारतीय लोकसेवा आयोग आदि के कर्मचारी सम्मिलित हैं। ये पूर्णतया संघ सरकार के अधीन हैं।

(३) राज्य सेवाएँ। प्रत्येक राज्य में राज्य की असैनिक सेवाएँ हैं। इनमें विविध विभागों के पदाधिकारी होते हैं, यथा डिप्टी कलेक्टर, डिप्टी सुपरिटेन्डेंट पुलिस, जिला स्कूल इन्सपेक्टर आदि। इनके नीचे सबार्डिनेट लोकसेवा वाले होते हैं, जैसे तहसीलदार, थानेदार, सरकारी स्कूलों के अध्यापक आदि। इनसे नीचे चपरासी आदि होते हैं।

कर्मचारियों सम्बन्धी नियम—संघ तथा राज्यों के कर्मचारियों की नियुक्ति आदि के नियम बनाने का अधिकार संसद तथा राज्यों के विधानमंडलों को है। राष्ट्रपति तथा राज्यपाल या राजप्रमुख को इस सम्बन्ध में नियम बनाने का अधिकार उसी समय तक होगा, जब तक कि संसद या राज्यों के विधान-मंडल विधि द्वारा नियम न बना दें।

कोई भी व्यक्ति जो संघ की या राज्य की सेवा का सदस्य है, ऐसे किसी अधिकारी द्वारा अपने पद से नहीं हटाया जाएगा, जो उसे नियुक्त करने वाले अधिकारी के नीचे है। पद से हटाए जाने से पहले उसे उसके विरुद्ध किए हुए आक्षेपों का उत्तर देने का समुचित अवसर दिया जायगा। परन्तु यह अवसर इन दशाओं में नहीं दिया जायगा—(१) जब उक्त लोकसेवक को आचार के आधार पर दंड दिया गया हो। (२) जब पदच्युत करने वाला अधिकारी लिखित रूप से यह सूचित करदे कि उस व्यक्ति को उत्तर देने का अवसर मिलना व्यवहारिक नहीं है। (३) जब यथा-स्थिति राष्ट्रपति, राज्यपाल या राजप्रमुख को यह संतोष हो जाय कि राज्य की सुरक्षा के हित में उस व्यक्ति को ऐसा अवसर देना उचित नहीं है।

लोकसेवा आयगों की व्यवस्था—शासन प्रबन्ध के सुचारू रूप में संचालन के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक पद या सेवा के लिए अनकूल, सुयोग्य एवं निस्पक्ष अधिकारी नियुक्त किए जावें। यदि ऐसा

न किया गया और राज्य के मंत्रिपरिषद ने अपने ही दल के लोगों को संतुष्ट करने के हेतु राजकीय पदों पर नियुक्त कर दिया तो इससे शासन-प्रबन्ध का स्तर ही नहीं गिर जायगा, वरन् भ्रष्ट तथा बेइमानी को प्रोत्साहन मिलेगा; इसलिए संविधान में लोकसेवा आयोग या कमीशन की व्यवस्था की गई है, जिससे पदाधिकारियों की नियुक्ति निष्पक्ष रूप से की जा सके। संघ के लिए संघीय लोकसेवा आयोग, तथा प्रत्येक स्वायत्त राज्य के लिए एक राज्य लोक सेवा आयोग होगा। यदि दो या अधिक राज्य अपने लिए अलग-अलग आयोग न बना कर एक संयुक्त आयोग स्थापित करना चाहें तो उनकी विधान-सभाओं द्वारा इस आशय का प्रस्ताव स्वीकार होने पर संसद विधि बना कर उनके लिए एक संयुक्त आयोग नियुक्त करने की व्यवस्था करेगी।

लोकसेवा-आयोगों की नियुक्ति—संघ के लोक-सेवा आयोग तथा संयुक्त लोकसेवा आयोगों के अध्यक्ष तथा अन्य सदस्यों की नियुक्ति राष्ट्रपति करेगा। राज्यों के लोकसेवा आयोगों के अध्यक्ष व सदस्यों की नियुक्ति राज्यपाल या राजप्रमुख के द्वारा होगी। सदस्यों की संख्या का निश्चय राष्ट्रपति तथा राज्यपाल या राजप्रमुख करेंगे। प्रत्येक आयोग के सदस्यों में से आधे सदस्य ऐसे होंगे, जो भारत सरकार अथवा राज्यों की सरकारों की अधीनता में कम से कम दस वर्ष किसी पद पर रहें हों।

आयोगों के सदस्यों की नियुक्ति छः वर्ष के लिए होगी, परन्तु किसी भी दशा में संघीय आयोग का सदस्य ६५ वर्ष की आयु, और संयुक्त तथा राज्य के आयोग के सदस्य ६० वर्ष की आयु होने के पश्चात् अपने पद पर नहीं रह सकेंगे। इससे स्पष्ट है कि आयोग का कोई सदस्य यदि छः वर्ष के पूर्व ही उपर्युक्त आयु का हो जाता है तो उसे अपने पद से अवकाश ग्रहण कर लेना होगा। कोई सदस्य अपने सेवा-काल की समाप्ति के पश्चात् उसी पद पर पुनः नियुक्त नहीं किया जायगा। सदस्यों का वेतन उनके कार्य-काल में कम नहीं किया जा सकेगा।

पद-निवृत्ति—लोक-सेवा आयोग का कोई भी सदस्य स्वयं अपने पद से त्याग-पत्र दे कर अलग हो सकता है; अथवा राष्ट्रपति उसे, उच्चतम न्यायालय द्वारा जाँच करवाने से दुराचारी या दुर्बल प्रमाणित होने पर, पदच्युत कर सकेगा। राष्ट्रपति आयोग के अध्यक्ष या किसी भी सदस्य को निम्नलिखित किसी आधार पर पद से हटा सकेगा—(१) वह सदस्य न्यायालय द्वारा दिवालिया घोषित कर दिया गया हो, (२) उसने अपने सेवा-काल में अपने पद का काम करने के अतिरिक्त कोई अन्य सवेतन काम किया हो, या (३) वह शारीरिक अथवा मानसिक दुर्बलता से पीड़ित हो। यदि किसी सदस्य का भारत सरकार या किसी राज्य की सरकार द्वारा दिए गए ठेके से कोई सम्बन्ध है, या उसमें उसका कोई स्वार्थ है, या वह उसके लाभ में भाग लेता या उससे प्राप्त धन से लाभ उठाता है तो उसका यह कार्य दुराचरण समझा जायगा।

आयोगों के कार्य—संघीय और राज्यों के लोक सेवा आयोगों का प्रमुख कार्य संघ तथा राज्य के सरकारी पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में उम्मेदवारों के लिए प्रतियोगिता-परीक्षाओं का संचालन व उनकी व्यवस्था करना होगा। संघीय लोकसेवा आयोग का यह भी कर्तव्य होगा कि वह दो या अधिक राज्यों की प्रार्थना पर उनके लिए विशिष्ट योग्यता वाले उम्मेदवारों की नियुक्तियों के सम्बन्ध में योजनाएँ तैयार करे और उनके अनुसार कार्य-सम्पादन में योग दे।

संघ सरकार संघीय आयोग से, एवं राज्यों की सरकारें राज्यों के आयोगों से निम्नलिखित विषयों में परामर्श लेंगी—

१—नागरिक पदों के लिए एवं नागरिक नौकरियों की नियुक्ति की प्रणाली के सम्बन्ध में।

२—नागरिक सेवाओं तथा पदों पर नियुक्तियों के सम्बन्ध में पालन करने योग्य सिद्धान्तों तथा पदोन्नति एवं स्थानान्तर के संबंध में, तथा

नियुक्ति और पदोन्नति के संबन्ध में उम्मीदवारों की उपयुक्तता के संबन्ध में।

३—भारत सरकार तथा राज्य-सरकार के अधीन सेवा करने वाले व्यक्तियों के समस्त अनुशासन संबन्धी मामलों में।

४—भारत सरकार या राज्य की सरकार के अधीन सेवा करने वालों के दावे, या उनके विरुद्ध की जाने वाली अनुशासन की कार्यवाही।

संघ या राज्य के पिछड़े समुदायों के नागरिकों के लिए निर्धारित सुरक्षित स्थानों तथा नियुक्तियों के संबन्ध में आयोगों से मंत्रणा नहीं ली जायगी।

संसद या राज्य की विधान-सभा संघीय आयोग तथा राज्य के आयोग द्वारा अतिरिक्त कार्यों के संपादन के संबन्ध में निश्चय कर सकती है।

आयोगों का व्यय—संघीय कमीशन तथा राज्य-कमीशन के कुल व्यय क्रमश संघ-सरकार और राज्य-सरकार की संचित निधि से दिए जायंगे; ये अनिवार्य मदों में हैं, अर्थात् इन पर संसद और राज्य के विधान-मंडल का मत नहीं लिया जायगा।

आयोगों का वार्षिक विवरण—संघीय लोक सेवा आयोग का यह कर्तव्य होगा कि वह अपने कार्य का वार्षिक विवरण राष्ट्रपति को दे। राष्ट्रपति उस विवरण की एक प्रति और उसके साथ एक आवेदन-पत्र, जिसमें ऐसे मामलों की व्याख्या की जायगी जिनमें आयोग की मंत्रणा स्वीकार नहीं की गई, संसद के दोनों सदनों के संमुख प्रस्तुत करेगा। इसी भाँति संयुक्त आयोग अपना विवरण राष्ट्रपति को, और राज्य-आयोग राज्यपाल या राजप्रमुख को देंगे।

यह व्यवस्था इस दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है कि इसके द्वारा संसद एवं राज्यों के विधान-मंडल यह जान सकेंगे कि आयोग की सिफारिशों को सरकार कहाँ तक स्वीकार करती हैं, उसके कार्यों में कहाँ-कहाँ हस्तक्षेप

करती है और कहाँ उसके परामर्श की उपेक्षा की गई है। इन सब बातों के प्रगट होने की व्यवस्था से मंत्रिमण्डल आयोग के कार्य में अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं करेगा।

आयोगों की सफलता—प्रत्येक आयोग की सफलता के लिए आवश्यक है कि उसके सदस्य उदार, प्रगतिशील और विद्वान हों। उसके साथ ही साथ उन्हें निष्पक्ष भी होना आवश्यक है। उन्हें लोक सेवा के लिए उम्मेदवारों को चुनते समय उनकी योग्यता का ही ध्यान रखना चाहिए; ऊँची से ऊँची सिफारिशों को जरा भी महत्व न देना चाहिए।

मंत्रियों और अन्य उच्च पदाधिकारियों का भी कर्तव्य है कि वे राजकीय विभागों में नई नियुक्ति के लिए आयोग का पूरा सहयोग लें। आयोग के परामर्शों को यथा-शक्ति मान्यता प्रदान करें और आयोग पर नियुक्ति के संबन्ध में कभी भी दबाव डालने का प्रयत्न न करें।

सरकारी नौकरों का वेतन—इस अध्याय को समाप्त करने से पूर्व सरकारी नौकरों के वेतन के सम्बन्ध में भी कुछ विचार कर लेना आवश्यक है। इस विषय में हमने सन् १९४४ में प्रकाशित इस पुस्तक के नवें संस्करण में लिखा था—"भारतवर्ष के सरकारी कर्मचारियों के सम्बन्ध में विचार करते हुए किसी व्यक्ति को यह बात खटके बिना नहीं रहती कि यहाँ उच्च पदों का वेतन और भत्ता आदि देश-काल से बिल्कुल मेल नहीं खाता। उदाहरण-स्वरूप गवर्नर जनरल की बात पहले कही जा चुकी है। उसके अतिरिक्त उसकी प्रबन्धकारिणी कौंसिल के सदस्यों, जंगीलाट, प्रान्तों के गवर्नरों, विविध सरकारी विभागों के अध्यक्षों, चीफ-कमिश्नरों आदि का वेतन इतना ऊँचा रखा गया है कि जनता की निर्धनता को सर्वथा भुला दिया गया है। जब तक देश की असंख्य जनता को जीवन-निर्वाह के लिए यथेष्ट भोजन-वस्त्र का भी अभाव हो, सरकारी

कर्मचारियों को इस प्रकार द्रव्य लुटाना, और उनके वास्ते ऐश्वर्य के साधन जुटाना शासन-यन्त्र की जड़ता और निर्दयता है। उनके लिए गर्मियों में खस की टट्टियाँ और बिजली के पंखे; सर्दियों में कमरे को गर्म रखने के लिए अंगीठी आदि, उनके सफर के लिए स्पेशल ट्रेन, या रिजर्व नहीं तो अव्वल दर्जे (फस्ट क्लास) के डिब्बे या बढ़िया मोटर आदि की व्यवस्था को देखकर कौन नहीं कहेगा कि इन सरकारी कर्मचारियों और जन-साधारण में भयानक अन्तर है।

"इसके मुकाबले में छोटे पदों पर काम करनेवाले कर्मचारियों का वेतन प्रायः उनके निर्वाह के लिए पर्याप्त नहीं होता, और उन्हें अपनी गृहस्थी का खर्च चलाने के लिए कोई दूसरा सहायक कार्य करना या रिश्वत आदि निन्दनीय उपायों का आश्रय लेना पड़ता है। आवश्यकता है कि उच्च अधिकारियों के वेतन में काफी कमी की जाय। और, जो बचत हो, उसका दो प्रकार से उपयोग किया जाय, एक तो निम्न कर्मचारियों का वेतन बढ़ाकर उनके तथा उच्च अधिकारियों के वेतन की विषमता हटाई जाय; दूसरे, जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य, आजीविका आदि के साधन जुटाकर देश की दशा सुधारने का प्रयत्न किया जाय।

"हमने निम्न कर्मचारियों के रिश्वत लेने की बात का संकेत किया है। परन्तु इसका यह आशय नहीं है कि उच्च अधिकारी सर्वथा दूध के धुले होते हैं। यद्यपि अनेक घटनाएँ गुप-चुप होती हैं, घूस लेनेवाला एवं देनेवाला दोनों ही उसे छिपाने का भरसक प्रयत्न करते हैं, तथापि समय-समय पर भण्डाफोड़ हो ही जाता है। कुछ लोग अपनी जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रिश्वत लेते हैं, तो दूसरे लोभ वश। जीवन-निर्वाह की आवश्यकताओं की तो फिर भी एक सीमा है, परन्तु लोभ की तो कोई सीमा ही नहीं। निदान, सरकारी नौकरों द्वारा रिश्वत (इसे डाली, भेंट, उपहार आदि नाम दिए जाते हैं) लिया जाना ऐसी साधारण बात हो गई है कि आदमी सरकारी नौकरों से

पूछा करते हैं कि आपकी 'ऊपर की' 'आमदनी' क्या है; मानो सरकारी नौकर की कुछ न कुछ 'ऊपर की आमदनी' होनी ही चाहिए। कैसा पतन है! सरकार से अपने कर्मचारियों की यह बुराई छिपी नहीं है, वह समय-समय पर इसे दूर करने के लिए कुछ उपाय काम में लाती है, परन्तु दोष निर्मूल नहीं होता। यदि सरकार का जनता से यथेष्ट सहयोग हो तो दोनों के सम्मिलित प्रयत्न से अधिक सफलता मिलने की आशा की जा सकती है।"

उपर्युक्त पंक्तियां लिखे सात वर्ष हो गए। इस बीच में भारत स्वतन्त्र हो गया। अँगरेज यहां से चले गए। पर खेद है कि उपर्युक्त विषय में कोई सुधार नहीं हुआ। कई सरकारी विभागों में नौकरों की संख्या काम के अनुपात से अधिक है। वेतन और भत्ता आदि खूब बढ़ा हुआ है, फिर भी काम समय पर और अच्छी तरह नहीं होता, ढील-ढाल रहती है। भ्रष्टाचार अलग बढ़ा हुआ है। कितने ही पदाधिकारी अपना उत्तरदायित्व नहीं पहचानते। जनता परेशान है, और सरकार बदनाम है।

सुधार की आवश्यकता—हमारी वेदना और भी अधिक इसलिए है कि यह स्थिति बदलने के लक्षण नहीं दिखाई दे रहे हैं। अस्तु, सरकारी नौकरों को राजनैतिक दलबन्दी में न पड़ना चाहिए और न राजनीति में भाग लेना चाहिए। जो दल पदारूढ़ हो, उसी के आदेशानुसार कार्य करना उनका कर्तव्य है; उन्हें किसी भी प्रतिष्ठित व्यक्ति या संस्था से प्रभावित न होना चाहिए। उनमें कर्तव्य-पालन, सेवा और सदाचार की यथेष्ट भावना होनी चाहिए। इसलिए आवश्यक है कि सभी नियुक्तियाँ तटस्थ रीति से, और पब्लिक सर्विस कमीशन की मान्य प्रणाली द्वारा हों। इस विषय में उपेक्षा होने से जनता को पक्षपात की आशंका होती है। आशा है, इसका समुचित ध्यान रखा जायगा।

अट्ठाइसवाँ अध्याय

राजभाषा और राजचिन्ह आदि

संविधान निर्माण में राष्ट्र-भाषा का प्रश्न कितना टेढ़ा था ! कभी-कभी तो ऐसा लगता था कि इस शिला से टकरा कर हमारे सभी प्रयास टूट न जायँ। पर इस समस्या का भी हमने सफल और संतोषजनक समाधान कर लिया।

—डा० अनुग्रहनारायण सिंह

राजभाषा; अंगरेजी ?—स्वाधीन भारत में राजभाषा क्या हो, इस विषय में विविध व्यक्तियों का अलग-अलग दृष्टिकोण रहा है। अंगरेजों के शासन में अंगरेजी के प्रचार को प्रोत्साहन मिलने से यह भाषा पढ़े-लिखों की एक मुख्य भाषा बन गयी थी और विविध प्रान्तों के विद्वानों के लिए यही मेल-जोल और अन्तर्प्रान्तीय सहयोग का काम देने लगी। योरप अमरीका से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए इसका उपयोग था ही। इस लिए कुछ आदमी इसे ही भारत की राजभाषा का स्थान देने का विचार करने लगे। वे भूल जाते हैं कि भारत की कुल जनसंख्या का कितना नगण्य सा भाग इस भाषा को जानता या इस का व्यवहार कर सकता है। हाँ, इसमें संदेह नहीं कि बहुत समय से सरकारी कार्य इस भाषा में होते रहने से, इस में सरकार को कुछ सुविधा होगयी। विविध सरकारी विभागों सम्बन्धी पारिभाषिक शब्द इस भाषा के चलने लगे। इसके अतिरिक्त उच्च शिक्षा का माध्यम अंगरेजी रहने से विविध वैज्ञानिक विषयों के लिए भारतीय भाषाओं में उपयुक्त और सर्वमान्य शब्द-निर्माण होने का समय ही नहीं आया। परन्तु आखिर कब तक ऐसा चले ! भारत स्वाधीन होकर भी भाषा सम्बन्धी पराधीनता का भार क्यों सहन करे ?

हिन्दी और हिन्दुस्तानी—भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही ऐसी है, जिसे यहाँ अधिकांश आदमी समझ सकते हैं, और दूसरी किसी भी भाषा के जानकारों से अधिक आदमी इसे अपने दैनिक जीवन में काम में लाते हैं। यह बहुत थोड़ी मेहनत से सीखी जा सकती है, और भारतीय संस्कृति और सामाजिक जीवन के सब से अधिक नजदीक है। यह भाषा देवनागरी लिपि में लिखी जाती है, जिसका प्रचार देश में सबसे अधिक है, जो सौन्दर्य और शीघ्रलेखन की दृष्टि से बहुत ऊंचे दर्जे की है, और जिसमें निश्चय का बड़ा गुण है, अर्थात् इसमें जो लिखा जाता है, वही पढ़ा जाता है। इस तरह भारतीय संघ के लिए हिन्दी को राजभाषा और देवनागरी को राजलिपि मान्य करना सबसे अधिक स्वाभाविक है।

कुछ लोग उर्दू के पक्ष में रहे हैं। वास्तव में हिन्दी और उर्दू एक ही भाषा के दो दो रूप हैं। कुछ समय पहले तक इन दोनों में सिर्फ लिपि का फर्क माना जाता था। देवनागरी लिपि में लिखी हुई भाषा को हिन्दी, और फारसी लिपि में लिखी उसी भाषा को उर्दू, कहा जाता था। लेकिन पीछे उर्दू वालों ने अपनी भाषा में फारसी अरबी के मुश्किल शब्दों और मुहावरों की भरमार करदी और भाषा की शैली भी बदल कर उसे अरबी का लिबास पहनाना शुरू कर दिया। दूसरी ओर कुछ लेखक हिन्दी को 'शुद्ध संस्कृतनिष्ठ' बनाने लगे। इस प्रकार कठिन हिन्दी और कठिन उर्दू दो अलग अलग भाषाएँ हो गयीं।

इन दोनों भाषाओं के बीच की खाई को पाटने के लिए कुछ राष्ट्रीय नेताओं ने एक मिली-जुली भाषा चलाने का प्रयत्न किया। इसे 'हिन्दुस्तानी' नाम दिया गया; इसके लिए दोनों लिपियाँ मान्य की गयीं। राष्ट्रपिता म० गांधी की प्रेरणा से सन् १९२५ में कांग्रेस ने इसे अपनाया, और सन् १९३७-३८ में कांग्रेस-सरकार वाले प्रान्तों में इसे सरकारी आश्रय मिला। सन् १९४२ में 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' भी स्थापित

हुई, जिसकी अनेक स्थानों में परीक्षाएँ होंने लगी। 'हिन्दुस्तानी'-प्रचार का मूल उद्देश्य प्रशंसनीय था, परन्तु कुछ कार्यकर्ताओं ने इसके लिए शुद्ध भाव से कार्य नहीं किया और इसे एक वाद-विवाद का विषय बना दिया।

विवाद-ग्रस्त प्रश्न—इस प्रकार भारत की राजभाषा क्या हो, इस विषय पर संविधान सभा में तीन पक्ष थे :—अंग्रेजी, हिन्दी और हिन्दुस्तानी। कई बार यह प्रश्न उपस्थित हुआ और स्थगित हुआ। अंगरेजी के पक्षमें जनता का बहुत ही कम भाग था, परन्तु पढ़े-लिखे विद्वानों में से उसके पक्ष में काफी थे, और सरकारी विभागों और संस्थाओं में तो बहुधा उनका ही बहुमत होता है। इसके अतिरिक्त दक्षिण भारत के जो सज्जन हिन्दी कम जानते थे, वे भी अंगरेजी को अधिक-से-अधिक समय तक राजभाषा बनाने के इच्छुक रहे। इधर, संविधान सभा के कुछ प्रमुख व्यक्ति, खासकर कांग्रेस-कार्यकर्ता और म० गाधी के अनुयायी हिन्दुस्तानी के समर्थक रहे। इससे कोई सर्वमान्य निर्णय करना बहुत कठिन हो गया। आखिर, किसी तरह समझौता किया गया—संविधान में हिन्दी और देवनागरी को मान्यता देते हुए भी उसमें कुछ 'किन्तु-परन्तु' है, कितने ही उपबंधों की रचना की गयी है।

संघ की भाषा—संविधान के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और राजलिपि देवनागरी होगी। संघ के राजकीय प्रयोजनों के लिए प्रयोग होने वाले अंकों का रूप भारतीय अंकों का 'अन्तर्राष्ट्रीय रूप' होगा (अर्थात् 1, 2, 3, 4, 5 आदि), किन्तु संविधान लागू होने के १५ वर्ष तक (२६ जनवरी १९६५ तक) अंग्रेजी भाषा संघ की राजभाषा के रूप में उन सब कार्यों के लिए प्रयुक्त की जायगी, जिनके लिए संविधान के पूर्व प्रयुक्त की जाती थी। राष्ट्रपति को अधिकार है कि इस अवधि के अन्दर ही वह अंग्रेजी के साथ हिन्दी भाषा का, और भारतीय अंकों के अन्तर्राष्ट्रीय रूप के साथ देवनागरी रूप का, प्रयोग करने का, अधिकार प्रदान कर दे।

इसके अतिरिक्त संसद को अधिकार है कि वह १५ वर्ष पश्चात् भी विधि द्वारा अंग्रेजी भाषा को, अथवा अंकों के देवनागरी रूप को संघ के कार्यों में प्रयुक्त करने की व्यवस्था करे।

राज्यों की भाषाएँ—प्रत्येक राज्य के विधान-मंडल को अधिकार है वह अपने यहाँ प्रचलित एक या कई भाषाओं को या हिन्दी को अपनी राजकीय भाषा अथवा कुछ विशेष कार्यों में प्रयोग की जाने वाली भाषा स्वीकार करे। जब तक राज्य का विधान-मंडल ऐसा निश्चय नहीं करता, तब तक अङ्गरेजी ही उन स्थानों पर प्रयुक्त होती रहेगी, जहां वह पहले प्रयुक्त होती थी।

संघ और राज्यों के बीच एवं राज्यों-राज्यों के बीच वही भाषा काम में लाई जायगी, जो अब तक अधिकृत भाषा के रूप में प्रयोग में लायी जाती रही है। दो राज्य आपस में समझौते द्वारा यह तय कर सकते हैं कि उनके बीच हिन्दी राजकीय कार्यों के लिए प्रयोग में लाई जावे।

यदि किसी राज्य के अल्पसंख्यक जो वहाँ की जनसंख्या का एक पर्याप्त भाग हों, यह मांग करें कि उनके द्वारा बोली जाने वाली भाषा को राज्य समस्त राज्य में या उसके एक भाग में मान्यता प्रदान करे, तो वे राष्ट्रपति से ऐसी प्रार्थना कर सकते हैं। यदि राष्ट्रपति आदेश दे तो उस राज्य को वह भाषा मान्य करनी होगी।

उच्चतम न्यायालय और उच्च न्यायालयों की भाषा—जब तक कि संसद विधि बनाकर अन्य कोई व्यवस्था न करे तब तक उच्चतम न्यायालय और समस्त उच्च न्यायालयों की कार्यवाही, विधेयक, अथवा उन पर प्रास्तावित किए जाने वाले संशोधन, अधिनियम, आदेश, नियम, आदि की भाषा अंग्रेजी रहेगी।

राज्य का राज्यपाल अथवा राजप्रमुख राष्ट्रपति की अनुमति से हिन्दी भाषा का, या उस राज्य में राजकीय प्रयोजन के लिए प्रयोग होने वाली

किसी अन्य भाषा का, प्रयोग उस राज्य के उच्च न्यायालय की कार्यवाहियों के लिए अधिकृत ठहरा सकेगा, परन्तु उच्च न्यायालय अपने निर्णय, आज्ञप्ति अथवा आदेश अंग्रेजी में ही देगा।

यदि किसी राज्य का विधान-मंडल अंग्रेजी के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को विधेयकों, अधिनियमों तथा अध्यादेशों में प्रयुक्त की जाने की आज्ञा प्रदान कर देता है तो उन सबका अनुवाद अंग्रेजी भाषा में राजकीय सूत्रीपत्र में निकलवाना अनिवार्य होगा।

संविधान लागू करने के १५ वर्ष तक भाषा सम्बन्धी उपर्युक्त उपबन्धों में संशोधन करने वाला कोई भी विधेयक संसद् में राष्ट्रपति की अनुमति के बगैर प्रस्तावित न किया जा सकेगा। राष्ट्रपति भी यह अनुमति भाषा सम्बन्धी आयोग के परामर्श से ही प्रदान कर सकेगा।

राजभाषा के लिए आयोग और समिति—राष्टपति इस संविधान के प्रारम्भ होने के पाँच वर्ष पश्चात्, और १० वर्ष पश्चात् ऐसे आयोगों का संगठन करेगा जो निम्नलिखित विषयों पर उसे परामर्श प्रदान करेंगे :—

१—संघ के सरकारी कार्यों में हिन्दी भाषा का उत्तरोत्तर अधिक प्रयोग।

२—संघ के समस्त या कुछ राजकीय कार्यों में अंग्रेजी भाषा के प्रयोग पर प्रतिबन्ध;

३—उच्चतम न्यायालय, और उच्च न्यायालयों में तथा संसद् और विधान-मंडलों में प्रयोग की जाने वाली भाषा ;

४—संघ सरकार के राजकीय कार्यों में प्रयुक्त होने वाले अंकों का रूप।

५—संघ की राजभाषा तथा संघ और किसी राज्य के बीच अथवा दो या अधिक राज्यों के बीच प्रयुक्त की जाने वाली भाषा सम्बन्धी कोई विषय, जिसे राष्ट्रपति निश्चय करे।

आयोग के अन्दर एक सभापति तथा अन्य ऐसे सदस्य होंगे, जो निम्नलिखित भाषाओं का प्रतिनिधित्व करते हों :—आसामी, बंगाली, गुजराती, हिन्दी, कन्नड़, कश्मीरी, मलयालम, मराठी, उड़िया, पंजाबी, संस्कृत, तामिल, तेलगू और उर्दू।

आयोग की सिफारिशों पर राष्ट्रपति को सम्मति देने के लिए तीस सदस्यों की एक संसद्-समिति होगी, उसमें बीस तो लोकसभा के सदस्य होंगे तथा दस राज्य-परिषद् के। ये सदस्य क्रमशः लोक-सभा के सदस्यों तथा राज्य-परिषद के सदस्यों द्वारा अनुपाती प्रतिनिधित्व-पद्धति के अनुसार एकल संक्रमणीय मत द्वारा निर्वाचित होंगे। इस समिति की सम्मति के आधार पर राष्ट्रपति ऐसे आदेश देगा, जिनसे राजकीय भाषा सम्बन्धी उपबन्धों में परिवर्तन हो।

विशेष निर्देश—प्रत्येक व्यक्ति को अधिकार होगा कि अपनी किसी व्यथा के निवारण के लिए संघ या राज्य के किसी अधिकारी को यथा-स्थिति संघ में या राज्य में प्रयोग होने वाली किसी भी भाषा में आवेदन पत्र दे।

संविधान में इस बात का निर्देश किया गया है कि संघ हिन्दी भाषा का प्रसार बढ़ावे और उसका इस तरह विकास करे कि वह भारत की सामाजिक संस्कृति के सब अंगों को जाहिर करने का साधन बन सके; और उसकी आत्मीयता में हस्तक्षेप किए बिना जो जो रूप, जो शैली और जो पदावली (मुहावरे) हिन्दुस्तानी में और भारत की अन्य मान्य भाषाओं में काम में आते हैं, उनको अपनाते हुए तथा जहाँ आवश्यक हो, उसकी शब्दावली के लिए खासकर संस्कृत से और गौण रूप से दूसरी भाषाओं से शब्द लेकर उसे समृद्ध (मालामाल) करे।

हमारा उत्तरदायित्व—संविधान में हिन्दी को राजभाषा बनाने के साथ के जो शर्तें या बन्धन लगाए गए हैं, उनके सम्बन्ध में बहुत से हिन्दी-प्रेमियों को बड़ा असन्तोष है। देवनागरी लिपि में रोमन लिपि

के अंकों का समावेश होना तो बड़ा ही अजीब और बेमेल है; और भी उपबन्ध अरुचिकर हैं। परन्तु हमें इस विषय में जबानी शोर-गुल न करके अपने कर्तव्य-कार्य पर ध्यान देना चाहिए :—

१—जो सज्जन वास्तव में हिन्दी-प्रेमी हैं, और देश का हित चाहते हैं, वे यथा-सम्भव हिन्दी की सेवा में समय और शक्ति लगावें, जिससे हिन्दी में सभी विषयों की बढ़िया-बढ़िया रचनाएँ मिल सकें, और साहित्य के सब अंगों की पूर्ति हो।

२—दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा, और देवनागरी लिपि के प्रचार का जो कार्य गत वर्षों में हुआ है, उसकी गति और तेज की जानी चाहिए। प्रेम-पूर्वक ऐसा प्रयत्न और प्रचार होना चाहिए कि सब भारतीय भाषाएँ देवनागरी लिपि में ही लिखी जाया करें; इस प्रकार सारे भारतीय संघ की एक ही लिपि होजाय।

३—अहिन्दी प्रान्तों में प्रचार करने के लिए कुछ स्वार्थ-त्यागी सज्जनों को जुट जाना चाहिए।

४—पारिभाषिक शब्दों के संग्रह और संकलन के लिए सरकार जो कार्य करे, उसमें क्रियात्मक सहयोग दिया जाना चाहिए।

५—संस्कृत से हमें बहुत से शब्द लेने ही हैं, परन्तु भाषा के विषय में, हमारे मन में कोई कट्टरता या साम्प्रदायिकता न हो। जिन शब्दों का अब तक हम उपयोग करते रहे हैं, जो हमने धीरे-धीरे पचाए और अपनाए हैं, उनके बहिष्कार की बात न सोचें, चाहे वे अपने मूल रूप में किसी भी भाषा के हों। विशेष आवश्यकता होने पर हम कुछ विदेशी शब्दों को लेने में संकोच न करें; हाँ, उनका इस्तेमाल इस तरह करें, जैसे कि वे हमारी भाषा के हों। हमारी भाषा यथा-सम्भव सरल हो।

६—प्रान्तीय भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य से हमारा सम्पर्क और आदान-प्रदान बढ़ना चाहिए।

७—हिन्दी को ऊंचे दर्जे की बनाने के लिए हमें स्वयं अपने आपको

भी कुछ ऊँचा उठाना होगा। हमारा साहित्य हमारे तप, त्याग और सेवा का परिचायक हो।

राजचिन्ह ;, अशोक स्तम्भ

भारतीय जनतन्त्रका राजचिन्ह सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष का प्रतिरूप है। २६ जनवरी १९५० से सरकारी भवनों आदि पर इसने मुकुट या ताज का स्थान ग्रहण कर लिया है।

इस चिन्ह के शीर्ष-भागमें तीन सिंह हैं, और इसके केन्द्र में धर्मचक्र, दायें एक बैल, बायें एक अश्व, तथा नीचे दोनों पहलुओं में धर्मचक्रों की रेखाएँ हैं। नीचे देवनागरी लिपि में 'सत्यमेव जयते' (सत्य की ही विजय होती है) आदर्श वाक्य अंकित है। यह वाक्य मुंडक उपनिषद से लिया गया है। महात्मा गाँधी का यह आधार-भूत सिद्धांत रहा है, और सभी धर्मों के अनुयायियों को यह मान्य है।

ईसा से लगभग सौ वर्ष पूर्व अशोक ने यह स्तम्भ सारनाथ में उस स्थान पर बनवाया था, जहां बुद्ध ने सर्वप्रथम अहिंसा और प्रेम का अपना सन्देश संसार को सुनाया था। प्राचीन सभ्यता और सहिष्णुता तथा महात्मा गांधी के उपदेशों को प्रोत्साहन देने का भारत ने जो संकल्प किया है, यह राजचिन्ह उसी के अनुरूप है। धर्म चक्र, न्यायचक्र का प्रतीक है; यह राष्ट्र-ध्वज पर भी अंकित है।

जनतन्त्रीय पताका

भारत का ध्वज भारत की स्वाधीनता का प्रतीक है। महात्मा गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता के लिए भारत के अहिंसात्मक संग्राम की महान कथा इसके साथ जुड़ी हुई है।

१५ अगस्त १९४७ से 'यूनियन जैक' के स्थानपर जो तिरंगा झंडा सरकारी भवनों पर फहराया गया, वह २२ जुलाई १९४७ को संविधान-सभा द्वारा राष्ट्र-ध्वजके रूप में स्वीकार किया गया था। इसकी लम्बाई

और चौड़ाई में ३ और २ का अनुपात है। इसमें गहरा केसरिया और समान अनुपात में श्वेत और हरे रंग है, और बीच की पट्टी में गहरे नीले रंग में एक चक्र बना हुआ है। कांग्रेस के झंडे में चर्खा रहता था ; उसकी जगह अब चक्र करने का कारण यह था कि ध्वज का एक ओर का प्रतीक दूसरी ओर भी ठीक वैसा ही होना चाहिए।

चक्र, चर्खे जैसा ही है किन्तु इसमें तकुआ और माल नहीं है। चक्र को सारनाथ के अशोक-स्तम्भ के सिंहांकित शीर्ष-भाग से लिया गया है। इसे लेने कई कारण थे। कलात्मक होने के अतिरिक्त धर्म-चक्र, भारत की युगों पुरानी परम्परा और अमर सस्कृतिका प्रतीक है; महाराज अशोक के साथ, जिन्हें केवल भारत में ही नहीं किन्तु चीन, तिब्बत और अन्य एशियाई देशों में भी स्मरण किया जाता है, इसका सम्बन्व है। संविधान-सभा में इसका प्रस्ताव उपस्थित करते हुए श्री नेहरू ने कहा था 'यह ध्वज साम्राज्य का, साम्राज्यवाद का, या किसी के ऊपर किसी के प्रभुत्व का संकेत नहीं है। यह न केवल हमारी स्वतन्त्रता का, बल्कि इसे देखने वाले समस्त व्यक्तियों की स्वाधीनता का प्रतीक है। यह ध्वज जहां कहीं भी जायगा—न केवल उन्हीं देशों में जहां हमारे राजदूतों और मन्त्रियों के रूप में भारतीय रहते हैं, बल्कि मुझे आशा है, समुद्रों के पार जहां कहीं भी हमारे जहाज इस ध्वज को ले जायेंगे—वहां यह उन देशों की जनता को भ्रातृत्व का सन्देश देगा, उन्हें यह बताएगा कि भारत विश्व के प्रत्येक राष्ट्र के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित करने का इच्छुक है, और वह स्वाधीनता प्राप्त करनेवाले सब लोगों की सहायता करना चाहता है।'

राष्ट्रपति का नवीन ध्वज

२६ जनवरी १६५० से सरकारी भवन के कंगूरे पर भारतीय जनतन्त्र के राष्ट्रपति का नवीन ध्वज फहराता है। साँकेतिक चिन्हों द्वारा अत्यन्त कलापूर्ण बना दिया गया है, और ये साँकेतिक चिन्ह भारत के गौरवमय अतीत एवं संस्कृति के विभिन्न युगों का निर्देश करते हैं।

यह ध्वज लाल और नीले रंग के चार आयतों में विभक्त है, जिसमें कर्णवत् आमने-सामने के आयतों का रंग एक ही है। इन चार आयतों में से एक-एक में राजचिन्ह, हाथी, तुला, और पूर्ण घट सुनहरी रङ्ग में अंकित होंगे। राजचिन्ह अर्थात् तीन सिंह सहित अशोक-स्तम्भ और पूर्ण घट सारनाथ (ईसा से एक शताब्दी पूर्व) से, हाथी अजन्ता के चित्रों (पांचवीं शताब्दी) से, और तुला लालकिला (सत्रहवीं शताब्दी) दिल्ली से लिया गया है। अशोक-स्तम्भ चिन्ह एकता, समानता और भ्रातृत्व का, अजन्ता का हाथी सहिष्णुता और बल का, तुला न्याय और मितव्ययता का, तथा पूर्णघट सुख-समृद्धि का द्योतक है।

इसी प्रकार प्रांतीय गवर्नरों और राजप्रमुखों के भी अलग-अलग ध्वज हैं। इनमें केसरिया भूमि पर राजचिन्ह तथा रियासत या प्रांत का नाम देवनागरी लिपि में अंकित है।

विशेष वक्तव्य—भारत-सरकार ने राष्ट्रीय झंडे में अशोक के धर्मचक्र को स्थान दिया है, उसने राजचिन्ह में अशोक-स्तम्भ और धर्मचक्र रखा है। इस प्रकार उसने प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक को अपनाया है। परन्तु कोई संस्कृति केवल राष्ट्र-ध्वज या राजचिन्ह के बल पर नहीं बनती या पुष्ट होती। हम स्मरण रखें कि अशोक जिस राज्य का शासक था, उसका निर्माण करनेवाला चाणक्य (कौटल्य) था, जो अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधान मंत्री होते हुए भी लंगोटीबन्द महात्मा की तरह एक झोपड़ी में रहा करता था। क्या भारत का प्रधान-मंत्री या राज्यों के मुख्य मन्त्री, अन्य मंत्री तथा विविध उच्च पदाधिकारी चाणक्य को अपना आदर्श बना सकेंगे ? स्वेच्छापूर्वक त्याग का मार्ग बहुत कठिन होता है, पर सेवा-धर्म निभाना कोई आसान बात नहीं है, और हमें शासन को वास्तव में सेवा-धर्म ही तो समझना चाहिए।

उन्नीसवाँ अध्याय

उपसंहार

"हमारा कर्तव्य है, कि हम अपनी प्राप्त स्वतन्त्रता को स्थायी और सुस्थिर बनायें, उसका हर तरह से संरक्षण करें, तथा सर्वसाधारण के लिये उसे फलप्रद और लाभदायक बनाने का प्रयत्न करें। हमें नवोत्साह, अदम्य साहस, सम्पूर्ण श्रद्धा-विश्वास, सत्य, अहिंसा और सर्वाधिक तो ऊपर परमात्मा और अन्दर अन्तरात्मा में अनन्य श्रद्धा-विश्वास रखते हुए अपने प्रजातन्त्रात्मक शासन के संचालन का समारम्भ करना चाहिए।

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

विधान का अमल विधान की रचना पर ही पूरी तरह निर्भर नहीं करता। विधान तो सिर्फ राज्य के अवयव बना देता है, जैसे धारासभा, व्यवस्था-सभा, और न्याय। जिन शक्तियों पर राज्य के इन अवयवों की कार्रवाई निर्भर करती है,—वे हैं जनता, और जनता द्वारा अपनी इच्छाओं और नीतियों को अमल में लाने के लिए कायम की हुई राजनीतिक पार्टियाँ।

—डा० भीमराव अम्बेडकर

शासन के गुण-दोषों के विचार की आवश्यकता—

इस पुस्तक में उस शासनपद्धति का वर्णन किया गया है, जो नये संविधान के अनुसार यहाँ प्रचलित है। विचारशील पाठकों के लिए उसका ज्ञान आवश्यक है। परन्तु यही काफी नहीं है। प्राप्त स्वधीनता की रक्षा

करने के लिए हमें हर घड़ी सतर्क रहना चाहिए कि हमारे शासन में कौन-कौन से गुण हैं, जिन्हें यथा-सम्भव बढ़ाया जाय; और, कौनसे दोष हैं, जिन्हें निर्मूल किया जाना चाहिए। जहाँ शासन की हरदम बुराई करते रहना और उसकी आलोचना से लोकमत उसके विरुद्ध उभारते रहना निन्दनीय है, यह बात भी बहुत हानिकर है कि हम उसके दोषों की ओर आँख मीचे रहें, और राष्ट्र में घुन लगता रहने दें। इस प्रकार शासन के गुण-दोषों के विवेचन की आवश्यकता स्पष्ट है।

संविधान की बात—पहले संविधान की बात लें। यह कैसे बना, इसमें क्या कठिनाइयाँ थीं, उन्हें कैसे और कहाँ तक हल किया गया तथा इसमें क्या कमी रही—इसका उल्लेख पुस्तक में यथा-स्थान किया गया है। कुछ लोगों ने संविधान की बहुत प्रशंसा की तो दूसरों ने इसे बहुत खराब बताया है। हमें यहाँ इसके सूक्ष्म विश्लेषण और जाँच में न जा कर यही कहना है कि वह जैसा भी बना, बन गया है; अब तो इसके उपयोग की बात है। यदि हम चाहेंगे तो हम उसका अच्छा उपयोग कर सकेंगे; यहाँ तक कि उसकी हानिकर प्रतीत होनेवाली बातों को भी विशेष हानिकर न होने देंगे। इसके विपरीत, हमारी उपेक्षा या अयोग्यता से उसकी अच्छी बातें भी बहुत अनिष्टकर हो सकती हैं। हमें चाहिए कि हम सोच-समझ कर अपने देश के प्रति अपने कर्तव्य का ध्यान रखते हुए इसका उपयोग करें।

यह बात अवश्य ही खटकने वाली है कि संविधान बनाने के लिए स्वाधीन भारत को एक विदेशी भाषा से काम चलना पड़ा। यह हमारी राष्ट्रीयता की कमी का एक खरा और कटु प्रमाण है। पर अब इसका अफसोस करते रहने के बजाय, हमें इस दिशा में अपना कर्तव्य पालन करना चाहिए। इस विषय में पहले लिखा जा चुका है। इसके अतिरिक्त ऐसी व्यवस्था होने की आवश्यकता है कि संविधान जल्दी-से-जल्दी हिन्दी में राजमान्य हो।

राम-राज्य की आशा—यह निर्विवाद है कि भारतीय जनता को जो बहुत समय से स्वाधीनता-प्राप्ति के लिए आन्दोलन कर रही थी, और अपने जन-धन और सुख-सुविधाओं की बड़ी-बड़ी बलि चढ़ा रही थी, यह आशा थी कि देश के स्वतंत्र होते ही सब संकटों का अन्त हो जायगा। राष्ट्र-पिता म० गांधी ने बारबार राम-राज्य की बात कही थी, जिसका व्यवहारिक अर्थ गो० तुलसीदास जी के शब्दों में इस प्रकार है—

दैहिक, दैविक, भौतिक तापा।
राम-राज्य नहिं काहुहि व्यापा॥
सब नर करहिं परस्पर प्रीति।
चलहि स्वधर्म निरत श्रुति नीति॥
नहिं दरिद्र कोऊ दुखी न हीना।
नहिं कोई अबुध न लच्छन हीना॥
सब गुनज्ञ पंडित सब ज्ञानी।
सब कृतज्ञ नहिं कपट समानी॥

ऐसे राम-राज्य का स्वप्न एकदम पूरा नहीं होता। तथापि भारत के स्वतंत्र होने के तीन-चार वर्ष बाद जनता का यह सोचना अनुचित नहीं कहा जा सकता कि पहले की अपेक्षा हमारे कष्ट कितने कम हुए, और सुविधाएँ कितनी बढ़ीं। जनसाधारण इस विषय में विशेष संतुष्ट नहीं, यह प्रयेत्क व्यक्ति जान सकता है, जो जनता के सम्पर्क में आता हो।

सरकार की कार्य-कुशलता—इस प्रसंग में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत के स्वतंत्र होने पर यहाँ नई सरकार को किन कठिनाइयों में काम करना पड़ा। पाकिस्तान-निर्माण के समय देश कई मुसीबतों में से गुजरा; नई भारत-सरकार के सामने कई समस्याएँ थीं,

(१) साम्प्रदायिकता के नग्न नृत्य—लूट-मार, आगजनी, बालकों और स्त्रियों का अपहरण, बलात्कार आदि—को रोकना।

(२) पाकिस्तान से भारत आने के इच्छुक लाखों आदमियों को यहाँ लाने का प्रबन्ध करना और पीछे इन शरणार्थियों को जहाँ तहाँ बसाने और उनके लिए उपयुक्त आजीविका की व्यवस्था करना।

(३) सरकार को नष्ट करने के उद्देश्य वाले एंग्लो-मुस्लिम षड्यंत्र से अपनी और देश की रक्षा करना।

(४) ब्रिटिश सरकार ने रियासतों को 'स्वतंत्र' करके भारत को खंड-खंड करने का जो कूट आयोजन किया था, उसे सफल न होने देना।

भारत-सरकार ने तत्कालीन परिस्थिति में अद्भुत कुशलता का परिचय दिया। उसने साम्प्रदायिकता का नियंत्रण किया और गृह-कलह को युद्ध के रूप में पनपने नहीं दिया। शरणार्थियों की समस्या धैर्यपूर्वक सुलझाई गई, और सुलझाई जा रही है। एंग्लो-मुस्लिम षड्यंत्र से सरकार समय पर सावधान हो गई। उसने ब्रिटिश राजनीति के वज्र प्रहार से देश की रक्षा की, जगह-जगह बिखरी हुई सैकड़ों रियासतों को व्यवस्थित शासन-सूत्र में लाकर देश की अखंडता को और अधिक छिन्न-भिन्न होने से बचा लिया। इन बातों के लिए जनता कृतज्ञ है और विदेशी चकित हैं। सरदार वल्लभभाई पटेल ने ठीक कहा था—'मुझे निश्चय है कि जब इस कठिन और चिन्तापूर्ण स्थिति का इतिहास लिखा जायगा, जिसमें से हम गुजरे हैं, तो विभाजन को संयुक्त प्रयास और कार्य-सम्पादन की योग्यता का एक चमत्कार समझा जायगा।'

विदेशों में भारत की प्रतिष्ठा—सरकार ने जो शोभास्पद कार्य किए हैं, उनमें से एक एशिया, योरप और अमरीका में इस राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाना है। पूर्वी एशिया के देश भारत को प्रधान सहायक मानते हैं, और इसके सहयोग से अपने उत्थान का विश्वास करते हैं। भारत के सम्बन्ध में इंगलैंड का दृष्टि-कोण इतना बदल गया कि उस के सूत्रधारों ने भारत से सम्बन्ध बनाए रखने के लिए अपनी संस्था के नाम से 'ब्रिटिश' शब्द तक निकाल दिया और उसे केवल 'राष्ट्रमंडल'

इसने नागरिकों में आर्थिक समानता बढ़ाने की दिशा में कुछ अच्छा कदम नहीं उठाया। यहाँ 'समता' से हमारा मतलब व्यावहारिक समता से ही है, आदर्श काल्पनिक समता से नहीं। समाज में कुछ असमानता या विषमता रहने वाली ठहरी। पर विचारशीलों का कर्तव्य है कि उसकी सीमा का भरसक नियंत्रण करें। जैसा कि श्री किशोरलाल मशरूवाला ने कहा है, नागरिकों में आर्थिक असमानता भले ही रहे, पर उस असमानता को न्याय-सम्मत होना चाहिए। यह असमानता इतनी ज्यादा नहीं होनी चाहिए, जिससे दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जाय। दूसरे शब्दों में कहें तो देश के नागरिकों की ज्यादा-से-ज्यादा और कम-से-कम आय का फर्क एक उचित मर्यादा में रहना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि हम समाजवाद की नरम से नरम दृष्टि से विचार करें तो दोनों में १० : १ या १२ : १ के अनुपात से ज्यादा अन्तर न होना चाहिए, क्योंकि यदि इससे ज्यादा फर्क रहा तो नागरिकों के लिए दरजे और अवसर की समानता प्राप्त करना असम्भव हो जायगा।

नये संविधान के अनुसार कुछ पदाधिकारियों का वेतन इस प्रकार है [भत्ते इससे अलग हैं]:—

राष्ट्रपति	१०,००० रु०	मासिक
राज्य का राज्यपाल	५,५०० रु०	”
उच्चतम न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति	५,००० रु०	”
” ” अन्य न्यायाधीश	४,००० रु०	”
नियंत्रक-महालेखा परीक्षक	४,००० रु०	”
उच्च न्यायालय का मुख्य न्यायाधिपति	४,००० रु०	”
” ” अन्य न्यायाधीश	३,५०० रु०	”

राष्ट्रपति की बात किसी प्रकार छोड़ दें तो भी यह विचार करने की बात है कि जब कि किसी उच्च अधिकारी को चार पाँच हजार रुपए मासिक मिलें, तो साधारण अधिकारी को कम-से-कम चार-सौ, पाँच सौ रुपए

मासिक तो मिलें; और, जब कि यह व्याहारिक नहीं है, उच्च अधिकारियों का इतना अधिक वेतन ठहाराया जाना कैसे ठीक कहा जा सकता है! मालूम नहीं, संविधान-सभा के विद्वान सदस्य इन ऊंची वेतनों को निर्धारित करते समय देश और जनता की आर्थिक स्थिति को क्यों भूल गए; खासकर जब कि कितने ही सदस्य उस कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्त्ता रहे हैं, जिसने अधिकतम मासिक वेतन की सीमा ५००) रु० ठहराई थी; हाँ, उस समय के ५००) की कीमत इस समय डेढ़-दो हजार रु० है

रुपये की कीमत समय-समय पर घटती-बढ़ती रहती है। इस दृष्टि से अच्छा यही था कि उच्च अधिकारियों के वेतन का परिमाण निश्चित न कर यही तय किया जाता कि उनका वेतन कम-से-कम तनख्वाह पाने वाले कर्मचारी से इतने गुने से अधिक न होगा।

स्वार्थपरता और भ्रष्टाचार—सरकारी नौकरों के ऊँचे वेतन और भत्ते आदि की बात पहले कही गई है, इसके अलावा दुर्भाग्य से कितने ही कर्मचारी उससे भी सन्तुष्ट न होकर 'ऊपर की आमदनी' खूब पैदा कर रहे हैं। वे भ्रष्टाचार पर बुरी तरह उतर आए हैं। वे जल्दी-से-जल्दी इतना धन संग्रह कर लेना चाहते हैं कि वे उससे अपनी जिन्दगी भर मौज करें और हो सके तो अपनी अगली पीढ़ी वालों के लिए इतना धन छोड़ जावें, जिससे वे भी शान से रह सकें। सम्भवतः बहुत से पदाधिकारी यह सोचते हों कि कौन-जाने वे कब तक अपने पद पर हैं, उनकी वास्तविक योग्यता इतनी नहीं है कि इस पद पर से हट जाने पर वे इससे आधी-तिहाई क्या, आठवाँ-दसवाँ हिस्सा भी पा सकें। उस दशा में इस समय का संग्रह किया हुआ धन ही काम आएगा। इसलिए वे अपने पदों से चिपके रहने के साथ, अपनी आय बढ़ाने के भले-बुरे सभी उपायों से काम ले रहे हैं।

विशेष दुख इस बात का है कि इन पदाधिकारियों में कितने ही ऐसे भी हैं, जिन्होंने भारत की आजादी की लड़ाई में डटकर भाग लिया, बहुत-सा जीवन जेल में बिताया, और अगर घर भी रहे तो इन्हें केवल रूखी-सूखी रोटी और मोटा-झोटा कपड़ा मिल पाया। आज ये सरकारी कुर्सियों पर बैठकर अपनी शान-शौकत बढ़ाने की फिक्र में हैं। इनका विचार है कि हमारे तप और त्याग की बदौलत देश स्वाधीन हुआ है; हम अपनी पुरानी सेवाओं का फल लेते हैं तो क्या बुरा करते हैं। इस तरह ये त्यागी अब भोगी बन चले। इसका कुफल देश के सामने मौजूद है।

बहुत से आदमियों के मन में सरकारी नौकरों के प्रति ईर्ष्या का भाव है। वे सोचते हैं कि हमारा अमुक साथी, जो कल तक हमारे बराबर था, अब पदाधिकारी बनकर कितना अधिक धन और प्रतिष्ठा प्राप्त कर रहा है। ऐसे आदमी उस पदाधिकारी से सहयोग करने के बजाय उसके काम में रोड़े अटकाने की चाल चलते रहते हैं। इन्हें राज्य के कुछ असन्तुष्ट आदमियों का समर्थन और सहारा मिल जाता है। इस प्रकार गुटबन्दी, और वैर-विरोध में ही कार्यकर्ताओं की बहुत शक्ति नष्ट होती रहती है। यह बात शासन के लिए कितनी हानिकर है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

वर्तमान शासन और म० गाँधी—भारत ने जो स्वतन्त्रता प्राप्त की, उसका श्रेय यदि किसी एक व्यक्ति को देना हो, तो वह व्यक्ति म० गांधी थे। देश उन्हें राष्ट्रपिता कहता है। वर्तमान सरकार अपने-आपको म० गांधी के पथ पर चलनेवाली कहती है। क्या उसका सिद्धान्त म० गांधी के सिद्धान्तों के अनुकूल है? कहां हमारे उच्च पदाधिकारियों का ठाट-बाट, शान-शौकत और आडम्बर युक्त रहन-सहन, और कहां म० गांधी की सादगी और संयम! म० गांधी वायसराय के ही नहीं,

सम्राट् के महल में ऊंची धोती पहने, 'अर्द्ध नग्न' अवस्था में गए थे, कारण, वे अपने आपको गरीब भारत का प्रतिनिधि मानते थे। उनके विचार से भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री को भारत के साधारण नागरिक से अधिक ऐश्वर्य का जीवन नहीं बिताना चाहिए। अफसोस! हमारे अधिकांश शासकों को ये बातें अव्यावहारिक प्रतीत होती हैं। जिन महानुभावों ने वर्षों म० गांधी के नेतृत्व में रहकर देश को आजाद किया है, क्या वे भी म० गांधी को अव्यावहारिक कहेंगे? पर क्या वे अपने आचरण से ऐसा नहीं कह रहे हैं?

विदेशियों की दृष्टि की बात—कुछ महाशय कह देते हैं कि भारत में समय-समय पर उच्च प्रतिष्ठित विदेशी पदाधिकारी आते हैं। भारत के राष्ट्रपति और प्रधान मन्त्री आदि को उनका स्वागत करने के लिए विशाल और नए ढंग के सजधज वाले भवनों में रहना चाहिए, और अन्य उपयुक्त साधन वाला होना चाहिए; अन्यथा विदेशियों की दृष्टि में भारत का गौरव फीका पड़ जायगा। इसी तरह का तर्क विदेशी राजदूतावासों में अपरिमित खर्च करने के लिए दिया जाता है। जो लोग विदेशियों की दृष्टि में गौरव बढ़ाने के लिए गरीब जनता का बहुत-सा द्रव्य खर्च करते हैं, तथा जो विदेशी सज्जन बाह्य आडम्बर से ही किसी राष्ट्र के गौरव का मूल्यांकन करते हैं, दोनों की ही समझ की बलिहारी है! वास्तव में हमारे राष्ट्र का गौरव इस बात में है कि देश में कोई आदमी भूखा-नंगा न हो; सबकी रोजमर्रा की आवश्यकताएँ सहज ही पूरी हो जायँ; विकास, ज्ञान-प्राप्ति और लोकसेवा का मार्ग सब के लिए समान रूप से प्रशस्त रहे; छल, कपट, रिश्वत आदि नाम लेने को न हो; जाति, सम्प्रदाय और रंगभेद की बात न हो, और विश्व-प्रेम और लोकसेवा की भावना सब के जीवन में ओत-प्रोत हो।

विदेशों की सादगी का शिक्षाप्रद उदाहरण—हम विदेशों की बात करते हैं, और उनकी बहुत सी बातों का अनुकरण

करते हैं। परन्तु हम चाहें तो हमें वहां भी संयम और सादगी के उदाहरण मिल सकते हैं। हाल में म० गांधी की शिष्या और सहयोगिनी डा० सुशीला नैयर ने योरप के स्कैण्डिनेवियन देशों (नार्वे, स्वीडन और डेनमार्क) के सम्बन्ध में अपने प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर, बताया है कि 'नार्वे के मंत्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री और विदेशमन्त्री के अतिरिक्त किसी मन्त्री के पास मोटरें नहीं हैं। वे सब आने-जाने के लिए साधारण सवारियों का ही उपयोग करते हैं। नार्वे में अब भी राजा है, पर वह बिना ठाट-बाट और शान-शौकत के साइकिल पर बैठ कर नगर की गलियों में घूमता देखा जा सकता है। राजपरिवार के बालकों के लिए विशेष स्कूलों की भी कोई व्यवस्था नहीं है, आम नागरिकों के बालकों के साथ ही वे भी पढ़ने जाते हैं।

'स्वीडन के प्रधानमन्त्री तो मोटर तक नहीं रखते। जब वे अपने दफ्तर जाते हैं तो ट्राम या बस में बैठ कर जाते हैं। उनकी पत्नी खुद भी एक दफ्तर में नौकरी करती है, और बस में बैठ कर ही काम पर जाती है। अपने बच्चों को भी वह स्वयं नहलाती है, खाना खिलाती है, और उन्हें स्कूल भेज कर कपड़े धोकर एवं बर्तन साफ कर फिर अपने दफ्तर जाती है।'

क्या निर्धन भारत के अधिकारी, जहाँ तक व्यवहारिक हो, इससे शिक्षा लेंगे। उन्हें तो इस विषय में, दूसरों का शिक्षक होना चाहिए।

महान भारतीय संघ—आज भारतीय संघ विभिन्न क्षेत्रों का संघ है, जो पहले प्रान्त और रियासतें कहे जाते थे। [इसमें वे क्षेत्र भी मिलकर रहेंगे, जिन्हें अभी तक फ्रांसीसी और पुर्तगाली हकूमतें दबाए बैठी हैं]। संघ की सब इकाइयों ने इसमें स्वेच्छा से, बिना किसी जोर-जबरदस्ती के, प्रवेश किया है। दुर्भाग्य से पाकिस्तान कहे जाने वाले राज्य के अंग भारतीय संघ से अलग हैं। अनेक हृदयों में यह आशा बनी हुई है कि पाकिस्तान की जनता थोड़े-बहुत समय में यह अनुभव

करेगी कि पाकिस्तान का एक अलग राज्य के रूप में रहना उसके लिए घातक है; वह अपने शासकों को वाध्य करेगी कि भारतीय संघ में मिल जायँ। अस्तु, यह बात न हो, तो भी छत्तीस करोड़ व्यक्ति भारतीय संघ के नागरिक होंगे। संसार भर में चीन को छोड़कर इतनी बड़ी जनसंख्या किसी राज्य की नहीं, और चीन भी अभी संगठित नहीं है। इस प्रकार भारतीय संघ संसार भर में प्रायः सबसे बड़ा है। यह तो बाहरी दृष्टि की बात हुई। नए संविधान के अनुसार यह सर्वोच्च सत्ताधारी स्वतन्त्र जनतन्त्र होगा। इसमें जनता को वे सब मूल अधिकार प्राप्त होंगे, जो विकास और उन्नति के लिए आवश्यक होते हैं। पिछड़ी हुई जातियों को प्रगति करने के लिए यथेष्ट सुविधाएँ दी जायंगी। अल्प-संख्यकों के साथ ऐसा न्यायपूर्ण व्यवहार होगा कि उन्हें किसी प्रकार की आशंका या भय न होगा। अस्पृश्यता का अन्त कर ही दिया गया है। इस प्रकार संविधान ने नागरिकों में सद्भावना और भाईचारा स्थापित करके संघ को महान बनाने का मार्ग प्रशस्त किया है।

हमारा उत्तरदायित्व—स्वतंत्र भारत का संविधान बन चुका। तथापि सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक लक्ष्य की पूर्ति समय-समय पर बनने वाली विधियों या कानूनों से होती है, जिन्हें विधान-मंडल बनाते हैं। इस प्रकार संसद के तथा राज्य-विधान-मंडलों के सदस्यों का, और उन सदस्यों को निर्वाचित करनेवालों का उत्तरदायित्व कितना अधिक है, यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है। स्मरण रहे कि संविधान ने बालिग मताधिकार की व्यवस्था कर दी है। इसलिए निर्वाचकों के उत्तरदायित्व का अर्थ अब जनता का ही उत्तरदायित्व समझना चाहिए। अस्तु, भारत-सन्तान के सामने भारतीय संघ को वास्तव में महान और विश्व-हित के लिए अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने का कार्य है। परमात्मा करे प्रत्येक भारतीय नागरिक अपने-आप को इस कर्त्तव्य-पालन के योग्य बनाए।

परिशिष्ट—१

कुछ मुख्य-मुख्य तिथियाँ

सन्	मुख्य घटना
१८५७	भारतीय स्वाधीनता का प्रथम संग्राम।
१८५८	भारत का शासन ईस्ट इंडिया कम्पनी से ब्रिटिश पार्लिमेंट ने लिया।
१८६१	इंडिया कौंसिल एक्ट।
१८६६	इलाहाबाद हाईकोर्ट की स्थापना।
१८८४	स्थानीय-स्वराज्य-कानून।
१८८५	राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) की स्थापना।
१८९२	इंडिया कौंसिल एक्ट।
१९०५	बंग-विच्छेद।
१९०६	साम्प्रदायिक निर्वाचन की मांग स्वीकृत
,,	कलकत्ता कांग्रेस में अध्यक्षपद से भाषण देते हुए, दादाभाई नौरोजी ने घोषित किया कि कांग्रेस का ध्येय स्वराज्य प्राप्त करना है।
,,	बंग-भंग के विरुद्ध आन्दोलन, ब्रिटिश माल का बहिष्कार।
१९०७	सूरत कांग्रेस में फूट।
१९०९	मिन्टो-मार्ले सुधार।
१९१२	भारत की राजधानी कलकत्ते से देहली आना; बंगभंग रद्द।
१९१४	प्रथम योरपीय महायुद्ध प्रारम्भ।
१९१६	लखनऊ का कांग्रेस-लीग समझौता। होमरूल लीग की स्थापना।

१९१७—भारत-मंत्री की घोषणा कि ब्रिटिश सरकार भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन स्थापित करेगी

१९१९—रौलेट एक्ट और जलियांवाला बाग हत्याकांड। मांट-फोर्ड सुधार।

१९२०—महात्मा गांधी द्वारा असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात।

१९२१—केन्द्रीय विधान-सभा और नरेन्द्र-मंडल की स्थापना।

१९२२—महात्मा गांधी की गिरफ्तारी, मुकदमा और छः साल का कारावास-दण्ड।

१९२४—स्वराज्य पार्टी का विधान-सभाओं में प्रवेश।

१९२७—साइमन कमीशन का भारत-आगमन; उसका वहिष्कार।

१९२८—सरदार वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में बारदोली का कर-बंदी आन्दोलन।

१९२९—बटलर कमेटी की देशी राज्यों सम्बन्धी रिपोर्ट। लाहौर कांग्रेस में पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पास। २६ जनवरी को प्रतिवर्ष स्वाधीनता दिवस मनाने का निश्चय।

१९३०—सत्याग्रह आन्दोलन। गांधी जी की डांडी यात्रा। प्रथम गोल-मेज परिषद, लन्दन।

१९३१—गांधी-इर्विन समझौता। द्वितीय गोलमेज परिषद।

१९३२—साम्प्रदायिक निर्णय। तीसरी गोलमेज सभा। गांधी जी का अनशन। पूना पेक्ट।

१९३५—भारतीय शासन विधान। संघ-शासन की योजना तथा प्रान्तीय स्वराज्य की व्यवस्था।

" —उड़ीसा और सिन्ध नए प्रान्त बनाए गए। बर्मा को भारत से अलग करना।

१९३७—प्रान्तीय स्वराज्य का आरम्भ।

१९३९—द्वितीय महायुद्ध प्रारम्भ। संघ-शासन-योजना स्थगित। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों का पद-त्याग।

१९४०—मुसलिम लीग का लाहौर में पाकिस्तान-प्रस्ताव।

१९४२—कांग्रेस तथा लीग द्वारा क्रिप्स के प्रस्ताव अस्वीकृत।

" —कांग्रेस का 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव।

१९४३—नेता जी सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में आजाद हिन्द आन्दोलन।

१९४४—बम्बई में गांधी-जिन्ना वार्ता।

१९४५—शिमला-सम्मेलन।

१९४६—(१ अप्रेल) ब्रिटिश मंत्रिमिशन की भारतीय नेताओं से वार्ता आरम्भ।

" —(२ सितम्बर) अस्थाई सरकार की स्थापना।

" —(१६ अक्तूबर) लीगी सदस्य अस्थाई सरकार में शामिल हुए।

" —(९ दिसम्बर) संविधान-सभा का उद्घाटन।

१९४७—(२० फरवरी) ब्रिटिश सरकार की, जून १९४८ तक भारत को पूर्ण शासनाधिकार हस्तान्तरित करने की घोषणा।

" —(३ जून) बंटवारे के आधार पर, भारत को स्वाधीनता देने की अंतिम योजना।

" —(१५ अगस्त) भारतीय स्वतंत्रता विधान। भारत से ब्रिटिश सत्ता हटा ली गई।

" —पाकिस्तान राज्य का निर्माण।

१९४८—(३० जनवरी) म० गांधी का गोली से मारा जाना।

१९४९—(२६ नवम्बर) भारतीय संविधान स्वीकृत हुआ।

१९५०—(२६ जनवरी) भारतीय संविधान अमल में आने लगा।

" —(१५ दिसम्बर) सरदार पटेल (उप-प्रधान मंत्री, भारतीय संघ) का स्वर्गवास।

परिशिष्ट (२)

पारिभाषिक शब्द

Account	लेखा
Act	अधिनियम
Administration	प्रशासन
Advocate General	महाधिवक्ता
Assembly	सभा
Auditor General	महा लेखा-परीक्षक
Autonomy	स्वायत्तता
Bill	विधेयक
Board	मंडली
Chairman	सभापति
Chief Commissioner	मुख्य आयुक्त
Chief Judge	मुख्य न्यायाधीश
Chief Justice	मुख्य न्यायाधिपति
Chief Minister	मुख्य मंत्री
Citizenship	नागरिकता
Civil	व्यवहारिक, दीवानी । असैनिक
,, Court	व्यवहार न्यायालय; दीवानी अदालत
Code	संहिता
Commerce	वाणिज्य
Commission	आयोग; कमीशन
Commissioner	आयुक्त; कमिश्नर

Committee	समिति
Common Good	सार्वजनिक कल्याण
Constituency	निर्वाचन-क्षेत्र
Constituent Assembly .	संविधान-सभा
Constitution	संविधान
Council	परिषद्
,, of Ministers	मंत्रि-परिषद्
,, of States	राज्य-परिषद्
Court	न्यायालय, अदालत
,, , Civil—	व्यवहार न्यायालय
,, , Criminal—	दंड न्यायालय
,, , Federal—	फेडरल न्यायालय
,, , High—	उच्च न्यायालय
,, , Session—	सत्र न्यायालय
,, , Supreme—	उच्चतम न्यायालय
Crime	अपराध
Criminal Law	दंड विधि
Custom Duty	बहिःशुल्क
,, Frontier	शुल्क सीमान्त
Deputy Chairman	उपसभापति
,, Commissioner	उपायुक्त
,, President	उपराष्ट्रपति
,, Speaker	उपाध्यक्ष
District	जिला
,, Board	जिला-मण्डली
District Council	जिला-परिषद्

Duty	शुल्क । कर्त्तव्य
,, Excise—	उत्पादन शुल्क
Election	निर्वाचन
Ex-officio	पदेन
Factory	कारखाना
Federal Conrt	फेडरल न्यायालय
Finance	वित्त
Foreign Affairs	विदेशीय कार्य
Freedom	स्वतंत्रता; स्वातंत्र्य
Gazette	सूचना-पत्र
Govern	शासन करना
Government	सरकार । शासन
,, of India	भारत सरकार
Grant	अनुदान
Habeas Corpus	वन्दी प्रत्यक्षीकरण
Headman	मुखिया
High Court	उच्च न्यायालय
House	सदन
House of People	लोकसभा
Improvement Trust	सुधार-प्रन्यास
Industry	उद्योग
Judge	न्यायाधीश
Judgment	निर्णय
Judiciary	न्यायपालिका
Justice, Chief—	मुख्य न्यायाधिपति
Law	विधि; कानून

Legislation	विधान; कानून-निर्माण
Legislative Assembly	विधान-सभा
,, Council	विधान परिषद्
Legislature	विधान मंडल
Liberty	स्वाधीनता
Local Body	स्थानीय संस्था
,, Government	स्थानीय शासन
Major	वयस्क
Majority	बहुमत
Military	सेना । सैनिक
Minister	मंत्री
Minor	अवयस्क; नाबालिग
Minority	अल्पसंख्यक वर्ग
Motion	प्रस्ताव
Municipal Area	नगर क्षेत्र
Municipality	नगरपालिका, म्युनिसिपैलटी
Nation	राष्ट्र
Nominate	नाम निर्देश करना, नामजद करना
Octroi	चुंगी
Office	पद
Officer	पदाधिकारी
Order	आदेश । व्यवस्था
Ordinance	अध्यादेश
Parliament	संसद्
Party	पक्ष
Pension	निवृत्ति-वेतन; पेन्शन

Police	आरक्षक; पुलिस
Post	पद । स्थान
President	राष्ट्रपति
Prime Minister	प्रधान मंत्री
Procedure	प्रक्रिया
Proportional Representation	अनुपाती प्रतिनिधित्व
Province	प्रान्त
Public Service Commission	लोक-सेवायोग; सरकारी नौकरी कमीशन
Qualification	अर्हता; योग्यता
Quorum	गणपूर्ति; कोरम
Resolution	संकल्प
Revenue	राजस्व
Rule	नियम । शासन
Ruler	शासक
Schedule	अनुसूचि
Scheduled Tribe	अनुसूचित जन-जाति या कबीला
Service	सेवा; नौकरी
Sovereign	प्रभु
,, Democratic Republic	सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतंत्रात्मक गणराज्य
Sovereignty	प्रभुता
Speaker	अध्यक्ष
Suit, Civil—	व्यवहार वाद, दीवानी दावा
Supreme Court	उच्चतम न्यायालय

	कर; टैक्स
Training	प्रशिक्षण
Tribunal	न्यायाधिकरण; पंच-अदालत
Union	संघ
Unit	एकक; इकाई
Vice-President	उपराष्ट्रपति
Village Council	ग्राम-परिषद्
Vote, Casting—	निर्णायक मत
Voter	मतदाता
Wage, Living—	निर्वाह-मजूरी
Will	इच्छा-पत्र
Writ	लेख

—:o:—